व्यवसाय अध्ययन

कक्षा - 11

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान
अजमेर

व्यवसाय अध्ययन

कक्षा–11

"माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर द्वारा कक्षा–11 के व्यवसाय अध्ययन विषय के लिए स्वीकृत पाठय पुस्तक"

संयोजक

प्रो. विजय श्रीमाली
विभागाध्यक्ष
व्यवसाय प्रशासन विभाग, वाणिज्य संकाय
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

संपादक

डॉ. गोविन्द नारायण पुरोहित
व्याख्याता, व्यवसाय प्रशासन
राजकीय महाविद्यालय, भोपालगढ़, जोधपुर

लेखक

अरुण कुमार गौड़
व्याख्याता, व्यवसाय प्रशासन
डी.आर.जे. राजकीय बालिका महाविद्यालय,
बालोतरा, बाड़मेर

डॉ. सुरेश जैन
विभागाध्यक्ष, व्यवसाय प्रशासन विभाग
एस.आर.एल.एस. राजकीय महाविद्यालय,
कालाडेरा, जयपुर

डॉ. अनिल उपाध्याय
व्याख्याता, व्यवसाय प्रशासन
सम्राट पृथ्वीराज चौहान
राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

डॉ. गौरव बिस्सा
सहआचार्य, प्रबन्ध अध्ययन विभाग
राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय,
बीकानेर

महावीर प्रसाद वर्मा
सेवानिवृत्त प्राचार्य, (स्कूल शिक्षा)

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर

लेखकीय मनोगत.....

सूचनात्मक शिक्षा–भौतिक जीवन को सुखमय बनाने एवं उसके लिए आवश्यक सुख सम्पत्ति अर्जित करने में सहायक होती है। यह शिक्षा कुशल क्रियाशील व्यक्तियों–प्रशासक, प्रबन्धक, अभियन्ता, न्यायाधीश, उद्योगपति, अधीनस्थ एवं सहायक अधिकारी, लेखाकार एवं तकनीशियन आदि का निर्माण करती है।

10+2 शिक्षा पद्धति में दसवीं के बाद विद्यार्थी व अभिभावक अपने भौतिक जीवन के स्वप्न के अनुरूप आगामी शिक्षा (सूचनापरक) के उपलब्ध विकल्पों में से किसी एक दिशा का चयन करता है।

वाणिज्य (कामर्स) विषय का चयन कर जीवन में उसके आधार पर केरियर (जीवनवृत्ति) बनाने वाले विद्यार्थियों की अपेक्षा के अनुरूप मा.शि.बोर्ड, राजस्थान ने **व्यवसाय अध्ययन** पाठ्यक्रम को समयानुकूल एवं उपयोगी बनाने का प्रयास किया है। विशेष रूप से प्रदेश की प्रकृति, आवश्यकता एवं जागरूक नागरिक बनाने का भी ध्यान रखा गया है।

प्रस्तुत पुस्तक की विषय सामग्री में तार्किक एवं शोध–परक की मानसिकता वाले युवा साथियों में 'स्वर्णिम भारत' की छवि में व्यवसाय की भूमिका का स्वरूप स्पष्ट करना तथा सुप्त आत्म गौरव को जगाने हेतु 'प्राचीन भारत में व्यवसाय' का ऐतिहासिक विवरण संक्षिप्त में प्रस्तुत किया गया है। आगामी अध्यायों में व्यवसाय की अवधारणा, उसे करने के विभिन्न स्वरूप, उन स्वरूपों के गुणावगुण, सम्बन्धित कानून तथा उस व्यवसाय के संचालन के आवश्यक अवयव बताये गये हैं। सैद्धान्तिक पक्ष के साथ–साथ व्यवसाय स्थापना व सुगम संचालन के लिए आवश्यक संसाधन, उनकी प्राप्ति व प्रबन्ध हेतु प्रारम्भिक जानकारी प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। वैश्विक अर्थतन्त्र एवं सूचना तन्त्र से ओतप्रोत वाणिज्य जगत में नित–नई उभरती व्यावसायिक प्रवृत्तियों से भी रुबरु करवाने का प्रयास किया है। अध्याय 2 से 9 तक अध्ययन पश्चात् जीवन लक्ष्य की स्पष्टता एवं आपके स्वभाव अनुरूप जीवनवृत्ति के चयन हेतु उपलब्ध रोजगार के अवसर एवं सृजनात्मक विचारों के क्रियान्वयन हेतु स्वरोजगार एवं उद्यमिता का परिचय करवाया गया है। राजस्थान की प्रकृतिगत विशेषताओं में 'पर्यटन उद्योग' पर भी विशेष विवरण प्रस्तुत किया गया है जो प्रदेश की अर्थव्यवस्था, सामाजिक–सांस्कृतिक एवं जननांकीक तथ्य व महत्व को ध्यान में रखते हुए उसके उज्ज्वल भविष्य के साथ–साथ अनेक नवाचार एवं उद्यमों की आवश्यकता को इंगित करता है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि यह सूचनापरक पुस्तक आपके जीवनवृत्त को स्पष्टता देने में सहायक होगी तथा शिक्षक बन्धु इस विषय को अपने ज्ञान एवं स्थानीय प्रसंगों के माध्यम से अधिक स्पष्टता से विद्यार्थियों तक पहुँचाने का प्रयास करेंगे। इस पाठ्यक्रम की विषय सामग्री को उन्नत बनाने हेतु आपके सुझावों की अपेक्षा एवं सभी विद्यार्थियों के उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाओं सहित.....

संयोजक, सम्पादक एवं लेखक

विषय सूची

क्र.सं.	अध्याय	पृ.सं.
1.	प्राचीन भारत में व्यवसाय	1–7
2.	व्यवसाय की अवधारणा	8–34
3.	कम्पनी	35–54
4.	व्यापार : जोखिम एवं अनिश्चितताएँ	55–59
5.	व्यावसायिक पूंजी	60–69
6.	कार्यालय	70–75
7.	कार्यालय प्रबन्ध	76–81
8.	कार्यालय सम्प्रेषण	82–107
9.	व्यवसाय की आधुनिक प्रवृत्तियाँ	108–116
10.	वाणिज्य में रोजगार के अवसर	117–130
11.	भ्रमण एवं पर्यटन प्रबन्ध	131–146

व्यवसाय अध्ययन

समय 3.15 घण्टे | पूर्णांक – 100

क्र.सं.	अधिगम क्षेत्र	अंकभार
1.	सैद्धान्तिक	70
2.	व्यावहारिक–प्रोजेक्ट कार्य	10
3.	केस स्टडी	20

क्र.सं.	पाठ्य वस्तु	कालांश	अंकभार
1.	**प्राचीन भारत में व्यवसाय** – व्यापार प्रवृत्ति, व्यापारिक केन्द्र – व्यापारिक मार्ग – व्यापार में राज्य की भूमिका – भारतीय संस्कृति के विस्तार में व्यापार की भूमिका	24	10
2.	**व्यवसाय की अवधारणा** – अर्थ, विशेषताएं, उद्देश्य, प्रकार – एकल व्यापार : अर्थ, उपादेयता, सीमाएँ – साझेदारी : अर्थ, प्रकार, संलेख, लाभ, सीमाएँ – हिन्दू अविभाजित परिवार एवं पारिवारिक व्यवसाय : अर्थ, प्रासंगिकता – सीमिति दायित्व साझेदारी : विशेषताएं, लाभ, सीमाएँ – सहकारी संस्थाएँ : अर्थ, उपयोगिता, राजस्थान में सहकारी संस्थाएँ – सार्वजनिक उपक्रम : महत्व, प्रकार	46	12
3.	**कम्पनी** : अर्थ, कम्पनी कानून, 2013 परिचय व विशेषताएं, कम्पनी के प्रकार, – कम्पनी निर्माण के प्रलेख : पार्षद सीमा नियम व पार्षद अर्न्तनियम – आंतरिक प्रबन्ध का सिद्धान्त, रचनात्मक सूचना का सिद्धान्त – अधिकारों के बाहर का सिद्धान्त	40	10
4.	**व्यापार जोखिम एवं अनिश्चितताएँ** : अर्थ, प्रकार, जोखिम का प्रबन्ध	12	06
5.	**व्यावसायिक पूंजी** : महत्व, स्रोत, स्वयं की पूंजी, ऋणपत्र, ऋण के प्रकार, अंश पूंजी के प्रकार, ऋण–पूंजी व प्रकार	20	06

क्र.सं.	पाठ्य वस्तु	कालांश	अंकभार
6.	**कार्यालय** : अर्थ, कार्य, विशेषताएं, महत्व	14	05
7.	**कार्यालय प्रबन्ध** : स्वागत, डॉक का वितरण, कार्यालय सेवाएं अभिलेखसंधारण, कार्यालय उपकरण, कार्यालय प्रबन्धक के कार्य व गुण	14	05
8.	**कार्यालय सम्प्रेषण** : अर्थ, प्रकार, बाधाएँ, प्रभावी सम्प्रेषण के तत्व, व्यावसायिक पत्र, परिचयात्मक	36	12
9.	**व्यवसाय की आधुनिक प्रवृत्तियाँ** : ई कॉमर्स, मोबाइल कॉमर्स नेटवर्किंग मार्केटिंग, बी.पी.ओ. फ्रेंचाइजी	24	10
10.	**वाणिज्य में रोजगार के अवसर** : रोजगार क्षेत्रों की जानकारी, रोजगार को प्रभावित करने वाले तत्व, बीमा क्षेत्र, बैंकिंग क्षेत्र, पूँजी बाजार सेवा क्षेत्र, प्रशासनिक क्षेत्र, तकनीकी क्षेत्र में रोजगार के अवसर एवं स्वरोजगार स्वरोजगार योजनाएँ	36	12
11.	**भ्रमण एवं पर्यटन प्रबन्ध** : अर्थ, उद्देश्य, पर्यटन के प्रकार, पर्यटकों के प्रकार पर्यटन उत्पाद, वैश्विक परिदृश्य, राजस्थान में पर्यटन उद्योग, स्थल व उत्पाद सर्किट, पर्यटन के महत्व एवं हानियां, रोजगार संभावनाएं	40	12
		300	**100**

प्राचीन भारत में व्यवसाय
Business in Ancient Bharat

इतिहास की दृष्टि से प्राचीन भारत से आशय सैन्धव सभ्यता से लेकर भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना तक (1200 ई.) की अवधि से लिया जाता है। इस अवधि में भारत में अनेक राजवंशों का शासन रहा जैसेः– मौर्यवंश, शुंगवंश, सातवाहन वंश, कुषाण वंश, गुप्त वंश, पल्लव वंश, चोल व चालुक्य वंश, गुर्जर प्रतिहार, पाल, सेन, राष्ट्रकूट वंश इत्यादि। इन सभी के शासन काल में भारत का व्यापार निरन्तर प्रगति के पथ पर था।

प्राचीन भारत में व्यापार और उद्योग का इतिहास गौरवशाली रहा है। भारत की प्राचीनतम सभ्यता सैन्धव सभ्यता में अनेक ऐसे प्रमाण मिले हैं जो भारतीय व्यापार की स्वर्णिम गाथा कहते हैं। विश्व का प्रथम बंदरगाह लगभग 2500 ई.पू. में **''लोथल''** में बना था जो वर्तमान में मंगरोल बन्दरगाह के नाम से जाना जाता है। इस बन्दरगाह से सैन्धव काल में मैसोपोटोमिया नामक देश से व्यापार होता था।

हड़प्पा संस्कृति में मिली हस्त निर्मित वस्तुओं में इतनी अधिक एकरूपता है कि यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि शिल्प इस संस्कृति में पूर्णतया संगठित थे और वस्तुओं के वितरण की प्रणाली सुव्यवस्थित थी। विशिष्ट पत्थर एक स्थान से लाकर अनेक स्थानों में एक ही प्रकार के औजार बनाए जाते थे। इसी प्रकार बटहरे, मनके, मुहरें आदि कुछ नगरों में बनाये जाते थे और हड़प्पा संस्कृति के पूरे क्षेत्र में उनका वितरण होता था।

पिछले कुछ वर्षों में सिंधु घाटी से बाहर सात ऐसे स्थानों का उत्खनन हुआ है जिनसे हड़प्पा सभ्यता के लोगों के विदेशी व्यापार के विषय में हमें बहुत जानकारी मिली है। पहला स्थान **शोतुरगये** है। यह उत्तरी अफगानिस्तान में आक्सास और कोकचा नदियों के संगम पर स्थित था। संभवतः हड़प्पा निवासी लाजवर्द फीरोजा और चांदी आदि धातुओं को आयात इसी नगर के द्वारा अफगानिस्तान, मध्य एशिया और उत्तरी ईरान से करते थे। संभवतः जम्मू में चिनाब नदी पर स्थित मण्डा के द्वारा हिमालय के जंगलों में लकड़ी लाई जाती थी। पश्चिमी तट पर भगतराय के द्वारा संभवतः गोमेद, इन्द्रगोप आदि मूल्यवान रत्नों का आयात किया जाता था। उत्तरी बिलोचिस्तान से गुम और रहमान ढेरी और दक्षिणी बिलोचिस्तान से सिन्ध में अल्लाइदीनों और बालाकोट के द्वारा हड़प्पा सभ्यता के शिल्पों के लिए आवश्यक रत्नों आदि का आयात किया जाता होगा। राजस्थान में खेतड़ी की तांबे की खानों के निकट कुल्हादेका जोहद में उल्टे क्यू (Ơ) के आकार के पाषाण भाग मिले हैं। हड़प्पा के मनकों का निर्यात समुद्र और स्थल दोनों मार्गों से होता था। मेसोपोटामिया से आयात कम वस्तुओं का किया जाता था और भारत से निर्यात अधिक वस्तुओं का किया जाता था।

हड़प्पा और मोहनजोदड़ों की मुहरों पर जहाजों की आकृतियां बनी हैं और पक्की मिट्टी का जहाज भी लोथल में मिला है। लोथल में मिले गोदी–बाड़े से भी इस बात की पुष्टि होती है कि समुद्र द्वारा विदेशों से व्यापार होता था।

भारत से विदेशों को भेजी जाने वाली वस्तुओं में सूती कपड़े, मसाले, हाथी दाँत तथा उससे बनी हुई ? वस्तुओं में मोती, कीमती पत्थर, दाल–चीनी, काली मिर्च आदि प्रमुख थे। भारत में आयात की जाने वाली वस्तुओं में सोना–चाँदी, ताँबां, मूँगा, शराब, खजूर, रेशम, अरबी घोड़े, गुलाम आदि शामिल थे।

भारतीय व्यापारी चीन और पश्चिमी देशों के बीच मध्यस्थ की भूमिका भी निभाते थे। भारत चीन को सोना और शीशा का निर्यात करता था और बदले में प्राप्त रेशम और चीनी बर्तनों का पश्चिम एशिया के देशों को विक्रय करता था।

प्रारम्भ में विदेशी व्यापार थल मार्ग द्वारा ही होता था लेकिन 600 ई.पू. के आस–पास जल मार्ग का अधिक उपयोग किया जाने लगा। सिन्धुवासी थल मार्ग पर बैलगाड़ियों,बैलों व गधों का माल ढोने के लिये उपयोग करते थे। जल मार्ग में नौकाओं और जहाजों का उपयोग किया जाता था।

उत्तर भारत का सबसे महत्त्वपूर्ण मार्ग ताम्रलिप्ति से चम्पा, वाराणसी, कौशाम्बी, मथुरा, शाकल और तक्षशिला होकर पुष्कलावती पहुंचता था। पुष्कलावती से खैबर के दर्रे, काबुल की

घाटी, और हिन्दूकुश को पार करके यह बैक्ट्रिया पहुंचता था। बैक्ट्रिया से ईरान के रेगिस्तान में होकर यह हेरात, मर्व, जग्रोस की घाटी में होकर दजला और फरात नदियों को पार करके सीरिया में एंटियोक पहुंचता था।

समुद्र द्वारा व्यापार (ईसा पूर्व 600 से 300 ई. तक) : बौधायन ने उत्तर भारत के निवासियों के जीवन की विशेषताओं में अनेक समुद्रों द्वारा यात्रा करने का उल्लेख किया है। इसका यह अर्थ है कि उत्तर भारत के व्यापारी इस काल में समुद्र द्वारा ही व्यापार करते थे। रामायण में कई स्थानों पर समुद्र के बीच में भारी बिक्री की वस्तुओं की लदी नाव की उपमा दी गई है। प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों में भी व्यापारियों के समुद्र पार जाने का उल्लेख है। जातकों में कई स्थानों पर ऐसे जहाजों का उल्लेख है जो दूर की यात्रा के लिए पूर्णतया मस्तूल पाल आदि से सुसज्जित होते थे। सिकन्दर के आक्रमण के समय क्षत्रिय नाम के गण–राज्य के निवासियों ने उसकी सेना को 30 पतवार वाले जहाज दिये थे। स्ट्रेबों ने लिखा है कि मौर्य शासकों का जहाज बनाने के शिल्प पर एकाधिकार था। जातकों से स्पष्ट है कि इस काल में ऐसे भी जहाज थे जिनमें 1000 यात्रियों या पशुओं सहित 7 काफिलें यात्रा कर सकते थे।

पेरिप्लस में लिखा है कि पहली शताब्दी ईसवी में दक्षिणापथ के पश्चिमी तट पर सबसे महत्वपूर्ण बन्दरगाह **भृगुकच्छ** था। इसके थोड़ा दक्षिण की ओर **शूपरिक** और सिन्ध के मुहाने पर **वारबेरिकम** भी इस काल के प्रसिद्ध बन्दरगाह थे। दीघनिकाय और जातकों से ज्ञात होता है कि **रोरूक** का बन्दरगाह काफी महत्वपूर्ण था संभवत यह बन्दरगाह कच्छ खाड़ी के तट पर स्थित था। दक्षिणापथ के पूर्वी तट पर सबसे महत्वपूर्ण बन्दरगाह **ताम्रलिप्ति** था। जहां से गंगा और जमुना के मैदान की वस्तुएँ पूर्वी देशों को जाती थी । मिलिन्दपञ्ह में लखा है कि भारतीय जहाज से बंगाल मलयप्रायद्वीप, चीन, गुजरात, काठियावाड़, सिकन्दरिया, **कारोमण्डल तट,** पूर्वी द्वीप समूह आदि अनेक प्रदशों को जाते थे और उनके स्वामी बहुत धनी हो गए थे।

स्थल मार्ग द्वारा व्यापार (लगभग 600 ई. से 1200 ई.) : सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में चीनी सम्राटों ने अपना प्रभाव क्षेत्र ईरान तक फैला लिया था। चीनी स्रोतों से हमें ज्ञात होता है, लगभग 650 से 750 के काल में मध्य एशिया पर अधिकार करने के लिए चार शक्तियों में संघर्ष हुआ। ये चार शक्तियां थी तुर्क, तिब्बत के शासक, अरब और चीनी। इस काल में कश्मीर चीनियों के अधीन था इसलिए उसने आक्रामक नीति अपनाई। चीनियों को तिब्बत की बढ़ती हुई शक्ति का बहुत भय था इसलिए चीन के सम्राट ने 787 ई. में तिब्बत के विरुद्ध उइघरों, भारत के शासकों और बगदाद के खलीफा से सहायता मांगी।

आठवीं शताब्दी ईसवी में कामरूप से उत्तरी बर्मा होकर चीन जाने वाला मार्ग बहुत प्रयोग किया जाने लगा, क्योंकि उत्तर पश्चिम भारत में राजनीतिक अर्थव्यवस्था थी। कियातान (785–805) ने अपने मार्ग–वितरण में टोनकिन से कामरूप तक का विस्तृत विवरण दिया है। इसका यह अर्थ है कि काफी यात्री भारत से चीन इस मार्ग से जाते थे।

एक अन्य मार्ग बिहार से तिब्बत होकर चीन जाता था। जिस समय तिब्बत के शासकों की शक्ति बढ़ी। इस मार्ग का निश्चय ही अधिक प्रयोग हुआ। तबकात ए नासिरी में लिखा है कि अनेक व्यापारी इस मार्ग के द्वारा घोड़े लाते थे।

उत्तर पश्चिमी भारत के मार्ग से अनेक व्यापारी ईरान तक जाते थे किन्तु जब अरबों ने सिन्ध पर अधिकार कर लिया तो बगदाद के खलीफाओं से घनिष्ठ सांस्कृतिक संबंध स्थापित हो गए। इब्नखुर्ददबा अल मसूदी, अल इदरिसी और अलबेरूनी ने इस मार्ग का उल्लेख अपने वर्णनों में किया है।

तौल की इकाई : सैन्धव निवासी वस्तुओं को तौलने के लिये तराजू व बाँटों का उपयोग करते थे। यदि सबसे छोटे बाँट को एक इकाई मान लिया जाय तो 1,2,4,8,16,32 और 64 इकाइयों के बाँट सिन्धु सभ्यता में प्राप्त हुए हैं।

विनिमय की इकाई : वैदिक काल में भी व्यापार उन्नत अवस्था में था। प्रारम्भ में वस्तु विनियम प्रथा का ही प्रयोग होता था। गाय को मूल्य की ईकाई मानकर विनियम का काम चलाया जाता था। बाद में स्वर्ण निर्मित 'निश्क' का प्रयोग मुद्रा के रूप में किया जाने लगा। शतपथ ब्राह्मण (एक ग्रन्थ) में 'शतमान' का उल्लेख मिलता है जो दक्षिणा देने के काम आता था। इतिहासकारों का यह मानना है कि **'निश्क'** और **'शतमान'** तोल के धातुखण्ड रहें होंगे। परन्तु इनको मुद्रा नहीं माना जा सकता है।

भारतीय व्यापारियों को ईसा पूर्व छठी शताब्दी में अवश्य ही बहुत लाभ होता होगा तभी तो सिन्ध और पश्चिमी पंजाब के निवासी ईरान के सम्राट दारा के 360 टेलेंट सोने का चूर्ण, कर (Tax) के रूप में देते थे। 360 टेलेंट आजकल की तोल के हिसाब से 9 टन 5 हंड्रिडवेट हुआ। इतना सोना देना तभी संभव हो सका जबकि इस काल में सिंध और पश्चिमी पंजाब के निवासी बहुत समृद्ध थे। उनकी समृद्धि का प्रमुख कारण वह व्यापार था जो वे पश्चिमी देशों के साथ कर रहे थे।

मौर्यकाल में बड़े–बड़े नगरों मे भिन्न–भिन्न वस्तुओं के अलग बाजार होते थे। कौटिल्य (चाणक्य) जिन्होंने 'अर्थशास्त्र' की रचना की, उनके अनुसार माँस, चावल, रोटी, मिठाई आदि भोज्य पदार्थों की दूकानों के लिये पृथक व्यवस्था होती थी। व्यापार में विशिष्टीकरण था। काश्मीर, कौशल, विदर्भ और

कलिंग हीरे के लिये प्रसिद्ध थे। हिमाचल प्रदेश चमड़े के लिये प्रसिद्ध था। बंगाल मलमल के लिये, ताम्रपर्णि पाण्ड्य और केरल मोतियों के लिये प्रसिद्ध थे।

मौर्यकाल में व्यापार पर राज्य का पूर्ण नियन्त्रण था। 'पण्याध्यक्ष' नामक सरकारी अधिकारी वाणिज्य की देखभाल करता था। पौलवाध्यक्ष नामक अधिकारी तोल का निरीक्षण करता था। पुलों पर चुंगी वसूल करने वाला अधिकारी शुल्काध्यक्ष था। कौटिल्य ने लिखा है कि राजा को व्यापार की उन्नति के लिए थल और जल के मार्गों पर सड़कें व पुल बनाना चाहिए। उसी ने लिखा है कि राजा को व्यापारियों का ध्यान रखना चाहिए क्योंकि वे ही देश को समृद्ध बनाते हैं।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में चीन तथा ईरान की व्यापारिक वस्तुओं का उल्लेख है। कौटिल्य के अनुसार '' रेशम और चीन पटट् जो चीन देश में उत्पन्न होते हैं, श्रेष्ठ समझे जाते हैं।'' कौटिल्य ने मुक्ताओं के एक प्रकार 'कार्दभिक' का उल्लेख भी किया है। ईरान की कर्दभ नदी में उत्पन्न होने के कारण इन मुक्ताओं को 'कार्दभिक' कहते है।

गुप्तकाल में व्यापार अपने चरमोत्कर्ष पर था। विदेशी व्यापार एवं आन्तरिक व्यापार अत्यधिक विकसित अवस्था मे था। गुप्तकाल में भारत का व्यापार पश्चिम में मिश्र, ग्रीस, रोम, ईरान, अरब, सीरिया, पूर्व में श्रीलंका, कम्बोडिया, स्याम, सुमात्र, मलय प्रायद्वीप और चीन से हो रहा था। इस प्रकार इस समय भारत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रमुख केन्द्र हो गया।

रोमन साम्राज्य के साथ भारत का जबर्दस्त व्यापार था लेकिन पाँचवी सदी ई. के अन्त तक रोमन साम्राज्य के पतन के साथ ही भारत के समृद्ध विदेशी व्यापार को ग्रहण लग गया। इस स्थिति में ईरान के ''सासानी' साम्राज्य के पतन ने भी विपरीत भूमिका निभाई। अरब लोगों ने थल मार्ग पर अपना आधिपत्य जमा लिया। शीघ्र ही अरबी व्यापारियों ने अरब सागर और हिन्द महासागर पर भी अपना अधिकार कर लिया।

गुप्तकाल में भी कुछ गांवों के समूहों के बीच में प्रत्येक सप्ताह पखवाड़े के बाद किसी एक गांव में हाट लगता था जिससे गांव की उत्पादित वस्तुओं का विनिमय या बिक्री होती थी। आवश्यकता से अधिक जितनी वस्तुएं होती थीं उन्हें व्यापारी खरीदकर दूर के उन स्थानों को ले जाते थे जहां उनकी मांग होती थी। जो दूर स्थानों से लाई गई वस्तुएं होती थीं वे भी इन्हीं हाटों में बेची जाती थीं।

गुप्तकाल में दो प्रकार के व्यापारियों का उल्लेख मिलता है–**श्रेष्ठी** और **सार्थवाह।** श्रेष्ठियों की नगर में बहुत प्रतिष्ठा होती थी इसलिए जिला परिषद् में उनका एक प्रतिनिधि (नगर श्रेष्ठी) सम्मिलित किया जाता था। श्रेष्ठी अपना व्यापार करते थे और व्यापारियों को ब्याज पर धन उधार भी देते थे। मुद्राराक्षस में लिखा है कि चाणक्य ने चन्दनदास को राज्य के सब नगरों का प्रधान व्यापारी नियुक्त किया था। संभवतः प्रधान व्यापारी का पद गुप्तकालीन नगर श्रेष्ठ के समकक्ष था।

कालिदास के वर्णन में हमें ज्ञात होता है कि सरकार थल मार्गों और जलमार्गों पर व्यापारियों की सुरक्षा पर पूरा प्रबंध करती थी। सड़कों पर स्थल के डाकू और जलमार्गों में जल के डाकू व्यापरियों को लूट लेते थे। इसलिए अधिकतर व्यापारी काफिलों में चलते थे। वे एक सार्थवाह को अपने साथ लेते थे वह काफिले का नेता होता था। जंगलों में व्यापारियों को सार्थवाह साथ होते हुए भी डाकू लूट लेते थे। इसलिए व्यापारी अपने माल को खरीद के मूल्य से तीन या चार गुने मूल्य पर बेचते थे। देश में नदियों द्वारा नावों पर लादकर भी व्यापारी माल दूर के स्थानों को ले जाते थे। कालिदास ने लिखा है कि बंगाल के निवासी कुशल नाविक थे। इस काल में समाज में सार्थवाहों की भी बहुत प्रतिष्ठा थी। इसलिए उनका भी प्रतिनिधि जिला परिषद का सदस्य होता था।

हर्षोतर काल में व्यापार एवं वाणिज्य में भारी गिरावट आई। छोटे–छोटे राज्यों के उदय से विकेन्द्रीय शासन के अन्तर्गत सामन्तवाद फला –फूला। ईसा की सातवीं से बारहवीं सदी में तुर्कों के आगमन तक देश में सामन्तवाद अपने उत्कर्ष पर था। इस काल में केन्द्रीय शासन के अभाव में आन्तरिक और विदेशी व्यापार की सम्पन्न परम्परा को भारी क्षति पहुँची।

व्यापारिक मार्ग (Trade Routes)

प्राचीन भारत में प्रमुख व्यापारिक केन्द्र समुद्र तट के किनारे बसे हुए थे। इसका प्रमुख कारण इतिहासकार यह बताते है कि थल मार्ग द्वारा व्यापार करना जोखिम भरा था। 'कारवाँ' जो थल मार्ग से व्यापार करने का तरीका था, उसको रास्ते में लूट लिया जाता था। थल मार्ग उत्तरी भारत से अफगानिस्तान, अरब, ईरान आदि देशों के साथ व्यापार करने के काम आता था। दक्षिणी भारत चूँकि समुद्र तट से जुड़ा हुआ था, अतः अधिकांश व्यापार इस भाग में जल–मार्ग द्वारा होता था। चीन का रेशम भारत के रास्ते बैक्ट्रिया होते हुए पश्चिम तक जाता था इस कारण यह थल मार्ग 'रेशम मार्ग' के नाम से जाना जाता था।

सैन्धव निवासियों के मैसोपोटोमिया, अफगानिस्तान और दक्षिणी तुर्केमेनिया से व्यापारिक संबंध थे। लोथल, सुत्कगनाडोर, बालाकोट, सोत्काकोह आदि प्रसिद्ध बन्दरगाह इस काल में थे। सुमेर के साथ भारत का व्यापार– बहरीन के जरिये समुद्र मार्ग से स्थापित किया गया प्रतीत होता है।

मौर्यकाल में विशाल मगध साम्राज्य में स्थल मार्गों का एक जाल–सा बिछा हुआ था। प्रमुख राजमार्ग उत्तर भारत को दक्षिणी भारत से जोड़ता था। यह मार्ग उज्जैन, विदिशा, कौशाम्बी और साकेत होता हुआ श्रावस्ती तक जाता था। दूसरा मार्ग पश्चिमी घाट को पूर्वी घाट से जोड़ता था। वह भृगुकच्छ से कौशाम्बी होता हुआ ताम्रलिप्ति तक पहुँचता था। तीसरा राजमार्ग पूर्वी भारत को पश्चिमी भारत से जोड़ता था। इस मार्ग के द्वारा पाटलिपुत्र से ईरान तक यात्रा की जाती थी। चौथा मार्ग चम्पा से पुष्कलावती तक पहुँचता था। इस मार्ग में पाँचाल का प्रसिद्ध नगर कमीपल्य और शाकल पड़ते थे। यह तक्षशिला तक पहुँचता था। समुद्र के जल मार्गो को कौटिल्य ने **'संयान पथ'** के नाम से पुकारा है। महासमुद्रों में जाने वाले जहाजों को **प्रवहण** कहा है।

मौर्यकाल में भारत और मिस्र के बीच व्यापार उन्नत था। यह व्यापार लाल सागर के तट पर बरनिस नामक एक बन्दरगाह बनवाया था जहाँ से मिस्र के प्रमुख बन्दरगाह सिकन्दरिया तक तीन थल मार्ग जाते थे।

आन्ध्रप्रदेश और कलिंग तथा बंगाल के लोग समुद्री मार्ग से बर्मा, मलाया, सुमात्रा, जावा और कम्बोजिया के साथ व्यापार करते थे। इन लोगों का अधिकांश व्यापार ताम्रलिप्ति के बन्दरगाह से होता था।

मौर्योत्तर भारत में तीन व्यापारिक मार्गों की प्रतिष्ठा हुई। प्रथम मार्ग पाटलिपुत्र से कौशाम्बी और उज्जैन होते हुए बैरीगाजा जाने वाला मार्ग था, दूसरा मार्ग पाटलिपुत्र से मथुरा और सिन्धु घाटी होते हुए बैक्ट्रिया तक जाता था। तीसरा मार्ग पाटलिपुत्र से वैशाली और श्रावस्ती होते हुए नेपाल तक जाता था।

दक्षिणी भारत में दो प्रमुख व्यापारिक मार्ग थेः – एक मार्ग मछलीपट्टम से प्रारम्भ होता था और दूसरा विनकोंड से। कुछ दूर अलग–अलग चलने के बाद दोनो एक स्थान पर मिल जाते थे और फिर एक मार्ग के रूप में हैदराबाद, कल्याण, पैंठान और दौलताबाद होते हुए बैरीगाजा पहुँचते थे।

कन्नड़ तट पर वैजयन्ति तथा केरल तट पर मुजिरिस और टिन्डिस बन्दरगाह थे। यहां अरब और यूनान से वस्तुएँ लेकर व्यापारिक जहाज आते थे। पांड्य राज्य मे शालियूर तथा चेर राज्य मे बंदर नामक तटों पर बंदरगाह थे यहाँ पर विदेशी घोड़ों का आयात किया जाता था।

मध्य एशिया में भारत के व्यापारिक काफिले हिन्दूकुश पर्वत पार कर बैक्ट्रिया की व्यापारिक मण्ड़ी तक जाते थे। यहाँ पर चीन,भारत एवं पश्चिमी देशों से आने वाले रास्ते मिलते थे। यहाँ पर माल का आदान–प्रदान होता था और फिर वस्तुयें बेड़ों द्वारा आक्सिस के बहाव द्वारा कैस्पियन सागर तक ले जाई जाती थीं।

ग्यारहवीं सदी के प्रारम्भ मे आने वाले अलबिरूनी ने इस काल के 15 सड़क मार्गों का वर्णन किया है। ये मार्ग कन्नौज, मथुरा, बाड़ी, बयाना, धार, अन्हिलपाटन से देश के अलग–अलग भागों से जुड़े थे। इन मार्गों मे से एक कन्नौज से प्रयाग होते हुए ताम्रलिपिक तक और फिर वहाँ से दक्षिण में कलिंग प्रदेश से होते हुए कॉची तक सुदूर दक्षिण में जाता था। दूसरा प्रसिद्ध मार्ग कन्नौज से पानीपत, कटक और काबुल होते हुए गजनी तक जाता था। एक मार्ग कन्नौज से बयाना जाता था। बयाना से एक मार्ग मरूस्थल से होकर वर्तमान कराची तक जाता था। दिल्ली से जयपुर होकर अहमदाबाद तक एक मार्ग जाता था।

व्यापार में राज्य की भूमिका (Role of State in Trade):– सैन्धव सभ्यता से लेकर सल्तनत काल तक व्यापार के विकास में राज्य की भूमिका महत्वपूर्ण रही थी। व्यापारिक मार्गों को बनाना, व्यापारिक मार्गों पर विश्राम आदि की व्यवस्था करना, इन मार्गों पर सुरक्षा व्यवस्था करना राज्य के प्रमुख दायित्व थे। दक्षिणी भारत में व्यवस्थित बन्दरगाहों की उपस्थिति राजाओं की व्यापार के प्रति अभिरूचि प्रमाणित करती है।

इन सब कार्यों के बदले व्यापारियों से राजाओं द्वारा कर वसूली की जाती थी। यद्यपि सैन्धव सभ्यता से लेकर मौर्यकाल तक राजस्व प्राप्ति का प्रमुख स्रोत भूमिकर ही था। व्यापारियों से कर वसूली का कोई प्रमाण मौर्यकाल से पहले तक की अवधि में नहीं मिला है।

मौर्यकाल में भूमिकर के बाद राज्य की आय का प्रमुख साधन था– आयात और निर्यात कर। आयात कर को **'प्रवेश्य'** और निर्यात कर को **'निष्क्राम्य'** कहा जाता था। आयात कर की दर सामान्यतः 20 प्रतिशत थी परन्तु निर्यात कर की दर के बारे में सही जानकारी उपलब्ध नहीं है। बिक्री कर भी राज्य की आय का प्रमुख स्रोत रहा होगा। जो वस्तुएँ में गिनकर बेची जाती थीं उन पर 9.50 प्रतिशत, जो तोलकर बेची जाती थी उन पर 5 प्रतिशत और जो नापकर बेची जाती थी उन पर 6.25 प्रतिशत कर लिया जाता था। मौर्यकाल में व्यापारी बड़े–बड़े सार्थ (काफिले) बनाकर आया–जाया करते थे। इन काफिलों की रक्षा का दायित्व राज्य पर होता था। इसके बदले में राज्य प्रत्येक व्यापारी से मार्ग कर (बर्तनी) वसूल करता था।

मौर्यकाल में व्यापार को सरल बनाने के लिये राज्य द्वारा सिक्के ढालने का कार्य भी प्रारम्भ किया गया। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में चार प्रकार की मुद्राओं का उल्लेख हैः– 1. सुवर्ण (सोने का) 2. कार्षपण या धरण (चांदी का) 3. माषक (ताँबे का) और 4. काकरणी (ताँबे का)।

गुप्तकाल में करों का बोझ अधिक नहीं था। विदेशों से आयात होने वाले और देश में उत्पन्न होने वाले पदार्थों पर कर

लगाया जाता था जिसे **'भूतोवाव प्रत्याय'** कहा था। गुप्तकाल के दौरान वस्त्र उद्योग की उन्नति जोरों पर थी। लौह उद्योग भी उन्नत था। मैहरौली का लौह स्तम्भ इसका सबसे उत्कृष्ट उदाहरण है।

गुप्त काल मे भी राज्य व्यापारियों को सुरक्षा प्रदान करता था और इसके बदले में निर्धारित शुल्क वसूल करता था।

गुप्तोत्तर काल में व्यापारिक मार्ग सुरक्षित नहीं थे। चीनी यात्री युवान–च्वांग भी दो बार लूटा गया था। चोर–डाकू ही नहीं कई सामन्त भी व्यापारियों का कारवाँ लूट लिया करते थे। वास्तुपाल–चरित में मांडलिक घुगघुल द्वारा काफिले लूटने का उल्लेख उपलब्ध है। इस तरह बढ़ती राजनीतिक अस्थिरता ने कारवों के निरापद आवाजाही को संदिग्ध बना दिया। इससे व्यापार– वाणिज्य को धक्का लगा।

ग्याहरवीं शताब्दी के आस–पास **'तर'** नामक कर लगाया जाता था जो जल–कर था और नावों पर लगता था। पाल अभिलेखों में ऐसा शुल्क वसूल करने वाला अधिकारी' 'तरिक' कहलाता था। व्यापारियों को विभिन्न राज्यों से गुजरने वाले मार्गों पर अलग–अलग राज्यों में कर देना पड़ता था। ये कर 'मार्गकर' कहलाते थे।

भारतीय संस्कृति के विस्तार में व्यापार की भूमिका (Role of Trade in cultural Expansion):

सांस्कृतिक विस्तार के दो प्रमुख कारण माने जाते हैः–

1. व्यापारिक आदान–प्रदान और 2. धर्म प्रचार की प्रवृत्ति

चीन, जापान, कोरिया, फिलीपीन्स आदि देशों में व्यापारिक आदान–प्रदान का ही परिणाम था कि वहाँ पर बौद्ध धर्म बहुत तेजी से पनपा। चीन जाने वाले प्रथम भारतीय धर्म प्रचारक धर्मरत्न तथा कश्यप मातंग दो बौद्ध आचार्य थे जो अपने साथ बौद्ध धर्म ग्रन्थ और बुद्ध की अस्थियाँ ले गये थे।

दक्षिणी पूर्वी देशों से व्यापार के लिये भारतीय व्यापारियों का आना जाना ईसा पूर्व पाँचवी–छठी शती से ही चला आ रहा था। उन देशों में बहुमूल्य मसाले पैदा होते थे और बहुमूल्य धातुएँ पाई जाती थीं। उन देशों के निवासी 'आग्नेय' जाति के थे और सभ्यता की दृष्टि से पिछड़े हुए थे। अतः उनका सारा व्यापार भारतवासियों के हाथ में था। भारत के निवासी ईसा की प्रथम शती में वहाँ बड़ी संख्या में जाकर बस गये और सारे इण्डोनेशिया तथा इण्डोचीन में जगह–जगह पर भारतीयों के राज्य स्थापित हो गये इसका प्रभाव यह हुआ कि भारतीय संस्कृति का प्रभाव आज भी वहाँ देखा जा सकता है। कम्बोडिया और स्याम में बैंकाक के रहने वाले पुरोहित एवं बौद्धमतावलम्बी उपवीत (जनेऊ) धारण करते है। हिन्दू और बौद्ध मूर्तियों को पूजते हैं और राजसभाओं में पौरोहित्य कार्यो का अनुष्ठान करते हैं। इण्डोचीन, मलाया और जावा में अभी तक नाटक, नृत्य, अभिनय तथा कठपुतलियों के खेलों के विषय रामायण, महाभारत तथा पौराणिक कथाओं से ही ग्रहण किये जाते हैं।

भारत और बेबीलोनिया के बीच व्यापार का इतना प्रभाव हुआ कि वहाँ की मुद्राओं और भवनों पर भारतीय हाथी और बन्दरों के चित्र अंकित हैं। छठी शताब्दी ई.पू. के मुंगेर के शासक नेबूचदनिजर के महल में अनेक स्तम्भ सागवान की लकड़ी के बने थे जो इस बात के प्रमाण है कि भारत की बहुमूल्य सागवान की लकड़ी बैरीगाजा और यूफ्रेट्स तक बेची जाती थी। मिश्र में बने लकड़ी के गुम्बद भी इसी बात का प्रमाण हैं। मिश्र में शव को सुरक्षित रखने के लिये आवरण के रूप में 'ममी' पर भारतीय वस्त्र (मलमल) लपेटा जाता था।

महाभारत मे इस बात का उल्लेख मिलता है कि राजसूय यज्ञ में युधिष्ठिर को अनेक राजाओं ने चीन में बने रेशम के वस्त्र भेट किये गये थे।

सारांश :

भारत का व्यापार एवं वाणिज्य हमारी सभ्यता जितना ही प्राचीन है। सैन्धव सभ्यता के अन्य समकालीन सभ्यताओं से घनिष्ठ व्यापारिक संबंध रहे। मगध साम्राज्य एवं मौर्य साम्राज्य के समय व्यापार खूब फला– फूला। गुप्तकाल अपने समय में दुनिया का वैभवशाली साम्राज्य समूह –व्यापार के कारण ही था। व्यापार थल एवं समुद्री दोनो मार्गों से होता था। चीन का रेशम भारत के रास्ते बैक्ट्रिया होते हुए पश्चिम तक जाता था। इस कारण थल मार्ग 'रेशम मार्ग' के नाम से विख्यात था। रोमन साम्राज्य के साथ भारत का जबर्दस्त व्यापार था। लेकिन पाँचवी सदी ई. के अन्त तक रोमन साम्राज्य के पतन के साथ ही भारत के समृद्ध विदेशी व्यापार को ग्रहण लग गया। व्यापार की अवनति में गुप्त साम्राज्य के पतन ने भी इतना ही योगदान दिया। इस स्थिति में ईरान के सासनी साम्राज्य के पतन ने भी अपना योगदान दिया।

व्यापार ने भारतीय संस्कृति के विस्तार में अभूतपूर्व योगदान दिया। इण्डोनेशिया, कम्बोडिया, स्याम, चीन आदि देशों में भारतीय संस्कृति का विकास हुआ। भारतीय वस्तुओं का प्रचलन बढ़ा। बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार व्यापक रूप से हुआ। मुद्राओं और भवनों के निर्माण पर सांस्कृतिक आदान–प्रदान की छाप स्पष्ट रूप से दिखायी देती है। साहित्य पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि आज भी इण्डोचीन, मलाय और जावा में नाटक, नृत्य, अभिनय में रामायण, महाभारत और पौराणिक कथाओं का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न :

1. मैहरोली का लौह स्तम्भ किस काल की देन है?
   (अ) मौर्यकाल (ब) गुप्तकाल
   (स) हर्षोत्तर काल (द) सैन्धव काल
2. मौर्यकाल में आयात कर को क्या कहा जाता था?
   (अ) निष्क (ब) निष्क्राम्य
   (स) काकरणी (द) प्रवेश्य
3. 'अर्थशास्त्र' की रचना किसने की?
   (अ) अलबेरुनी (ब) कालीदास
   (स) चाणक्य (द) युवान–च्वांग
4. विश्व के प्रथम बंदरगाह का वर्तमान नाम क्या है?
   (अ) मुजिरिस (ब) टिन्डिस
   (स) मंगरोल (द) भृगुकच्छ
5. 'माषक' किस धातु का सिक्का था?
   (अ) सोना (ब) ताँबा
   (स) चाँदी (द) पीतल
6. जल–कर और नावों पर लगने वाले कर को वसूल करने वाला अधिकारी क्या कहलाता था?
   (अ) श्रेष्ठी (ब) सार्थवाह
   (स) तरिक (द) पण्याध्यक्ष
7. किस देश की मुद्राओं पर भारतीय हाथी और बन्दरों के चित्र अंकित है?
   (अ) ईरान (ब) चीन
   (स) मिश्र द) बेबीलोनिया
8. 'मुद्राराक्षस' की रचना किसने की?
   (अ) चाणक्य (ब) घुलघुल
   (स) कालिदास (द) कश्यप मातंग

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. सैन्धव निवासी माप–तौल की किस इकाई से परिचित थे?
2. विश्व के प्रथम भारतीय बंदरगाह का वर्तमान नाम बताइये?
3. 'निष्क' क्या है?
4. 'अर्थशास्त्र' की रचना किसने की है?
5. 'कार्दमिक' क्या है?
6. मौर्यकाल का राजमार्ग भारत के किस–किस भाग से जुड़ा हुआ था?
7. 'संयान पथ' क्या है?
8. भारत और मिश्र के बीच व्यापार किस समुद्री मार्ग के द्वारा होता था?
9. केरल तट के दो प्रमुख बन्दरगाहों के नाम बताइये।
10. 'प्रवेश्य' और 'निष्क्राम्य' को समझाइये।
11. 'वर्तनी' क्या है?
12. भूतोवात प्रत्याय क्या है?
13. चीन जाने वाले प्रथम भारतीय धर्म प्रचारकों के नाम बताइये।

लघूत्तरात्मक :

1. भारत से निर्यात और आयात की जाने वाली वस्तुएँ बताइये।
2. मौर्यकाल में कौन–कौन से कर व्यापारियों पर लगाये जाते थे?
3. सैन्धव निवासियों का व्यापार किन देशों से था और इस काल के प्रमुख बन्दरगाहों के नाम बताइये।
4. कौटिल्य ने कितने प्रकार की मुद्राओं का वर्णन किया हैं?
5. 'तर' क्या है? इसकी वसूली कौन करता था?
6. मौर्योत्तर भारत के प्रमुख व्यापारिक मार्गों का वर्णन किजिये।
7. बेबीलोनिया पर भारतीय व्यापार का क्या प्रभाव पड़ा?

निबंधात्मक :

1. मौर्यकाल की व्यापारिक स्थिति पर प्रकाश डालिये।
2. प्राचीन भारत में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख मार्गों का वर्णन किजिए।
3. भारतीय व्यापार की अवनति के प्रमुख कारण बताइये।
4. भारतीय संस्कृति के विस्तार में व्यापार की भूमिका को विस्तार से समझाइये।
5. विभिन्न बन्दरगाहों से विदेशों को भेजी जाने वाली और आयात की जाने वाली वस्तुओं का वर्णन किजिये।

उत्तरमाला – 1.ब 2. द 3. स 4. स 5. ब 6. स 7. द 8. स

विभिन्न देशों के साथ व्यापार

देश	बन्दरगाह	निर्यात की वस्तुएँ	आयात की वस्तुएँ
रोम	सोपार, कल्याण,भृगुकच्छ चौल, कावेरीपत्तनम, अरिकमेडु टिन्डिस, मुजिरिस, वैजयन्ति	काली मिर्च, इलायची, दालचीनी, मलमल, मोती, मणियाँ, चीन से लाई रेशम हाथी दाँत की वस्तुएँ, औषधियाँ चन्दन, इत्र, चावल, गौद, शेर, शक्कर आदि	बढ़िया किस्म की शराब, चीनी के बर्तन , सोने और चांदी के सिक्के
पूर्वी अफ्रिका तटवर्ती देश (इथोपिया)	,, ,,	चावल, कपड़ा, गेहूँ और दासियाँ	हाथीदाँत, सोना, चाँदी, कछुए की पीठ की हड्डियाँ
फारस की खाड़ी के तटवर्ती नगर	भृगुकच्छ	ताम्बा, चंदन की लकड़ी, सागवान की लकड़ी,आबनूस	मोती, मदिरा, खजूर सोना, दास
दक्षिण–पूर्व एशिया के देश जावा, सुमात्रा, कम्बोज बोर्नियो	अरिकमेडु, ताम्रलिप्ति, मलाया, कावेरीखतनम, घण्टशाल, गंगासागर	वस्त्र, चावल	मसाले,काली मिर्च, दालचीनी, तेजपत्ता आदि।
चीन	,, ,,	चंदन की लकड़ी	चीनी रेशम (बाँस)।

संदर्भ :

1. ब्रिजेन्ट एण्ड रेमण्ड आलचिन, दि बर्थ इण्डियन सिविलिजेशन,
2. जनरल ऑफ दि अमेरिकन ओरियंटल सोसायटी।
3. जातक।
4. बोधायन
5. रामायण।
6. दीघ निकाय, अगु
7. जातक
8. मिलिन्दपञ्ह
9. पेरिप्लस
10. शुइचि ए शौट हिस्ट्री ऑफ चाइनीज सिविलाइजेशन
11. एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज।
12. कौटिल्य
13. नारद
14. रालिसन्स इन्टरकोर्स बिटवीन इण्डिया एण्ड दी वैस्टर्न वर्ल्ड

मुगलकाल से स्वतंत्रतापूर्व तक प्रचलित भारतीय मुद्रा

3 फुटी कौड़ी	= 1 कौड़ी	2 धेला	= 1 पैसा
10 कौड़ी	= 1 दमड़ी	4 पैसा	= 1 आना
2 दमड़ी	= 1 धेला	16 आना	= 1 रुपया

अध्याय– 2

व्यवसाय की अवधारणा
(Concept of Business)

किसी भी देश की समृद्धि एवं विकास का इतिहास सही अर्थ में व्यवसाय के विकास की कहानी होती है। प्राचीन भारत में व्यापार की स्वर्णिम गाथा को पूर्व अध्याय में पढ़ा है। अमेरिका, जापान, ब्रिटेन तथा फ्रांस आदि विकसित देश व्यवसाय के कारण ही आज शीर्ष स्तर पर पहुंच पाये हैं तथा संपूर्ण विश्व का आर्थिक नेतृत्व कर रहे हैं। प्रत्येक सरकार इस प्रकार की आर्थिक एवं औद्योगिक नीतियों का निर्माण करती है जिससे अपने देश में व्यवसाय का विकास करके राष्ट्र को खुशहाल बनाया जा सके।

व्यवसाय का अर्थ (Meaning)

सामान्य व्यक्ति व्यवसाय का आशय धन कमाने से लगाते हैं। दूसरे शब्दों में धन कमाने के लिए सम्पन्न की जाने वाली क्रियाओं को प्रायः व्यवसाय कहा जाता है, जैसे एक किसान खेती करता है, डॉक्टर चिकित्सा करता है, वकील न्यायालय में मुवक्किल की पैरवी करता है, अखबार वाला समाचार–पत्रों का वितरण करता है, अध्यापक विद्यार्थियों को पढ़ाता है, व्यापारी दुकान पर माल बेचता है और कारखाना मालिक कारखाने में उत्पादन का कार्य करता है। इन सब क्रियाओं से धन कमाकर संबंधित व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, अतः इन सब क्रियाओं को व्यवसाय कहा जाता है।

व्यवसाय की परिभाषा (Definition)

प्रो. हेने के अनुसार – 'व्यवसाय से तात्पर्य ऐसी मानवीय क्रियाओं से है जिनका उद्देश्य वस्तुओं के क्रय विक्रय द्वारा धनोत्पत्ति करना या लाभ कमाना है।''

व्हीलर के शब्दों में – 'व्यवसाय से तात्पर्य एक ऐसी संस्था से है जो कि निजी लाभ की प्रेरणा से समाज को वस्तुएं एवं सेवाएं प्रदान करने के लिए संगठित एवं संचालित की जाती है।'

उर्विक के अनुसार – 'व्यवसाय वह संस्था है जो किसी ऐसी वस्तु या सेवा का उत्पादन करती है, वितरण करती है अथवा उपलब्ध कराती है जिसकी समाज के अन्य लोगों को आवश्यकता है।'

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इन सभी परिभाषाओं में इस बात पर जोर दिया गया है कि व्यवसाय एक आर्थिक क्रिया है, जिसमें वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन एवं वितरण संबंधी क्रियाओं को व्यवसाय कहा गया है। व्यवसाय की उपयुक्त परिभाषा के रूप में कहा जा सकता है कि **'व्यवसाय से तात्पर्य उन समस्त मानवीय क्रियाओं से है जो वस्तुओं या सेवाओं के उत्पादन से वितरण तक संबधित है तथा जिनका लक्ष्य समाज की अधिकतम संतुष्टि प्रदान करते हुए लाभ कमाना है।'**

इस प्रकार व्यवसाय में निम्न बातों का समावेश है–

1 यह एक मानवीय क्रिया है, क्योंकि समस्त व्यावसायिक क्रियाएं मनुष्य द्वारा सम्पन्न की जाती है।

2 यह एक सामाजिक क्रिया है, क्योंकि यह समाज की आवश्यकताओं को पूरा करती है और इससे सामाजिक जीवन स्तर में वृद्धि होती है।

3 इसका उद्देश्य वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन एवं वितरण करके लाभ कमाना है।

4 इसमें व्यापार, वाणिज्य उद्योग की सभी क्रियाएं जैसे वस्तुओं का लेन देन, बैंकिंग, बीमा परिवहन वस्तुओं का उत्पादन आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

5 इसमें केवल वैधानिक तरीकों से वस्तुओं अथवा सेवाओं के उत्पादन एवं वितरण से संबंधित क्रियाओं को ही सम्मिलित किया जाता है।

व्यवसाय की विशेषताएं (Characteristics of Business)

1. **व्यवसाय एक मानवीय क्रिया है** – व्यवसाय के अंतर्गत मनुष्य द्वारा सम्पन्न की जाने वाली आर्थिक क्रियाओं को ही सम्मिलित किया जाता है। पशु, पक्षियों और जानवरों द्वारा की गई क्रियाओं को व्यवसाय में सम्मिलित नहीं किया जाता है।

2. **जोखिम और साहस** – कोई भी व्यवसाय तभी होगा जब उसमें जोखिम एवं साहस का तत्त्व निहित होगा। इस संबंध में एक कहावत है कि 'बिना जोखिम के लाभ नहीं होता और बिना साहस के व्यवसाय नहीं होता।' यदि लाभ कमाने के लिए की जाने वाली किसी आर्थिक क्रिया में जोखिम नहीं है तो उसको व्यवसाय नहीं कहा जा सकता है यह एक अलग बात है कि किसी व्यवसाय में जोखिम कम होती है तो किसी में अधिक होती है। व्यवसाय में जोखिम उठाने के फलस्वरूप ही लाभ होता है, अतः व्यवसायी के लिए जोखिम उठाने का प्रतिफल लाभ माना जाता है।

3. **मूल्य वाली वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन एवं वितरण** – व्यवसाय के अंतर्गत केवल उन्हीं आर्थिक क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है जो मूल्य वाली वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन एवं वितरण के लिए की जाती है। एक व्यवसायी मूल्य प्राप्त करने के लिए वस्तुओं या सेवाओं का उत्पादन करता है और मूल्य के बदले ही उन वस्तुओं और सेवाओं का वितरण किया जाता है।

4. **वस्तुओं एवं सेवाओं के व्यवहारों में निरंतरता** – वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन एवं विनिमय की उन्हीं क्रियाओं को व्यवसाय कहा जाता है जो नियमित रूप से की जाती है। यदि कोई व्यक्ति क्रय–विक्रय के केवल एक या दो सौदे ही करता है या अपनी कोई वस्तु दूसरे व्यक्ति को बेचता है तो हम उसको व्यवसाय नहीं कह सकते हैं, भले ही उन सौदों में उसको लाभ हुआ हो। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति अपनी कार बेचकर कुछ लाभ कमा कर दूसरी कार खरीदता है तो इसको व्यवसाय नहीं कहा जा सकता है।

5. **उपयोगिता का सृजन** – व्यवसायी निर्मित की जाने वाली वस्तुओं की उपयोगिता का सृजन करता है। किसी भी उत्पादित वस्तु या सेवा की उपयोगिता उस समय होती है जब वह वस्तु या सेवा उपभोक्ताओं को उनके निर्धारित स्थान पर, उपयुक्त समय पर, उसी रूप में जिसमें उसका उपभोग करना है, मूल्य के बदले में उपभोग करने के अधिकार सहित प्रदान की जाये। उत्पादक कच्चे माल को निर्माणी प्रक्रिया द्वारा मशीनों की सहायता से वह स्वरूप प्रदान करता है जो उपभोक्ता चाहते हैं, व्यवसायी परिवहन द्वारा वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाता है, एक समय की बनी हुई वस्तु को अधिक उपयोगी होने की स्थिति में अन्य समय पर उपलब्ध कराता है तथा वस्तुओं का विक्रय करके उपभोक्ताओं को वह वस्तु उपभोग के लिए प्रदान करता है, ताकि उपभोक्ता अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। इस प्रकार कच्चे माल से उपभोग योग्य वस्तु का निर्माण करना **रूप उपयोगिता** है, वस्तु उपभोक्ता के स्थान पर पहुंचाना **स्थान उपयोगिता** है, क्रेता को वस्तु या सेवा उस समय उपलब्ध करना जबकि वह उसकी आवश्यकता महसूस करता है, **समय उपयोगिता** है, तथा विक्रेता द्वारा मूल्य के बदले क्रेता को वस्तु के उपभोग का अधिकार प्रदान करना **अधिकार संबंधी उपयोगिता** है। इस प्रकार उपयोगिता का सृजन करना और सृजन में सहायता देना ही व्यवसाय है।

6. **उद्योग एवं वाणिज्य संबंधी सभी क्रियाओं का समावेश** – व्यवसाय में वस्तुओं के उत्पादन से लेकर अंतिम उपभोक्ता को वस्तु का वितरण करने तक की समस्त क्रियाएं सम्मिलित होती हैं। उत्पादन की क्रियाओं को उद्योग संबंधी क्रियाएं कहते हैं तथा उत्पादित माल को उपभोक्ता तक पहुंचाने में काम आने वाली बैंक, गोदाम, परिवहन, बीमा, संदेशवाहन, पैकेजिंग तथा विज्ञापन आदि को वाणिज्यिक क्रियाएं कहते हैं। इस प्रकार उद्योग की निर्माणी क्रियाओं तथा उत्पादित वस्तुओं को उपभोक्ताओं तक पहुंचाने हेतु सम्पन्न की जाने वाली बैंकिंग, बीमा, परिवहन, गोदाम, संदेशवाहन तथा पैकेजिंग आदि क्रियाएं तथा वस्तुओं के क्रय–विक्रय की व्यापारिक क्रियाएँ व्यवसाय में सम्मिलित की जाती है।

7. **नियमन एवं वैधानिकता** – व्यवसाय में नियमन एवं वैधानिकता का लक्षण होना आवश्यक है। वर्तमान समय में प्रत्येक देश की सरकार व्यावसायिक क्रियाओं का राष्ट्रीय हित में संचालन करने तथा अनुचित क्रियाओं पर नियंत्रण रखने के लिए कई अधिनियम बनाती है। व्यवसायी को इन अधिनियमों की सीमाओं में ही अपनी आर्थिक क्रियाएं करनी होती हैं। जैसे भारतीय अनुबन्ध अधिनियम, वस्तु विक्रय अधिनियम, कारखाना अधिनियम, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम आदि। कोई भी आर्थिक क्रिया जो सरकारी कानून की अवहेलना करके सम्पन्न की जाती है, वह व्यवसाय नहीं हो सकती है।

8. **समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति**– व्यवसाय एक सामाजिक क्रिया है जिसमें एक व्यवसायी केवल अपना लाभ कमाने की इच्छा से ही कोई काम नहीं करता है, अपितु समाज के विभिन्न लोगों के हितों को भी ध्यान में रखता है। व्यवसायी समाज की आवश्यकताओं एवं भावनाओं के अनुरूप ही किसी वस्तु या सेवा का उत्पादन एवं वितरण करके, उनकी संतुष्टि द्वारा लाभ कमाता है।

9. **पूंजी का होना** – व्यावसायिक क्रियाओं के संचालन के लिए पूंजी का होना आवश्यक होता है। पूंजी के अभाव में कोई भी आर्थिक क्रिया सम्पन्न नहीं की जा सकती है। यह तो व्यवसाय की प्रकृति एवं आकार पर निर्भर करता है कि उसके लिए कितनी पूंजी की आवश्यकता होगी।

10. **व्यवसाय वातावरण से प्रभावित होता है**– वर्तमान समय में व्यवसाय एक जटिल प्रक्रिया बनता जा रहा है। प्रत्येक व्यवसायी को अपनी व्यावसायिक क्रियाएं सम्पन्न करते समय आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक वातावरण को ध्यान में रखता है और उसी के अनुरूप कार्य करता है।

आधुनिक व्यवसाय की विशेषताएं –

आधुनिक व्यवसाय की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1 **वृहत् स्तर पर उत्पादन** – आधुनिक युग में स्वचालित यंत्रों एवं मशीनों से कारखानों में बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जाता है वृहत् स्तर पर उत्पादन के अंतर्गत प्रमापीकरण, आधुनिकीकरण और विवेकीकरण की तकनीक अपनाई जाती है।

2 **बाजारों का विस्तार** – वस्तुओं और सेवाओं के बाजारों के क्षेत्र में काफी वृद्धि हुई है। स्थानीय बाजार राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुंच गये हैं। यही कारण है कि क्रय–विक्रय की क्रियाओं में भी काफी जटिलता आ गई है।

3 **यातायात एवं संदेशवाहन के नवीन साधनों का प्रयोग**– वर्तमान व्यवसाय में क्रेता और विक्रेता का व्यक्तिशः उपस्थित होना अब अनिवार्य नहीं है। संदेशवाहन के टेलीफोन एवं टेलेक्स आदि नवीन साधनों के विकास के कारण व्यापार का संचालन एक स्थान से ही संभव है। यातायात के साधनों के तीव्र विकास के कारण अब उत्पादन केवल घरेलू बाजार के लिए ही नहीं होता अपितु विश्व बाजारों के लिए भी किया जाता है।

4 **बैंकिंग एवं बीमा सेवाएँ** – बैंकिंग और बीमा सेवाएं आधुनिक व्यवसाय का एक आवश्यक अंग बन गई है। बैक से वित्तीय सुविधाएं और माल के क्रय विक्रय में भुगतान की सुविधाएं प्राप्त होती है। प्रत्येक विक्रेता अपने से दूसरे स्थान पर माल विक्रय करने पर बैंक से भुगतान प्राप्त करने की कार्यवाही करता है। आधुनिक व्यवसाय में बीमा का अत्यधिक महत्त्व है। परिवहन के दौरान लाने ले जाने वाले माल तथा गोदामों में रखे माल का बीमा करने से आर्थिक सुरक्षा प्राप्त होती है।

5 **विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन का उपयोग** – वर्तमान बाजार में प्रतिस्पर्द्धा बढ़ती जा रही है। एक ही प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक निर्माताओं द्वारा वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन किया जाने लगा है। व्यवसायी वर्ग इस प्रतिस्पर्धा में टिकने तथा ग्राहकों को आकर्षित करके बिक्री में वृद्धि करने के लिए विज्ञापन करने लगा है तथा विक्रय संवर्द्धन तकनीकी को काम में लेने लगा है। रेडियो एवं टेलीविजन पर जो विज्ञापन हम सुनते हैं और देखते हैं, वह आधुनिक व्यवसाय की ही देन है।

6 **अनुसंधान कार्यों पर बल देना** – व्यवसाय के लगभग सभी क्षेत्रों में शोध कार्यों पर ध्यान दिया जाने लगा है। तकनीकी एवं विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान करके नवीनतम मशीनों का उपयोग किया जाने लगा है जैसे व्यवसाय में कम्प्यूटर का प्रयोग किया जाने लगा है। नयी–नयी वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए बड़े व्यावसायिक उपक्रमों द्वारा **अनुसंधान एवं विकास** विभाग की स्थापना की जाती है।

7 **कंपनी या निगमों का निर्माण** – आधुनिक व्यवसाय में बड़े पैमाने पर व्यवसाय करने हेतु कंपनी या निगमों का निर्माण किया जाने लगा है। व्यावसायिक स्वामित्व के इस प्रारूप के माध्यम से व्यवसाय के लिए पूंजी प्राप्त करने में सुविधा रहती है तथा दीर्घ–स्तर पर व्यवसाय के लाभ प्राप्त होते हैं।

8 **व्यवसाय में पेशेवर प्रबंधकों की भूमिका** – व्यवसाय में इतनी जटिलताएँ आ गई हैं कि अब व्यवसाय प्रबंध ने भी एक पेशे का रूप ग्रहण कर लिया है तथा प्रबंध स्वामित्व से अलग होने लगा है। पेशेवर प्रबंधक ही आधुनिक व्यवसाय की जटिलताओं का समाधान करके सफलतापूर्वक व्यवसाय का संचालन करने में सक्षम होते हैं। योग्य प्रबंधकों का विकास करने एवं उनको प्रशिक्षण देने के लिए प्रबंध संस्थानों की स्थापना तीव्र गति से होने लगी है।

9 **सामाजिक उत्तरदायित्व की विचारधारा** – सामाजिक उत्तरदायित्व की विचारधारा आधुनिक व्यवसाय का एक महत्वपूर्ण अंग है। वर्तमान सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों के संदर्भ में कोई भी व्यवसाय सामाजिक उत्तरदायित्व की पूर्ति बिना सफलतापूर्वक नहीं चलाया जा सकता है।

व्यवसाय का महत्व (Importance of Buiness)

आधुनिक युग में व्यवसाय किसी भी राष्ट्र की आर्थिक प्रगति का आधार माना जाता है। व्यवसाय आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से बहुत उपयोगी है। व्यवसाय के महत्त्व का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है–

1. **मानवीय साधनों का अधिकतम उपयोग** – व्यवसाय के विकास से उद्योगों को बढ़ावा मिलता है। इससे रोजगार के साधनों में वृद्धि होती है और उपलब्ध मानवीय साधनों का अधिकतम उपयोग संभव होता है।

2. **भौतिक साधनों का अधिकतम उपयोग** – देश में उपलब्ध प्राकृतिक साधनों जैसे वन, खनिज, पानी आदि का विदोहन व्यवसाय पर निर्भर करता है। इन सभी साधनों का व्यवसाय के द्वारा अधिकतम उपयोग किया जाता है।

3. **अधिक उत्पादन का उपयोग** – आवश्यकता से अधिक उत्पादन होने पर बहुलता वाले क्षेत्र से अल्प उत्पादन वाले क्षेत्र में वस्तुएं भेजकर वस्तु की उपयोगिता में वृद्धि की जाती है। इस प्रकार उत्पादन बहुलता वाले क्षेत्र में कोई वस्तु बेकार नहीं जाती है और अल्प उत्पादन वाले क्षेत्र के लोग किसी भी वस्तु के उपभोग से वंचित नहीं रहते हैं।

4. **जीवन स्तर में वृद्धि** – व्यवसाय से रोजगार और आय में वृद्धि होती है और इससे समाज में व्यक्तियों की क्रय शक्ति बढ़ती है। जो वस्तुएं राष्ट्र से कम उत्पादित होती है या नहीं होती है उन्हें व्यवसाय के माध्यम से अन्य राष्ट्रों से मंगाया जाता है। इस प्रकार व्यवसाय समाज के जीवन स्तर में वृद्धि करता है। व्यवसाय के विकास में नयी–नयी वस्तुओं का उत्पादन संभव हुआ है। जिनका उपयोग करने से जनसाधारण का जीवन स्तर ऊँचा उठता है।

5. **उत्पादन में विशिष्टीकरण** – विशिष्टीकरण का जन्म ही व्यवसाय के आधार पर हुआ है। आधुनिक युग में श्रम, सामग्री और उत्पादन प्रत्येक क्षेत्र में विशिष्टीकरण की स्थिति पाई जाती है। व्यवसाय के विकास के कारण प्रतिस्पर्धा में और वस्तु की मांग में वृद्धि हुई है। प्रतिस्पर्धा में टिकने के लिए न्यूनतम कीमत पर अच्छी वस्तुएं ग्राहकों को उपलब्ध कराने के लिए व्यवसाय में विशिष्टीकरण को अपनाया जाता है।

6. **शिक्षा का विकास** – व्यावसायिक जटिलताओं के कारण व्यावसायिक शिक्षा की आवश्यकता महसूस की गई। व्यावसायिक शिक्षा क्षेत्र में इस शताब्दी में ही महत्वपूर्ण नवीनता आई है, प्रबंध विज्ञान, लेखांकन, बीमा, कानून आदि की शिक्षा के बिना आधुनिक व्यवसाय को चलाना एक कठिन कार्य हो गया है।

7. **सांस्कृतिक विकास** – अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यवसाय के माध्यम से विभिन्न देश एक दूसरे के निकट आते हैं इससे व्यावसायिक आदान–प्रदान के साथ–साथ सांस्कृतिक विचारों का भी आदान प्रदान होता है जिससे राष्ट्रों में नवीन संस्कृतियों का जन्म होता है।

8. **नई–नई वस्तुओं की खोज** – आधुनिक युग वैज्ञानिक युग है। दिन प्रतिदिन नई–नई वस्तुओं की खोज की जाती है लेकिन इन वस्तुओं की खोज का उस समय तक कोई महत्व नहीं है जब तक कि उन्हें जन साधारण तक नहीं पहुंचाया दिया जाये। जन साधारण तक वस्तुएं पहुंचने पर ही वैज्ञानिक नई वस्तुओं के आविष्कार के लिए प्रोत्साहित होते हैं। व्यवसाय के माध्यम से नई वस्तुएं जनसाधारण में प्रचलित हो पाती है।

9. **आर्थिक विकास का मापदंड** – व्यवसाय सही अर्थ में किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास का मापदंड होता है। जिस देश में व्यवसाय जितना अधिक विकसित है, आर्थिक दृष्टि से उतना ही अधिक सम्पन्न होता है। यदि हम विश्व के आर्थिक पटल पर दृष्टिपात करें, तो पायेंगे कि अमेरिका, जापान, फ्रांस तथा ब्रिटेन आदि सम्पन्न राष्ट्रों का आर्थिक विकास, व्यवसाय के कारण ही हुआ है।

व्यवसाय के उद्देश्य (Objective of Business)

मनुष्य द्वारा जो भी कार्य किया जाता है वह किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया जाता है। व्यवसाय भी एक मानवीय क्रिया है जिसका एक पूर्व निर्धारित उद्देश्य होता है। बिना उद्देश्य के व्यवसाय के लिए योजनाएं बनाना तथा उनका क्रियान्वयन करना कठिन होता है। पूर्व निर्धारित उद्देश्य एक व्यवसायी को दिशा प्रदान करते हैं और उन्हीं उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक व्यवसायी निरंतर कार्यरत रहता है। यह कहना तो युक्तिसंगत नहीं होगा कि व्यवसाय का उद्देश्य केवल लाभ कमाना है या समाज सेवा करना है, परंतु एक व्यवसायी सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए लाभ उद्देश्य तथा मानवीय उद्देश्य का अनुकूलतम संयोग निर्धारित करता है। व्यवसाय का उद्देश्य केवल व्यवसायी के हितों की रक्षा करना अर्थात् अधिकाधिक लाभ कमाना ही नहीं है, अपितु कर्मचारियों, ग्राहकों एवं समाज के अन्य वर्गों के हितों की रक्षा करना भी होता है क्योंकि ये सभी व्यवसाय से प्रभावित होते हैं और व्यवसाय की सफलता इन सभी वर्गों के सहयोग पर निर्भर करती है।

व्यवसाय के उद्देश्यों को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से निम्न भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं –

1 आर्थिक उद्देश्य

2 सामाजिक अथवा सेवा उद्देश्य

3 मानवीय उद्देश्य

आर्थिक उद्देश्य :

आर्थिक उद्देश्य व्यवसाय का सर्वोपरि उद्देश्य होता है। आर्थिक उद्देश्य से आशय लाभों को अधिकतम करने, व्यवसाय का विकास करने तथा ग्राहकों की संख्या में वृद्धि करके बाजार का विस्तार करने से है। आर्थिक दृष्टिकोण से व्यवसायी के तीन प्रमुख उद्देश्य होते हैं –

अ– लाभ प्रयोजन

ब– नव प्रवर्तन, एवं

स– ग्राहकों का सृजन

अ– लाभ प्रयोजन – प्रत्येक व्यवसायी चाहे वह छोटा हो या बड़ा, लाभ कमाने के उद्देश्य से ही कोई कारोबार प्रारंभ करता है। व्यवसाय में निरंतर पूंजी लगाता है, भावी अनिश्चितताओं की जोखिम उठाता है तथा निरंतर व्यवसाय के संचालन करने में लगा रहता है। ये सब वह लाभ की आशा में ही करता है। वह इस प्रकार लाभ एक व्यवसायी की मेहनत तथा कार्य का प्रतिफल होता है। लाभ एक प्रेरक शक्ति है जो व्यवसायी को व्यवसाय के लिए कुछ न कुछ करने के लिए बाध्य करती है। व्यवसाय में लाभ कमाना निम्न कारणों से आवश्यक है–

(i) **व्यवसायी का पारिश्रमिक** – प्रत्येक व्यक्ति अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए धन कमाने के उद्देश्य से कोई न कोई कार्य करता है। एक व्यवसायी भी धन कमाने के उद्देश्य से व्यवसाय का संचालन करता है। व्यवसायी के कार्यों का पारिश्रमिक उसके व्यवसाय में होने वाला लाभ ही होता है।

(ii) **भावी जोखिम एवं अनिश्चितताओं से सुरक्षा**– व्यवसाय में उतार–चढ़ाव आते रहते हैं। कभी तेजी आती है तो कभी मंदी आती है। व्यावसायिक परिस्थितियों में परिवर्तन होने के कारण कभी हानि भी हो सकती है। अतः व्यवसायी को तेजी की अवस्था में इतना लाभ अवश्य कमा लेना चाहिए कि भविष्य में यदि हानि हो भी तो वह अपने व्यवसाय के अस्तित्व को बनाये रख सके।

(iii) **व्यावसायिक कुशलता का मापदंड** – कोई व्यवसायी कुशल है या अकुशल, इसका निर्धारण सामान्यतः उसके व्यवसाय से होने वाले लाभों के आधार पर ही किया जाता है। **पीटर एफ ड्रकर** के शब्दों में, 'लाभ व्यावसायिक कुशलता का निश्चयात्मक प्रमाण है।'' जब व्यवसाय में लाभ पर्याप्त मात्रा में हो रहे हैं और भविष्य में भी लाभ अधिक होने की संभावना है तो यह माना जायेगा कि व्यवसाय सफलता की ओर अग्रसर है।

(iv) **व्यवसाय के विकास एवं विस्तार हेतु** – कीथ एवं गुबेलिनी के शब्दों में, 'वह अधिकाधिक लाभ की संभावना ही है जो व्यवसाय के विकास एवं विस्तार के लिए प्रेरित करती है।'' प्रत्येक व्यवसायी धीरे–धीरे अपने व्यवसाय का विस्तार करना चाहता है जो सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी आवश्यक है। व्यवसाय के विकास एवं विस्तार कार्यक्रमों को लागू करने के लिए अतिरिक्त वित्त की आवश्यकता होती है। यदि व्यवसाय में लाभ अच्छे हो रहे हैं तो आंतरिक साधनों से ही व्यवसाय का विकास करना संभव होगा। बाहरी लोग भी व्यवसाय में तभी अपनी पूंजी का विनियोजन करेंगे जब उसमें लाभ अच्छे हो रहे हों तथा भविष्य में भी अधिक लाभ होने की संभावना हो।

ब. नवप्रवर्तन – व्यवसाय का दूसरा आर्थिक उद्देश्य नव प्रवर्तन करना होता है। नवप्रवर्तन व्यवसाय की सफलता का आधार होता है। सामाजिक परिवर्तन एवं उपभोक्ताओं की अभिरूचियों में परिवर्तन होने से पुरानी वस्तुओं में ग्राहकों की अभिरूचि नहीं रह पाती है। व्यवसायी नयी–नयी वस्तुओं का उत्पादन करके अपने लाभों में वृद्धि भी कर सकता है और अपने ग्राहकों को भी अधिकतम संतुष्टि प्रदान कर सकता है। अतः व्यवसाय में हमेशा नवीनतम वस्तुओं के उत्पादन के लिए प्रयास जारी रहते हैं। नवप्रवर्तन के अन्तर्गत नयी वस्तुएँ बनायी जाती हैं, उत्पादन प्रक्रिया में सुधार किया जाता है; पुरानी वस्तुओं के नये प्रयोग ढूँढे जाते हैं और ग्राहकों की आवश्यकताओं को श्रेष्ठतम ढंग से संतुष्ट किया जाता है।

स. ग्राहकों का सृजन करना – व्यवसायी का प्रमुख उद्देश्य अपने माल की अधिकतम बिक्री करना होता है। जो तभी संभव है जब ग्राहकों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो। व्यवसायी विज्ञापन एवं प्रभावशाली विक्रय कला के माध्यम से अधिकाधिक ग्राहकों को आकर्षित करता है। **पीटर एफ. ड्रकर** के अनुसार, ''व्यावसायिक उद्देश्य की केवल एक ही वैध परिभाषा है ग्राहकों का सृजन करना।'' व्यवसाय में ग्राहकों की संख्या में वृद्धि करके बिक्री की मात्रा में वृद्धि द्वारा लाभों को अधिकतम करने का प्रयास किया जाता है।

सामाजिक अथवा सेवा उद्देश्य :

व्यवसाय और समाज में गहरा संबंध होता है। समाज के बिना व्यवसाय का अस्तित्व नहीं रह जाता है। समाज से ही व्यवसाय के लिए पूँजी प्राप्त होती हैं, समाज के लोग ही व्यवसायी द्वारा उत्पादित वस्तुओं का उपभोग करते हैं तथा स्वयं व्यवसायी भी समाज में ही रहता है और उसका अभिन्न अंग होता है। व्यवसाय का महत्वपूर्ण उद्देश्य यह होता है कि समाज की भावनाओं एवं मान्यताओं के अनुरूप कार्य करते हुए ही लाभ

कमाया जाये। यदि कोई व्यवसायी समाज की अपेक्षाओं के विरूद्ध कार्य करता है तो ऐसी स्थिति में वह व्यवसाय अधिक समय तक अपना अस्तित्व नहीं बनाये रख सकता है। व्यवसायी को समाज सेवा एवं समाज कल्याण के लिए भी कार्य करना चाहिए आज के क्रेता बाजार में जहाँ 'क्रेता बाजार का राजा है' सामाजिक उद्देश्यों का महत्व और भी अधिक हो गया है। व्यवसाय के प्रमुख सामाजिक उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

(i) **उपलब्ध साधनों का सदुपयोग करना** – व्यवसाय देश के साधनों के आधार पर ही चलता है। व्यवसायी समाज के इन साधनों के सजग प्रहरी के रूप में कार्य करता है। उसको साधनों का प्रयोग ऐसी वस्तुओं के उत्पादन के लिए करना चाहिए जो समाज के अधिकांश लोगों के लिए आवश्यक हों।

(ii) **सामाजिक कल्याण एवं विकास कार्य** – व्यवसायी जो भी लाभ कमाता है वे सब समाज के लोगों से ही प्राप्त होते है। व्यवसाय में कमाये जाने वाले लाभों का कुछ हिस्सा समाज कल्याण एवं विकास कार्यों में लगाना चाहिए। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए बहुत से व्यवसायी शिक्षण संस्थाएँ एवं चिकित्सालय आदि का संचालन करते हैं।

(iii) **पर्याप्त मात्रा में माल उपलब्ध कराना** – व्यवसाय को समाज के लोगों के लिए पर्याप्त मात्रा में उनकी आवश्यकता की वस्तुएं उपलब्ध करानी चाहिए। समाज में गरीब, अमीर, शिक्षित अशिक्षित सभी प्रकार के लोग रहते हैं और इन सबकी आवश्यकताएँ भी भिन्न भिन्न स्तर की होती है। व्यवसायी का यह कर्तव्य है कि इन सभी प्रकार के लोगों की आवश्यकताओं को समय पर संतुष्ट किया जाये।

(iv) **वस्तुओं का उचित मूल्य लेना** – व्यवसायियों को ग्राहकों से वस्तुओं का उचित मूल्य ही प्राप्त करना चाहिए। कोई भी व्यवसायी हानि उठाकर तो अपनी वस्तुओं को नहीं बेच सकता है और बेचनी भी नहीं चाहिए, परंतु अनुचित लाभ कमाने की भावना से मूल्यों में अनावश्यक वृद्धि भी नहीं करनी चाहिए। मूल्यों की अनुचित वृद्धि करने से सामान्य उपभोक्ताओं की क्रय शक्ति पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

(v) **नवीनतम वस्तुओं का उत्पादन** – व्यवसायियों को समाज की आवश्यकता एवं अभिरूचियों के अनुरूप नयी–नयी वस्तुओं का उत्पादन करके जीवन स्तर में वृद्धि करनी चाहिए। समय परिवर्तन के साथ–साथ सामाजिक मूल्यों तथा मान्यताओं में भी परिवर्तन होता है। एक व्यवसायी नयी परिस्थितियों के अनुरूप वस्तुओं का उत्पादन करता है तो उसको भी अधिक लाभ होगा और समाज के लोगों को भी अधिकतम संतुष्टि प्राप्त होगी।

(vi) **सरकारी नियमों एवं कानूनों का पालन** – व्यवसाय के नियमन एवं नियंत्रण के लिए सरकार ने अनेक प्रकार के नियम एवं कानून बना रखे हैं। ये कानून सरकार सामाजिक हितों की रक्षार्थ एवं व्यावसायियों की अनुचित कार्यवाहियों को रोकने के लिए बनाती है। व्यवसायियों का दायित्व है कि वे इन कानूनों एवं नियमों का पूर्णरूपेण पालन करें तथा इनके अनुरूप कार्य करते हुए समाज सेवा करें।

(vii) **सरकारी करों का नियमित भुगतान करना** – सरकार अपनी आय के स्रोतों में वृद्धि करने हेतु व्यवसाय पर अनेक प्रकार के कर लगाती है, जैसे वेट उत्पादन कर, सीमा शुल्क, आयकर और संपति कर, सेवा शुल्क/कर आदि। इन करों के रूप में धनराशि प्राप्त करके सरकार समाज कल्याण कार्यों पर खर्च करती है। व्यवसायियों को अपने पर लगाये गये करों का भुगतान नियमित रूप से समय पर करना चाहिए।

मानवीय उद्देश्य :

वर्तमान युग में कोई भी व्यवसायी स्वयं अकेला ही संपूर्ण कार्यों की देख–रेख नहीं कर सकता है। व्यावसायिक उपक्रमों का आकार बड़ा होने के कारण दूसरे लोगों से कार्य कराना पड़ता है। व्यवसाय में लगने वाली पूंजी की व्यवस्था भी व्यवसायी अपने साधनों से न करके दूसरे लोगों की सहायता से करता है। इस प्रकार व्यवसाय के प्रत्येक स्तर पर व्यवसायी का संपर्क समाज के अन्य लोगों से अवश्य होता है। व्यवसाय का यह महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है कि जो भी व्यक्ति किसी भी कार्य से व्यवसाय के संपर्क में आता है उसके साथ मानवीय व्यवहार करना चाहिये। मानवीय व्यवहार वह है जिसकी प्रत्येक व्यक्ति अन्य व्यक्तियों से अपेक्षा करता है। व्यवसाय के प्रमुख मानवीय उद्देश्य निम्न हैं –

(i) श्रमिकों के साथ मानवीय व्यवहार – व्यवसाय में काम करने वाले सभी व्यक्तियों के साथ मनुष्य जैसा बर्ताव करना चाहिए। कर्मचारियों को इतना वेतन दिया जाना चाहिये कि वे अपना गुजारा आसानी से कर सकें तथा कार्य करने का भी उचित समय होना चाहिये। श्रमिकों को काम करने के लिए आदेश व निर्देश मानवीय आधार पर ही देने चाहिये।

(ii) **श्रम कल्याण एवं कार्य दशा में सुधार** – व्यवसाय का महत्वपूर्ण उद्देश्य यह भी होता है कि श्रमिकों एवं कर्मचारियों के कल्याण कार्यों को व्यवसायी उचित स्थान दें । श्रमिकों की शिक्षा, चिकित्सा, आवास आदि की पूरी व्यवस्था की

जानी चाहिए। जिस स्थान पर कर्मचारी काम करता है वहां पर भी शुद्ध पानी, हवा, रोशनी आदि की व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि कर्मचारी पूरी रूचि से कार्य कर सकें और उनमें अपनत्व की भावना विकसित हो सके।

(iii) **कर्मचारियों को उचित वेतन देना** – व्यवसाय का कारखाने में जिन व्यक्तियों को कार्य पर रखा जाता है, उनको उचित पारिश्रमिक दिया जाना चाहिए। उचित पारिश्रमिक से यहां आशय यह है कि कर्मचारियों को इतना वेतन तो अवश्य ही दिया जाना चाहिए कि जिससे वे अपना निर्वाह आसानी से कर सकें।

(iv) **विनियोक्ताओं को उचित प्रतिफल देना** – आज व्यावसायिक जगत में कंपनी संगठन का विकास होने से व्यवसाय की वास्तविक पूंजी का मालिक तो अंशधारी होता है, जो व्यवसाय स्थल से कोसों दूर रहता है। संचालक मंडल के सदस्य उस धन के प्रन्यासी होते हैं। अतः इन व्यवसायियों का दायित्व होता है कि अंशधारियों को समय पर उनके द्वारा लगाये धन पर उचित लाभांश दिया जाये।

(v) **उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करना** – व्यवसायी समाज का प्रन्यासी होता है जो समाज के विभिन्न लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। व्यवसायी को अपने ग्राहकों को समय पर, अच्छी किस्म की वस्तु, उचित कीमत पर उपलब्ध करा समाज सेवा करनी चाहिए।

व्यवसाय के प्रकार (Types of Business)

1. **एकल व्यापार** – व्यावसायिक स्वामित्व का यह प्रारूप अति प्राचीन है। इसमें व्यवसाय का स्वामित्व केवल एक ही व्यक्ति का होता है। वह व्यक्ति ही इसकी स्थापना करता है, उसमें पूंजी लगाता है, उसका प्रबंध एवं संचालन करता है, उसकी सभी जोखिमें उठाता है, उसके विकास के लिए निरंतर प्रयत्न करता है और उसकी समाप्ति करता है। इस प्रकार इस प्रारूप में व्यवसाय के प्रारंभ से अंत तक की सभी क्रियाओं पर एक ही व्यक्ति का नियंत्रण रहता है।

2. **संयुक्त हिन्दू परिवार व्यवसाय** – संयुक्त हिन्दू परिवार प्रथा ने व्यावसायिक स्वामित्व के इस प्रारूप का विकास किया। इस प्रारूप में व्यवसाय पर परिवार के मुखिया का नियंत्रण रहता है। परिवार के अन्य सभी सदस्य उसके निर्देशानुसार कार्य करते हैं। परिवार का मुखिया सामान्यतः परिवार में सबसे अधिक आयु वाला व्यक्ति होता है। यह व्यक्ति ही व्यवसाय की समस्त गतिविधियों में प्रमुख भूमिका अदा करता है। इसे **कर्ता** के नाम से जाना जाता है।

3. **साझेदारी** – व्यावसायिक स्वामित्व का यह प्रारूप सामूहिक स्वामित्व या संयुक्त स्वामित्व का प्रतीक है। व्यावसायिक स्वामित्व के इस प्रारूप में दो या दो से अधिक व्यक्ति मिलकर अपने मध्य हुए समझौते के अनुसार व्यवसाय की स्थापना करते हैं, पूंजी लगाते हैं, प्रबंध करते हैं और लाभों का विभाजन करते हैं। स्वामित्व के इस प्रारूप में सामान्य व्यवसाय करने वाली साझेदारी में सदस्यों की अधिकतम संख्या 50 है।

4. **संयुक्त पूंजी वाली कंपनियां** – संयुक्त पूंजी वाली कंपनियां, व्यावसायिक स्वामित्व का विकसित और आधुनिक प्रारूप है। वर्तमान में इसका महत्त्व सर्वाधिक है। संयुक्त पूंजी वाली कंपनी विधान द्वारा निर्मित कृत्रिम व्यक्ति है, जिसका अपने सदस्यों से पृथक् अस्तित्व होता है, जिसका एक पृथक् नाम होता है, जिसके जीवन पर सदस्यों के आवागमन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, जिसकी एक सार्वमुद्रा होती है और जिसका प्रबंध स्वामियों (अंशधारियों) द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों (संचालकों) द्वारा किया जाता है। इसकी पूंजी छोटे–छोटे अंशों में विभाजित होती है। इसके सदस्यों का साधारणतः दायित्व सीमित होता है। यह दूसरों पर वाद प्रस्तुत कर सकती है और दूसरे इस पर वाद प्रस्तुत कर सकते हैं।

5. **सहकारी संस्थाएँ** – व्यावसायिक स्वामित्व के इस प्रारूप का विकास अभी हाल ही के कुछ वर्षों में हुआ है। प्रमुखतः सहकारी समितियां अधिनियम, 1912 से ही इनका सुव्यवस्थित विकास हुआ है। यह व्यावसायिक स्वामित्व का ऐसा प्रारूप है जिसमें कुछ व्यक्ति स्वेच्छा से सहकारिता के आधार पर संगठित होते हैं और अपने साधनों को एकत्रित करते हैं। इन साधनों से अपने पारस्परिक हितों की रक्षा के लिए व्यवसाय का संचालन करते हैं। ये व्यक्ति व्यवसाय की सभी गतिविधियों के निष्पादन में सहकारिता के प्रमुख सिद्धांत **'एक सबके लिए और सब एक के लिए'** का पालन करते हैं। सहकारी संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य अपने सदस्यों को विभिन्न प्रकार की सुविधाएं प्रदान करना होता है। अन्य शब्दों में इन संस्थाओं की स्थापना लाभ उद्देश्य से प्रेरित होकर नहीं की जाती।

6. **सार्वजनिक उद्यम/ उपक्रम (PSUs)** – व्यावसायिक क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप से सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना भी होने लगी। वर्तमान में इनकी संख्या में निरंतर वृद्धि होती जा रही है। व्यावसायिक स्वामित्व के इस प्रारूप में स्थापित संस्थाओं का स्वामित्व या प्रबंध या दोनों ही

राजकीय हाथों में होता है। इस प्रारूप में स्थापित उपक्रमों का संगठन मुख्यतः विभागीय संगठन, निगम, कंपनी परिचालन अनुबंध व्यवस्था, प्रन्यास मंडल एवं सूत्रधारी कंपनी आदि प्रारूपों में किया जाता है।

एकल व्यापार (Sole Trade)

एकल व्यापार, व्यवसाय का वह स्वरूप है जिसको एक व्यक्ति स्थापित करता है। वह व्यक्ति व्यापारिक संस्था का संस्थापक, प्रबंधक एवं संचालक होता है तथा समस्त कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है। इसी कारण इस व्यक्ति को 'एकमात्र स्वामी' (Sole Proprietor) कहते हैं और इस व्यापारिक स्वरूप को एकल व्यापार (Sole Proprietorship) कहते हैं। एकल व्यापारी के अतिरिक्त इसको व्यक्तिगत साहसी (Individuual), व्यक्तिगत स्वामी या व्यवस्थापक (Sole organiser), एकल स्वामी (Sole Owner) आदि नामों से पुकारा जाता है।

एकल व्यापार की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं–

1. **किम्बाल एवं किम्बाल** – ''एकल व्यापारी वह है जो अपने देश के सामान्य नियमों तथा विशिष्ट नियमों, जो उसके व्यवसाय पर प्रभाव डालते हों, के अंतर्गत अपने व्यवसायिक क्षेत्र में सर्वोच्च अधिकारी होता है।''
2. **डॉ. जॉन ए. शूबिन** – ''एकाकी स्वामित्व वाले व्यवसाय के अंतर्गत एक ही व्यक्ति संगठनकर्ता, वही स्वामी होता है और व्यवसाय को अपने निजी नाम से संचालित करता हैं।''
3. **चार्ल्स डब्ल्यू गर्सटनबर्ग** – ''एकल व्यापार वह व्यापार है, जो एक व्यक्ति द्वारा ही प्रारंभ किया जाता है तथा वह स्वयं स्वामी होने के साथ–साथ व्यापार का प्रबंधकर्ता एवं धुरी भी होता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि एकल व्यपार वह व्यापार है जिसकी स्थापना एक ही व्यक्ति द्वारा होती हैं, जो उसका स्वामी होने के साथ–साथ प्रबंधक, संचालक एवं समस्त लाभ–हानि के लिए भी उत्तरदायी होता है।

एकल व्यापार की विशेषताएँ (Characteristics of Sole Trade)

1. **एकल स्वामित्व** – एकल व्यापार का स्वामित्व केवल एक ही व्यक्ति के हाथ में होता है। वह व्यापार के समस्त कार्यों के लिए स्वयं उत्तरदायी होता है।
2. **एकल स्वामित्व प्रबंध** – एकल व्यापार में एक ही व्यक्ति व्यापार का स्वामी होता है। अतः वह समस्त व्यापारिक क्रियाओं कर स्वयं ही प्रबंध एवं संचालन करता है।
3. **वैधानिक प्रतिबंध से मुक्ति** – एकल व्यापार को प्रारंभ करने में किसी भी प्रकार का वैधानिक प्रतिबंध लागू नहीं होता है। इस व्यापार में कोई भी व्यक्ति और कभी भी प्रारंभ कर सकता है, केवल व्यापार करने वाले व्यक्ति में अनुबंध करने की क्षमता होनी चाहिए।
4. **सीमित व्यापार क्षेत्र** – एकल व्यापारी स्वयं समस्त व्यापार की देखरेख करता है। अतः उसका व्यापारिक क्षेत्र सीमित होता हैं।
5. **असीमित दायित्व** – एकाकी व्यापार में व्यापारी समस्त व्यापारिक ऋण के भुगतान के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है। अतः उसका दायित्व घरेलु सम्पतियों तक विस्तृत होता है।
6. **पूँजी पर एकाधिपत्य** – व्यवसाय में एकल व्यापारी स्वयं ही व्यापार की आवश्यक पूँजी का प्रबंध करता है। यही कारण है पूंजी पर उसका एकाधिकार होगा।
7. **व्यापार की स्वतंत्रता** – व्यापारी अपनी इच्छानुसार किसी भी प्रकार का व्यापार आंरभ कर सकता है, किन्तु यदि किसी विशेष प्रकार के व्यापार पर राज्य सरकार का नियंत्रण हो तो व्यापार आरंभ करने से पूर्व सरकार से अनुमति लेनी होगी।
8. **ऐच्छिक प्रारंभ एवं अंत** – एकल व्यवसाय को इच्छानुसार कभी भी प्रारंभ किया जा सकता है और इच्छानुसार कभी भी समाप्त किया जा सकता है।

एकल व्यापार की उपादेयता/महत्व (Advantages of sole Trade)

एकल व्यापार व्यावसायिक संगठन का सबसे प्राचीन स्वरूप है, किंतु आज भी यह बहुत लोकप्रिय है। विश्व के समस्त देशों में यह प्रणाली पाई जाती है। एकल व्यापार की उपादेयता एवं महत्व को निम्नप्रकार से समझा जा सकता हैं–

1. **व्यापार आरंभ करने में सुगमता** – इस व्यापार को सुविधापूर्वक तथा शीघ्रता से स्थापित किया जा सकता है। कोई भी व्यक्ति जब चाहे इस व्यापार का आरंभ कर सकता है, क्योंकि इसके प्रारंभ करने में कोई वैधानिक कार्यवाही पूरी नहीं करनी पड़ती।
2. **शीघ्र निर्णय** – एकल व्यापारी अपने व्यापार का स्वयं ही स्वामी होता है। अतः उसे व्यापारिक मामलों में अन्य व्यक्तियों से विचार–विमर्श करने की आवश्यकता नहीं होती।
3. **कार्य में लगन** – इस प्रकार के व्यापार में व्यापारी का समस्त लाभ पर एकाधिकार होता है। इस प्रेरणा से प्रेरित

होकर वह व्यापारिक कार्यों को अत्यधिक परिश्रम, लगन, और चतुराई से करता है।

4. **मितव्ययता** – एकल व्यापार में असीमित दायित्व होने के कारण धन का दुरूपयोग नहीं किया जाता है, क्यांकि व्यापारी जानता है कि जो हानि उनके लिए वह स्वयं जिम्मेदार हैं।

5. **गोपनीयता** – आधुनिक प्रतिस्पर्धा के युग में गोपनीयता का व्यापार में अत्यधिक महत्त्व है। एकाकी व्यापारी अपने व्यापारिक रहस्यों को गुप्त रख सकता है। यह लाभ अन्य व्यापारिक स्वरूपों में सुलभ नहीं है।

6. **व्यक्तिगत संपर्क** – एकल व्यापारी अपने ग्राहकों को आकर्षित करने करने के लिए नम्रता और शिष्टता से व्यवहार करता है। इससे ग्राहक एवं व्यापारी में व्यक्तिगत संपर्क स्थापित हो जाता है।

7. **व्यवसाय की स्वतंत्रता** – इस व्यापार में व्यापारी अपनी इच्छानुसार स्वतंत्रतापूर्वक व्यवसाय का चुनाव कर सकता है।

8. **पूर्ण नियंत्रण** – एकल व्यापार में व्यापारी व्यापार का सर्वेसर्वा होता है। वह व्यक्ति व्यापार का स्थापक, प्रबंधक एवं संचालक होता है। इस कारण उसका व्यापार पर पूर्ण नियंत्रण होता है।

9. **लाभ पर एकाधिकार** – इस प्रकार के व्यापार में एक व्यक्ति ही समस्त लाभ का प्राप्तकर्ता होता है। इस प्रेरणा से वह अत्यधिक परिश्रम और चतुराई से कार्य को सम्पन्न करके लाभ को अधिकतम बनाने का प्रयत्न करता है।

10. **ऋण प्राप्ति में सुविधा** – व्यक्तिगत साख व्यापार की सम्पत्ति होती है। अतः व्यापारी इसको सृजन करने में सतत् प्रयत्नशील रहता है। इसी के आधार पर वह सरलता से ऋण भी प्राप्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त असीमित दायित्व एवं व्यक्तिगत संबंध भी इस संस्था को ऋण प्राप्ति में विशेष सुविधा प्रदान करते हैं।

11. **आत्मविश्वास** – एकल स्वामित्व व्यापार की बुनियाद एक ही व्यक्ति के ऊपर निर्भर होती है। वह अपने व्यापार का सर्वेसर्वा है। अतः उसमें सतर्कता, उत्तरदायित्व एवं आत्मविश्वास की भावना स्वतः ही पैदा हो जाती है।

12. **सतर्कता** – क्षति होने की दशा में एकल व्यापारी पर समस्त हानि का दायित्व होता है, अतः वह सदैव सतर्क रहता है। वह व्यापार की समस्त परिस्थितियों से परिचित रहता है।

13. **पैतृक ख्याति का लाभ** – पैतृक व्यवसाय की दशा में एकल व्यापारी को अपने पूर्वजों की ख्याति का पूर्ण लाभ प्राप्त होता है और उसके आधार पर वह अपने व्यापार में बुद्धिमानी एवं सतर्कता से और भी वृद्धि कर सकता है।

14. **व्यक्तिगत गुणों का विकास** – एक कुशल व्यापारी के गुणों का पूर्ण विकास एकाकी व्यापारिक संगठन में ही संभव है, जैसे जोखिम झेलने की क्षमता, आपत्तियों का साहस के साथ सामना आदि का विकास इसी व्यापारिक स्वरूप में होता है।

15. **प्रयत्न तथा परिणाम में प्रत्यक्ष संबंध** – व्यापार में प्रेरणा एवं लगन उत्पन्न करने के लिए आवश्यक है कि प्रयत्न और परिणाम में प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित हो। व्यापारिक स्वरूपों के अन्य संगठनों की अपेक्षा यह स्थिति एकल स्वामित्व व्यापार में अधिक संभव है, क्योंकि वह जानता है कि जितना अधिक लाभ होगा उसका वह स्वयं अधिकारी है।

16. **सामाजिक महत्व** – एकल व्यापार का सामाजिक महत्व भी है । इससे समाज के अधिकांश व्यक्तियों को रोजगार की प्राप्ति होती है, क्योंकि इस व्यापार में समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छा एवं योग्यता के अनुसार कार्य करने का अवसर प्राप्त होता है। यह व्यापार बहुत कम पूंजी से एवं बिना किसी वैधानिक प्रतिबंध के प्रारंभ किया जा सकता है अतः इसका अत्यधिक सामाजिक महत्व भी है।

एकल व्यापार की सीमाएँ (Limitations of sole Trade)

इस प्रकार के व्यापार में उपर्युक्त लाभों के अतिरिक्त निम्नलिखित दोष हैं –

1. **असीमित दायित्व** – एकल व्यापार का असीमित दायित्व सबसे बड़ा दोष हैं असीमित दायित्व के कारण उसकी व्यक्तिगत संपति सुरक्षित नहीं रहती।

2. **सीमित पूंजी** – साधारणतया एकल व्यापार की पूंजी कम तथा सीमित होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि पूंजी की मात्रा उस व्यक्ति की सामर्थ्य पर निर्भर होती है।

3. **सीमित साख** – एकल व्यापार में व्यापार की ख्याति सीमित होती है। इस सीमितता के परिणामस्वरूप उसकी साख प्राप्त करने की शक्ति भी सीमित हो जाती है।

4. **सीमित प्रबंध योग्यता** – एकल व्यापार की प्रबंध संबंधी योग्यता भी सीमित होती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपूर्ण होता है, क्योंकि उसकी निर्णय शक्ति, विवेक शक्ति एवं प्रबंध योग्यता सीमित होती है और

यह तथ्य व्यापार सफलता में बाधक सिद्ध होता है।,

5. **अनुपस्थिति में क्षति** – एकल व्यापार की सफलता व्यापारी की उपस्थिति एवं व्यक्तिगत योग्यता पर निर्भर होती है। अतः व्यापार में उसकी अनुपस्थिति अनुचित ही नहीं बल्कि व्यापार को क्षति भी पहुंचाती है। इसका मुख्य कारण यह है कि उसकी अनुपस्थिति में ग्राहक अन्य व्यापारियों से भी अपना व्यक्तिगत संपर्क स्थापित कर सकते हैं।

6. **अस्थायी अस्तित्व** – एकल व्यापार की अस्तित्व अस्थायी होता है। व्यापारी की योग्यता एवं स्वास्थ्य के ऊपर ही इस प्रकार के व्यवसाय का अस्तित्व होता है। व्यापारी के मरने के पश्चात् या अस्वस्थता की अवस्था में इस प्रकार का व्यापार स्वरूप प्रायः समाप्त हो जाता है।

7. **जल्दी में निर्णय** – एकल व्यापारी शीघ्र निर्णय तो कर सकता है, किंतु योग्य व्यक्तियों के परामर्श के अभाव में शीघ्र निर्णय प्रायः व्यापार के लिए हानिकारक सिद्ध हो जाते हैं।

8. **बड़े पैमाने के कारोबार के लिए अनुपयुक्त** – सीमित पूंजी तथा सीमित प्रबंध योग्यता के कारण एकल व्यापार बड़े पैमाने के कारोबार के लिए अनुपयुक्त है।

साझेदारी
Partnership

जब दो या दो से अधिक व्यक्ति मिलकर पारस्परिक लाभ के उद्देश्यों के लिए किसी निश्चित व्यापारिक समझौते के अनुसार किसी वैधानिक व्यापार में अपनी पूंजी, योग्यता और श्रम को लगाने के लिए सहमत हो जाते हैं, तो कहा जाता है कि उन्होंने साझेदारी कर ली है। हमारे देश में साझेदारी **भारतीय साझेदारी अधिनियम, 1932** के अनुसार शासित होती है।

हेने ने साझेदारी की परिभाषा सरल एवं उपयुक्त शब्दों में दी है। उनके अनुसार – ''साझेदारी विभिन्न व्यक्तियों में, जो प्रसंविदा करने की क्षमता रखते हैं, परस्पर एक प्रतिज्ञा है, जिसके अनुसार वे अपने लाभार्थ कोई वैधानिक व्यवसाय करते हैं।''

अमरीकी साझेदारी अधिनियम के अनुसार – ''साझेदारी दो या दो से अधिक व्यक्तियों का एक संघ होता है, जो सहस्वामियों की भांति किसी व्यवसाय को लाभ के लिए चलाते है।

भारतीय साझेदारी अधिनियम, 1932 की धारा 4 के अनुसार – ''साझेदारी उन व्यक्तियों का पारस्परिक संबंध है, जो सबके द्वारा या उन सबकी ओर से एक व्यक्ति द्वारा संचालित व्यापार के लाभ का विभाजित करने के लिए सहमत हो जाते हैं।''

अंत मे हम यह कह सकते हैं कि साझेदारी दो या दो से अधिक व्यक्तियों का किसी विशेष व्यवसाय को संचालित करने के लिए एक संघ है। इसके साझेदार संयुक्त रूप से पूंजी प्रदान करते हैं, व्यवसाय का प्रबंध करते हैं तथा लाभ और हानि में बराबर हिस्सा लेते हैं।

जो व्यक्ति परस्पर लाभ को विभाजित करने के लिए साझेदारी स्थापित करते हैं, व्यक्तिगत रूप से **साझेदार** और **सामूहिक रूप से फर्म** कहलाते हैं और वे जिस नाम से व्यापार करते हैं, उसे फर्म का नाम कहते हैं।

साझेदारी के लक्षण (Features of Partnership) :

साझेदारी में निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं –

1. **समझौता** – साझेदारी का जन्म समझौते से होता है। अतः साझेदारों के मध्य समझौता होना आवश्यक है। समझौता लिखित या मौखिक हो सकता है, किंतु लिखित समझौता सदैव ठीक होता है।

2. **दो या दो से अधिक व्यक्ति** – साझेदारी के लिए यह आवश्यक है कि कम से कम दो या दो से अधिक व्यक्ति होने चाहिए। इसका कारण यह है कि कोई भी अकेला व्यक्ति स्वयं का साझेदार नहीं हो सकता। साझेदारों की अधिकतम संख्या के बारे में साझेदारी अधिनियम में कहीं भी कोई उल्लेख नहीं किया गया है, किंतु भारतीय कंपनी अधिनियम की धारा 4 के अनुसार, एक साझेदारी संस्था में 50 से अधिक व्यक्ति नहीं होने चाहिये।

3. **व्यवसाय का होना** – समझौता किसी व्यवसाय संचालन के उद्देश्य से होना चाहिए।

4. **वैधानिक उद्देश्य** – साझेदारी व्यवसाय का उद्देश्य वैधानिक होना चाहिए।

5. **लाभ का विभाजन** – साझेदारी का प्रमुख उद्देश्य लाभ उत्पन्न करना तथा बांटना है। परोपकार अथवा जन कल्याण के उद्देश्य से स्थापित साझेदारी नहीं है, क्योंकि इसमें लाभ का विभाजन नहीं होता।

6. **व्यवसाय का संचालन सबके द्वारा या किसी एक के द्वारा** – व्यवसाय का संचालन समस्त साझेदारों द्वारा अथवा उन सबकी ओर से किसी एक साझेदार द्वारा भी हो सकता है। किंतु सभी साझेदारों को इस बात पर सहमत होना चाहिए कि उनमें से कुछ या एक साझेदार सब की ओर से फर्म का संचालन करेगा।

7. **असीमित दायित्व** – साझेदारी में फर्म के ऋणों के लिए

प्रत्येक साझेदार व्यक्ति गत रूप से तथा सभी साझेदार संयुक्त रूप से उत्तरदायी होते हैं। इस प्रकार उनका दायित्व असीमित होता है।

8. **साझेदारों के मध्य प्रतिनिधि संबंध** – प्रत्येक साझेदार अपनी फर्म तथा अन्य साझेदारों का प्रतिनिधि अर्थात् अभिकर्ता होता है।

अवैध साझेदारी – निम्नलिखित परिस्थितियों में साझेदारी अवैध हो जाती है–

1 व्यवसाय में दो से कम व्यक्ति रह जाने पर।

2 साधारण व्यवसाय में 50 से अधिक व्यक्ति हों।

3 यदि साझेदारी की स्थापना किसी अवैधानिक उद्देश्य के लिए की गई हो।

4 यदि किसी शत्रु राष्ट्र के व्यक्ति के साथ व्यवसाय किया जाये।

5 यदि साझेदारी व्यवसाय जन–हित अथवा अन्तर्राष्ट्रीय नीति के विरूद्ध हो।

6 यदि साझेदारी व्यवसाय सरकारी नीति के विरूद्ध हो।

साझेदारी के लाभ (Advantages of Partnership)

1 **सुगम स्थापना** – साझेदारी व्यापार को स्थापित करना अत्यंत सरल है। इसके लिए जो व्यक्ति व्यापार करना चाहते हैं, वे परस्पर साझेदार होकर अपनी फर्म को पंजीकृत करवा लेते हैं। यद्यपि इस व्यापार की स्थापना में एकल स्वामित्व व्यापार से अधिक कार्यवाही करनी पड़ती है किंतु संयुक्त पूंजी वाली कंपनी की स्थापना की अपेक्षा यह सरल और सुविधाजनक है।

2 **व्यापार संचालन में सुविधा** – साझेदारी में व्यापार संचालन अत्यधिक सुगमता के साथ हो जाता है। इसमें विभिन्न योग्यताओं वाले व्यक्तियों को लाभ सरलता से प्राप्त हो जाता है। अतः वे अपनी विशेष योग्यताओं द्वारा व्यापार संचालन में अपना योगदान प्रदान करते हैं।

3 **खातों की गोपनीयता** – साझेदारी फर्म की संयुक्त पूंजी वाली कंपनियों की तरह अपने खातों को प्रकाशित नहीं करना पड़ता। अतः इस व्यापारिक स्वरूप से व्यापारिक तथ्यों की गोपनीयता भी रखी जा सकती है, जिससे भविष्य में लाभ प्राप्ति का अवसर मिल सकता है।

4 **ऋण प्राप्ति में सुविधा** – साझेदारी संस्था में अनेक व्यक्तियों का असीमित दायित्व होने के कारण एकाकी व्यापारी की अपेक्षा अधिक रकम ऋण पर ली जा सकती है। इसका मुख्य कारण यह है कि एकल स्वामित्व व्यापार के आर्थिक साधन सीमित होते हैं, किंतु साझेदारी में अनेक व्यक्तियों के होने से उनके आर्थिक साधन अधिक होते हैं, जिनके आधार पर अधिक ऋण प्राप्ति की जा सकती है।

5 **परिवर्तन की सुगमता** – साझेदारी व्यापार के संगठन में परिवर्तन करना अत्यंत सरल है। इसके लिए केवल साझेदारों की अनुमति की ही आवश्यकता होती है। व्यापार संगठन का परिवर्तन यदि समस्त साझेदारों के हित के लिए है तो सर्वसम्मति शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है, किंतु संयुक्त पूंजी वाली संस्थाओं में व्यापार संगठन का परिवर्तन अत्यधिक कठिन है।

6 **कार्य करने में उत्साह** – एकाकी व्यापारी की अपेक्षा साझेदारों में कार्य करने की अधिक लगन एवं उत्साह होता है। वे अपनी इच्छानुसार कार्य का विभाजन करके अपनी संपूर्ण शक्ति व्यापार संचालन में लगा देते हैं, जिसमें व्यापार में वृद्धि और अधिक लाभ सृजित होता है। इसके साथ–साथ वे समस्त लाभ के अधिकारी होते हैं, इसलिए अत्यंत परिश्रम द्वारा व्यापार को प्रोत्साहन देने का भरसक प्रयत्न करते हैं।

7 **कुशलता में वृद्धि** – साझेदारी के व्यावसायिक स्वरूप में प्रत्येक साझेदार वही कार्य सम्पन्न करता है, जिसमें वह दक्ष होता है। श्रम के इस विभाजन से भी फर्म को लाभ प्राप्त होता है, क्योंकि कार्य के विशिष्टीकरण से साझेदारों की कार्यकुशलता में वृद्धि होती है।

8 **अल्पमत को पर्याप्त संरक्षण** – साझेदारी में प्रत्येक विषय का निर्णय करने के लिए समस्त साझेदारों की अनुमति लेनी पड़ती है अतः कुछ साझेदारों का गुट अपने बहुमत द्वारा ऐसा कार्य नहीं कर सकता जिससे सबको लाभ न हो। प्रत्येक विषय के निर्णय के लिए समस्त साझेदारों की अनुमति प्राप्त होनी चाहिए, जिससे अल्पमत वाले शेष साझेदारों को हानि नहीं पहुंच सकती। अतः अल्पमत को भी इस व्यापारिक स्वरूप में पर्याप्त संरक्षण प्रदान किया गया है।

9 **सट्टेबाजी का अभाव** – साझेदारी में साझेदारों का दायित्व असीमित होता है। अतः इस असीमित दायित्व के कारण ऐसे व्यापार में सट्टेबाजी की कम संभावना होती है, क्योंकि अन्य साझेदार किसी व्यक्ति विशेष को इस प्रकार का कार्य नहीं करने देते।

10 **अधिक जोखिम वाले कार्यों के लिए उपयुक्त** –

साझेदारी फर्म ऐसे कार्यों के लिए अधिक उपयुक्त है, जिसमें जोखिम तथा लाभ प्राप्ति की अधिक संभावना होती है। एकाकी व्यापारी की तरह, वे समस्त जोखिम को सहन करने की शक्ति रखते हैं तथा इसके साथ–साथ लाभ के एकाधिकारी भी होते हैं।

11 **व्यक्तिगत संपर्क** – साझेदारी व्यवसाय में सदस्यों की संख्या सीमित होने के कारण सदस्यों में पारस्परिक व्यक्तिगत संपर्क बना रहता है। इसके अतिरिक्त, सदस्यों और ग्राहकों के मध्य भी व्यक्तिगत संपर्क स्थापित हो जाता है, जिससे व्यापार में उन्नति की आशा अधिक रहती है।

12 **अवयस्क को विशेष संरक्षण** – साझेदारी में अवयस्क साझेदार के हितों का संरक्षण कानून द्वारा किया जाता है। अधिनियम ऐसे साझेदारों को विशेष संरक्षण प्रदान करता है। अवयस्क साझेदारी के रूप में उसका दायित्व सीमित रहता है।

13 **लोचशील** – साझेदारी एक लोचशील संगठन है। इसका निर्माण प्रसंविदे के द्वारा होने के कारण इसके उद्देश्य, सदस्यता और पूंजी परिस्थितियों के अनुसार घटाई और बढ़ाई जा सकती है।

14 **पंजीकरण अनिवार्य नहीं** – भारतीय साझेदारी अधिनियम के अनुसार फर्मों का पंजीकरण कराना अनिवार्य नहीं है, किंतु वांछनीय है। अतः साझेदारों को यह सुविधा की गई है कि अगर वे उचित समझें तो फर्म का पंजीकरण करा लें, अन्यथा नहीं।

15 **सहकारिता को बल** – साझेदारी में प्रत्येक कार्य सर्वसम्मति से किया जाता है। इसके कारण साझेदारों में प्रेम एवं सहयोग की भावना को प्रोत्साहन मिलता है।

साझेदारी की सीमाएँ (Limitations of Partnership) : साझेदारी में निम्नांकित कमियां पाई जाती हैं –

1. **असीमित दायित्व** – साझेदारी का सबसे प्रमुख दोष यह है कि इसमें साझेदारों का दायित्व असीमित होता है। इससे वे अपनी व्यक्तिगत संपति से भी फर्म के ऋणों को चुकाने के लिए उत्तरदायी होते हैं, जिसमें उनकी संपत्ति पर सदैव जोखिम रहती है।

2. **सीमित साधन** – साझेदारी में साझेदारों की संख्या सीमित होने के कारण व्यापार के साधन और पूंजी की मात्रा भी सीमित होती है। इसके फलस्वरूप वृहत् मात्रा में व्यापार का संचालन नहीं किया जाता।

3. **शीघ्र निर्णय का अभाव** – साझेदारी में प्रत्येक कार्य के लिये समस्त साझेदारों की अनुमति लेनी आवश्यक होती है। बहुधा कुछ ऐसे आवश्यक और महत्वपूर्ण कार्य होते हैं, जिनके लिए अनुमति की शीघ्र आवश्यकता होती है, किंतु समस्त व्यक्तियों के परामर्श और अनुमति के अभाव में आवश्यक कार्य में विलंब हो जाता है, जिसका परिणाम फर्म में लाभ के स्थान पर हानि हो जाती है और अनेक बार बड़ी कठिनाई सहन करनी पड़ती है।

4. **अनिश्चित जीवन** – साझेदारी व्यवसाय का जीवन बहुत ही अनिश्चित होता है। किसी भी साझेदार के पागल होने, मरने तथा दिवालिया होने पर फर्म का अंत हो जाता है।

5. **हित हस्तांतरण पर प्रतिबंध** – साझेदारी में साझेदार अपने हित अथावा भाग के हस्तांतरण के लिये स्वतंत्र नहीं है। हस्तांतरण के पूर्व साझेदार को अन्य समस्त साझेदारों की अनुमति लेनी अनिवार्य है। यदि समस्त साझेदारों की अनुमति न हो तो भाग का हस्तांतरण नहीं हो सकता।

6. **जनता का कम विश्वास** – साझेदारी में वैधानिक प्रतिबंधों के अभाव में फर्म अपने खातों को सर्वसाधारण के लिये प्रकाशित नहीं करवाती। अतः व्यवसाय संबंधी तथ्यों की गोपनीयता से जनसाधारण को विश्वास उत्पन्न नहीं होता।

7. **कुशल एवं संयुक्त प्रबंध का अभाव** – साझेदारी में व्यापार के प्रबंध–संचालन में समस्त साझेदारों को भाग लेने का अधिकार होता है। अतः जब साझेदारों में कार्य का विभाजन उपयुक्त रीति से नहीं होता, तो उनमें परस्पर मतभेद हो जाता है, जिसका परिणाम प्रबंध में कुशलता की कमी और अनेक कठिनाइयों का आना है। अतः इस व्यापारिक स्वरूप के प्रबंध में समस्त साझेदारों के हित की समानता की सुरक्षा अत्यधिक कठिन है।

8. **बड़ी व्यावसायिक योजनाओं के लिए अनुपयुक्त** – साझेदारी में साझेदारों का असीमित दायित्व एवं सीमित पूंजी होने के कारण बड़ी व्यावसायिक योजनाओं के लिए यह व्यापारिक स्वरूप अनुपयुक्त है। हित–हस्तांतरण पर प्रतिबंध होने के कारण विनियोक्ता इस ओर आकर्षित नहीं होते हैं।

साझेदारों के प्रकार (Type of Partners)

1. **सक्रिय साझेदार** – जो साझेदार फर्म के व्यापार–संचालन में विशेष रूप से भाग लेते हैं, उन्हें सक्रिय साझेदार कहते हैं। सक्रिय साझेदार फर्म के समस्त कार्यों के लिए अन्य साझेदारों का प्रतिनिधि होता है और अपने कार्यों से फर्म को

उत्तरदायी ठहराता है। इस प्रकार के साझेदारों की गणना फर्म के मुख्य साझेदारों में होती है।

2. **निष्क्रिय साझेदार** – जो व्यक्ति फर्म के व्यापार में अपनी पूंजी विनियोग करते हैं, परंतु व्यापार संचालन में क्रियात्मक रूप से भाग नहीं लेते एवं जनता की निगाह में फर्म के साझेदार नहीं समझे जाते, उन्हें 'निष्क्रिय साझेदार' कहते हैं। निष्क्रिय साझेदारी फर्म का वास्तविक साझेदार होता है और वह फर्म के लाभ–हानि में अपने पूर्ण भाग का उत्तरदायी होता है।

3. **नाम मात्र का साझेदार** – नाममात्र का साझेदार वह व्यक्ति होता है जो साझेदारी के व्यापार में न तो पूंजी का विनियोग करता है और न सक्रिय रूप से किसी कार्य को सम्पन्न करता है, किंतु वह फर्म को अपना नाम और साख प्रयोग करने की अनुमति देता है। इस प्रकार के साझेदार को 'नाम मात्र का साझेदार' कहते हैं। यह साझेदार अन्य पक्षों के दायित्व के प्रति भी उत्तरदायी होता है।

4. **केवल लाभ में साझेदार** – कुछ साझेदार अन्य साझेदारों की स्वीकृति से अपनी कुछ पूंजी फर्म में विनियोग करते हैं, किंतु वे लाभ के भाग में ही साझीदार होते हैं और हानि के लिए उत्तरदायी नहीं होते। इस प्रकार के साझेदारों को केवल लाभ में साझेदार कहते हैं, क्योंकि उनका संबंध केवल फर्म के लाभ से ही होता है।

5. **गत्यावरोध या प्रदर्शन द्वारा साझेदार** – यदि कोई व्यक्ति लिखित या मौखिक शब्दों में अथवा अपने व्यवहार द्वारा यह प्रदर्शित करता है कि जिससे दूसरों को यह विश्वास हो जाय कि वह फर्म का साझेदार है, किंतु वास्तव में वह फर्म का साझेदार नहीं होता है तो इस प्रकार के साझेदार को गत्यावरोध या प्रदर्शनार्थ साझेदार कहते हैं। अगर फर्म को अन्य व्यक्ति इस विश्वास पर ऋण दे देते हैं कि वह साझेदार है तो प्रदर्शनार्थ साझेदार उन समस्त ऋणों के लिए उत्तरदायी होगा, जो उसके साझेदार समझे जाने के कारण दिए गए हैं। इस प्रकार का साझेदार फर्म का साझेदार एवं प्रतिनिधि नहीं होता किंतु वह अपने दायित्व के लिए उत्तरदायी बना लिया जाता है।

6. **अवयस्क या नाबालिग साझेदार** – कानून की दृष्टि में एक अवयस्क व्यक्ति अनुबंध करने के योग्य न होने के कारण फर्म में साझेदार नहीं हो सकता, परंतु भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 30 के अनुसार यदि समस्त साझेदार सहमत हो तो एक अवयस्क को साझेदारी के लाभों में सम्मिलित किया जा सकता है।

7. **आगंतुक साझेदार** – जो नया व्यक्ति पुराने साझेदारों की सर्वसम्मति से फर्म में सम्मिलित किया जाता है, उसे आगंतुक साझेदार कहते हैं। ऐसे साझेदार को फर्म में प्रवेश करते समय अपनी आनुपातिक पूंजी के साथ ख्याति के लिए भी धन लगाना होता है।

8. **बाहर जाने वाला साझेदार** – बाहर जाने वाला साझेदार वह है, जो अन्य समस्त साझेदारों की अनुमति से व्यवसाय से अलग हो जाता है। फर्म से अलग होने वाले साझेदार चार प्रकार के होते हैं – 1– मृत्यु के कारण, 2– दिवालिये घोषित हो जाने के कारण, 3– सेवानिवृत्ति के कारण और 4. निष्कासन के कारण। ऐसे साझेदार को फर्म से पृथक होने की घोषणा करनी होती है। इस घोषणा के पश्चात् ऋण आदि का उसके ऊपर कोई दायित्व नहीं रहता है।

साझेदारी संलेख या भागिता पत्र (Partnership Deed)

साझेदारी अनुबंध पर आधारित होती है, अतः साझेदारों के अधिकार एवं कर्तव्य साझेदारों के समझौते एवं साझेदारी संलेख पर निर्भर रहते हैं। आरंभ में फर्म के साझियों में अत्यंत प्रेम तथा विश्वास होता है, किंतु यह प्रेम और विश्वास सदैव रहना असंभव होता है। कुछ अवधि के पश्चात् साझेदारों में फर्म की छोटी–छोटी बातों को लेकर झगड़ा उत्पन्न हो जाता है और इसका निर्णय करने के लिए इनके पास किसी प्रकार का आधार नहीं होता है। अतः व्यापार प्रारंभ करते समय ही एक साझेदारी संलेख तैयार कर लेना चाहिए, जिसके आधार पर वे अपने झगड़ों का निर्णय कर सकें, और न्यायालय की नौबत से बच सकें। इटली व फ्रांस के अधिनियम के अनुसार साझेदारी संलेख सदैव लिखित होना चाहिए। किंतु अमेरिका, इंग्लैण्ड और भारत में यह संलेख लिखित अथवा मौखिक भी हो सकता है। भविष्य में कठिनाइयों से बचने के लिए यह श्रेष्ठ है कि साझेदारी संलेख लिखित ही होना चाहिए।

साझेदारी संलेख साझेदारों के लिए अत्यधिक हितकर होता है। इसमें फर्म की व्यापार संबंधी समस्त शर्ते एवं नियमों का उल्लेख होता है, जिनको प्रमाणस्वरूप न्यायालय में भी प्रस्तुत किया जा सकता है। इसके ऊपर साझेदारों के हस्ताक्षरों के साथ–साथ मुद्रांक भी लगाना आवश्यक है। साझेदारी को 'भागितापत्र' अथवा 'साझेदारी के अन्तर्नियम भी कहते हैं।

साझेदारी संलेख या भागितापत्र में निम्न बातें होनी चाहिए–

1. **फर्म का नाम** – फर्म का क्या नाम होगा।

2. **व्यापार का क्षेत्र तथा स्वरूप** – फर्म किस वस्तु का व्यापार करेगी तथा इसका क्षेत्र क्या होगा?

3. **फर्म की अवधि** – फर्म की अवधि निश्चित होगी या अनिश्चित
4. **साझेदारों की पूंजी** – प्रत्येक साझेदार फर्म में कितनी कितनी पूंजी लगायेगा।
5. **पूंजी पर ब्याज** – पूंजी पर ब्याज दिया जायेगा या नहीं यदि दिया जायेगा तो किस दर से?
6. **साझेंदारों द्वारा आहरण** – साझेदार निजी खर्चों के लिए प्रति मास या तिमाही कितनी रकम ले सकते हैं।
7. **आहरण पर ब्याज** – साझेदारों के आहरण पर ब्याज की दर क्या होगी?
8. **लाभ एवं हानि का अनुपात** – साझेदारो को हानि लाभ किस अनुपात में बांटा जायेगा।
9. **साझेदारों का वेतन** – यदि सक्रिय साझेदार को वेतन देना है तो किस दर से?
10. **साझेदारों में कार्य विभाजन** – साझेदारों में कार्य का विभाजन कैसे होगा?
11. **साझेदारों द्वारा दिये गये ऋण पर ब्याज** – यदि कोई साझेदार फर्म को ऋण देता है तो उसे किस दर से ब्याज दिया जायेगा।
12. **ख्याति का मूल्यांकन** – किसी साझेदार के अवकाश ग्रहण करने पर या मृत्यु होने फर्म की ख्याति का मूल्यांकन कैसे होगा?
13. **लेखा पुस्तकों का अंकेक्षण** – लेखा पुस्तकों का अंकेक्षण कब और किस प्रकार होगा?
14. **फर्म का समापन** – किन किन परिस्थितियों में फर्म का समापन किया जा सकता है।
15. **प्रवेश तथा निवृत्त होना** – अधिनियम के अनुसार नये साझेदार का प्रवेश पुराने साझेदारों की सर्व सम्मति से होता है। यदि इसमें कोई परिवर्तन हो तो उसका उल्लेख साझेदारी संलेख में होना चाहिए। इसके अतिरिक्त साझेदार के निवृत होने के संबंध में भी नियमों का होना आवश्यक है।
16. **साझेदारों के अधिकार** – साधारणतया प्रत्येक साझेदार को फर्म के प्रबंध एवं संचालन में भाग लेने का अधिकार होता है, किंतु व्यवहार में पारस्परिक समझौते के अनुसार उनके अधिकारों में परिवर्तन होते रहते हैं। साझेदारी संलेख में इस बात का स्पष्टीकरण होना चाहिए।
17. **मध्यस्थ वाक्य** – साझेदारों में कभी भी मतभेद हो सकता है। इस मतभेद को मिटाने के लिए मध्यस्थ की नियुक्ति होगी अथवा नहीं, यदि हो तो नियुक्ति किस प्रकार होगी, उनके अधिकार क्या होंगे तथा उनका निर्णय साझेदारों पर कहां तक लागू होगा?

साझेदारी संलेख के अभाव में लागू होने वाली बातें :

1. साझेदारी लाभ–हानि बराबर बांटा जाएगा।
2. साझेदारों को वेतन, बोनस व कमीशन देय नहीं होगा।
3. पूँजी पर ब्याज नहीं दिया जाएगा।
4. आहरण पर ब्याज वसुल नहीं किया जाएगा।
5. पूँजी के अतिरिक्त ऋण देने पर, साझेदार को 6 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज दिया जाएगा।
6. फर्म के व्यवसाय में सक्रिय भाग लेने का अधिकार होगा।
7. फर्म की लेखा पुस्तकों को देखने व प्रतिलिपि लेने का अधिकार होगा।

हिन्दू अविभाजित परिवार एवं पारिवारिक व्यवसाय (Hindu Undivided Family & Family Business - HUF)

यह व्यावसायिक संगठन का स्वरूप केवल भारत में ही पाया जाता है। यह भारत मे व्यवसाय का प्राचीनतम स्वरूप है। इसके अंतर्गत कोई भी व्यक्ति जो अविभाजित हिन्दू परिवार में जन्म लेता है, वह तीन पीढियों तक उस व्यवसाय मे हिस्सेदारी रखता है। इसका नियमन भारतीय कानून के हिन्दू लॉ द्वारा होता है। इसमें व्यवसाय का संचालन और स्वामित्व उस परिवार के सभी सदस्य मिलकर रखते हैं।

व्यवसाय नियंत्रण का कार्य उस परिवार का मुखिया करता है। यह परिवार का सबसे बडी आयु का व्यक्ति होता है। सभी सदस्य जो किसी एक पूर्वज से संबन्धित हों, उनका संपत्ति मे समान हिस्सा होता है– इससे उन्हें **सहसमांशी** कहते हैं। परिवार के सदस्यों मे नियंत्रण की दो प्रणालियाँ प्रचलित हैं–

1 **दायभाग प्रणाली**– यह प्रणाली पश्चिम बंगाल मे प्रचलित है जिसके अनुसार परिवार के सभी पुरुष और महिलाएं सहसमांशी होते हैं।

2 **मिताक्षरा प्रणाली**– उपर्युक्त प्रणाली के विपरीत इसमें केवल पुरुष सदस्य ही व्यवसाय मे प्रतिभागी सहसमांशी बन सकते हैं, यह पश्चिम बंगाल को छोडकर शेष भारत मे प्रचलित है।

विशेषताएँ (Characdteristics of HUF)

1 **निर्माण**– कम से कम दो सदस्य जिन्हें पैतृक संपत्ति विरासत में मिली हो, इसका निर्माण कर सकते हैं।

सदस्यता जन्म के आधार पर मिलती है, किसी अनुबंध का होना आवश्यक नहीं।

2 **अधिनियम**– हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956

3 **जन्म से सदस्यता**– परिवार में किसी भी बच्चे का जन्म होते ही उसे संयुक्त हिन्दू परिवार व्यवसाय की सदस्यता स्वतः ही मिल जाती है। इसे बनाने के लिए परिवार के सदस्यों के बीच कोई समझौता नहीं किया जाता।

4 **प्रबन्ध**– परिवार में सबसे बड़े सदस्य या कर्ता के हाथों में इसका प्रबन्ध होता है। हालांकि कर्ता अन्य सदस्यों को अपनी मदद के लिए अपने साथ लगा सकता है।

5 **दायित्व**– कर्ता का दायित्व असीमित होता है अर्थात् व्यवसाय के दायित्वों का भुगतान करने हेतु उसकी निजी संपत्तियों को भी उपयोग में लाया जा सकता है। अन्य सभी सदस्यों का दायित्व हिन्दू अविभाजित परिवार की संपत्ति में उनके भाग तक सीमित होता है।

6 **कोई अधिकतम सीमा नही**– हिन्दू अविभाजित परिवार व्यवसाय के सदस्यों की संख्या पर कोई प्रतिबंध नहीं है। हालांकि इसकी सदस्या केवल तीन आनुक्रमिक पीढ़ियों तक प्रतिबंधित है।

7 **अवयस्क सदस्य**– परिवार में जन्म लेते ही कोई भी बच्चा इसका सदस्य बन जाता है। अतः हिन्दू अविभाजित परिवार अवस्यकों की सदस्यता को प्रतिबंधित नहीं करता।

8 **मृत्यु से अप्रभावित**– कर्ता सहित किसी भी सदस्य की मृत्यु के बाद भी हिन्दू अविभाजित परिवार व्यवसाय चलता रहता है। परिवार में अगला सबसे बड़ा जीवित सदस्य हिन्दू अविभाजित परिवार व्यवसाय का कर्ता बन जाता है। हालांकि परिवार के सभी सदस्य यदि यह घोषित करें कि अब वे संयुक्त हिन्दू परिवार व्यवसाय के सदस्य नहीं हैं, इसका समापन हो जाता है।

गुण (Advantage of HUF)

1 **नियंत्रण**– कर्ता की मुख्य स्थिति के कारण प्रभावी नियंत्रण होता है।

2 **निर्णय**– निर्णय तीव्रता से लिए जाते हैं।

3 **स्थायित्व**– निरंतरता बनी रहती है क्योंकि मुखिया की मृत्यु के बाद यह अगली पीढी को स्थानांतरित हो जाता है।

4 **सीमित दायित्व**– कर्ता को छोडकर सभी सदस्यों का दायित्व उनके सहसमांशी अंशों तक सीमित रहता है।

5 **सहयोग**– सहयोग की भावना से पारिवारिक व्यवसाय का संचालन होता है क्योंकि सबकी समान भागीदारी होती है।

6 **आर्थिक सुरक्षा तथा सदस्यों की प्रतिष्ठा**– संयुक्त हिन्दू परिवार व्यवसाय सदस्यों को सुरक्षा की भावना तथा प्रतिष्ठा उपलब्ध् कराता है क्योंकि वे उसमें वित्तीय हित रखते हैं। अन्य लोगों के साथ व्यवहार करते समय यह उन्हें समाज में प्रतिष्ठा भी दिलाता है।

7 **व्यवसाय की निरंतरता**– व्यवसाय में निरंतरता बनी रहती है। कर्ता सहित किसी भी सदस्य की मृत्यु अथवा पागलपन से यह प्रभावित नहीं होता है। जब तक परिवार के सभी सदस्य इसे बंद करने का निर्णय नहीं लेते, तब तक यह निरंतर चलता रहता है।

8 **परिवार गौरव**– सदस्य अपनी पूर्ण लगन, निष्ठा तथा जिम्मेदारी से कार्य करते हैं क्योंकि कार्य के साथ परिवार का नाम संलग्न होता है। व्यवसाय केवल एक व्यावसायिक इकाई ही नहीं बल्कि परिवार की प्रतिष्ठा का मामला होता है।

सीमाएं (Limitations of HUF)

1 **सीमित पूंजी**– पारिवारिक और पैतृक पूंजी सीमित होती है।

2 **कर्ता का असीमित दायित्व**– व्यवसाय संस्थापक कर्ता का दायित्व असीमित होता है। उसकी जोखिम अन्य परिवारजनों मे विभाजित नहीं होती। ऋण का जोखिम भी वही वहन कर्ता है।

3 **कर्ता का प्रभुत्व**– कर्ता के प्रभुत्व के कारण अन्य परिवारजनों का सहभाग नगण्य हो जाता है क्योंकि निर्णय कर्ता वही होता है।

4 **सीमित प्रबंध कौशल**– पारिवारिक वातावरण के कारण व्यवसाय का प्रबंधन पेशेवर तरीके से नहीं किया जा सकता।

सीमित दायित्व साझेदारी (Limited Liability Partnership - LLP)

वर्तमान औद्योगिक एवं व्यवसायिक क्षेत्र में होने वाले तीव्र विकास से सामन्जस्य स्थापित करने के लिए व्यावसायिक संगठन की एक नई शाखा की जरूरत महसूस हुई जिसमें साझेदारी व्यवसाय के प्रमुख तत्वों के साथ एक सीमित दायित्व वाली कम्पनी के लाभ भी निश्चित रूप से प्राप्त हो। इस जरूरत ने वर्तमान व्यावसायिक क्षेत्र में एक नये संगठन को जन्म दिया है जिसे 'सीमित दायित्व साझेदारी' (LLP) के नाम से जाना जाता है।

सीमित दायित्व साझेदारी (LLP) का गठन समामेलित साझेदारी के रूपमें होता है ये सीमित दायित्व व स्थायी अस्तित्व (अविच्छन उत्तराधिकार) की विशेषताओं के साथ सीमित दायित्व साझेदारी अधिनियम 2008 के तहत स्थापित किया गया। यह अधिनियम 1 अप्रेल 2009 को प्रभावी हुआ। प्रथम सीमित दायित्व साझेदारी फर्म का पंजीकरण 2 अप्रेल 2009 को हुआ।

सीमित दायित्व साझेदारी (LLP) स्वरूप के द्वारा सेवा प्रदाता, वैज्ञानिक और तकनीकी उद्यमी, पेशेवर व्यक्ति तथा विभिन्न उद्यमी अपनी आवश्यकता के अनुरूप वाणिज्यिक कार्यकुशल साधनों का विकास कर सकते हैं। सीमित दायित्व साझेदारी (LLP) लघु एवं मध्यम उद्योगों के साथ–साथ जोखिम पूंजी के निवेश के लिए भी उपुयक्त रहता है क्योंकि इसके ढांचे और परिचालन में उपयुक्त लचीलापन है।

सीमित दायित्व साझेदारी अधिनियम 2008 की प्रमुख विशेषताएं :

1. यह एक निगम निकाय है तथा इसका अपने साझेदारों से पृथक वैधानिक अस्तित्व होता है। कोई भी दो या दो से अधिक व्यक्ति लाभ कमाने के उद्देश्य से वैध व्यवसाय चलाने हेतु निगमन प्रपत्र में अपने नामों को शामिल करके रजिस्ट्रार के पास निगमन प्रपत्र जमा करवा सकते हैं। इससे सीमित दायित्व साझेदारी का शाश्वत अस्तित्व होगा।
2. साझेदारों के पारस्परिक अधिकार एवं कर्तव्य तथा साझेदारों के फर्म से सम्बन्धित अधिकार एवं कर्तव्य एक ठहराव द्वारा एवं इस अधिनियम के प्रावधानों के द्वारा नियमित किया जाता है।
3. सीमित दायित्व साझेदारी (LLP) को एक पृथक कानूनी इकाई के रूप में मान्यता होगी।
4. सभी साझेदारों का दायित्व उनके सहमत अनुपात तक सीमित रहेगा। कोई भी साझेदार अन्य साझेदारों द्वारा किये गये स्वतंत्र तथा अनाधिकृत क्रियाकलापों के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।
5. प्रत्येक 'सीमित दायित्व साझेदारी' में न्युनतम दो साझेदार आवश्यक रूप से होंगे तथा न्यूनतम दो व्यक्ति साझेदार होंगे और उनमें एक का भारत का निवासी होना आवश्यक है।
6. भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 के प्रावधान इस पर लागू नहीं होंगे। परन्तु कम्पनी अधिनियम के प्रावधान लागू किये जा सकते हैं।
7. कोई भी साझेदारी फर्म, निजी कम्पनी तथा और सूचीबद्ध कम्पनी कानूनी प्रावधानों का पालन करते हुए 'सीमित दायित्व साझेदारी' LLP में परिवर्तित कर सकती है।
8. सीमित दायित्व साझेदारी के मामले का निरीक्षण करने का अधिकार केन्द्र सरकार के पास होता है यदि केन्द्र सरकार चाहे तो सक्षम अधिकारी को नियुक्त कर सकती है।

सीमित दायित्व साझेदारी की विशेषताएं :

1. **संयुक्त संरचना**–यह भागीदारी एवं कम्पनी प्रारूप का समन्वय है। इसके द्वारा असीमित दायित्व की कमियों तथा कम्पनी अधिनियम के प्रावधानों की कठोरता को दूर किया जाता है।
2. **सीमित दायित्व एवं शाश्वत संरचना**–यह स्वामित्व की पृथकता को सुनिश्चित करता है। इससे दायित्व फर्म तक सीमित रहते है और साझेदारों पर लागू नहीं होते।
3. **परिचालनों में लचीलापन**–इन फर्मों का आन्तरिक प्रबन्धन, भागीदारों को पारिश्रमिक, प्रबन्ध शक्ति, कुछ साझेदारों को वीटो पावर जैसी विशिष्ट शक्तियों के द्वारा अधिकतम लचीलापन प्राप्त होता है। ये फर्में अपने नाम पर सम्पत्ति भी रख सकती है।

सीमित दायित्व साझेदारी के लाभ :

1. **पृथक वैधानिक अस्तित्व** – इसके साझेदारों का फर्म से पृथक अस्तित्व होता है।
2. **स्थायी अस्तित्व**–फर्म का अस्तित्व इसके साझेदारों के अस्तित्व पर निर्भर नहीं करता है। यह विधान के अधीन बनायी जाती है तथा केवल विधान के अधीन ही इसका विघटन किया जा सकता है । इसके सदस्यों की मृत्यु, अक्षमता, दिवालियेपन, निवृति आदि का इसके अस्तित्व पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।
3. **सीमित दायित्व**–लेनदारों के प्रति निजी सम्पत्ति की जोखिम को कम करता है।
4. **आन्तरिक लचीलापन** – इसमें स्वयं के मामलों का प्रबन्ध करने के लिए साझेदारों को अपेक्षित स्वतंत्रता रहती है।

दोष–

1. **निजता का अभाव** – सीमित दायित्व साझेदारी अधिनियम 2008 की धारा 34 के अनुसार वित्तीय जानकारी को प्रकट करना अनिवार्य है।
2. **ठहराव की आवश्यकता**–व्यावहारिक रूप में प्रथम अनुसूची के प्रावधान अधिकतम स्थितियों में स्वीकार्य नहीं

होते है। अतः प्रत्येक LLP में ठहराव का होना जरूरी हो जाता है ।

3. **वैधानिक अनिश्चितता**–आधुनिक व्यावसायिक जगत में यह एक नयी अवधारणा होने के कारण इसे अभी तक व्यावसायिक जगत में स्थापित होना है।

सहकारी संस्थाएं (Co-operative Institutions)

सहकारिता शब्द ही 'सह+कार्य' करने से बना है, जिसका तात्पर्य ही साथ–साथ या मिलकर कार्य करने से हैं । सहकारिता में आर्थिक क्रियाओं का संचालन इस प्रकार किया जाता है कि आर्थिक उन्नति या लाभ प्राप्ति के साथ–साथ मानव समाज में नैतिक गुणों एवं आदर्शों की अभिवृद्धि भी हों।

सहकारिता का प्रारम्भ कब व कैसे हुआ यह बताना थोड़ा दुष्कर लगता है किन्तु अनुमान यह है कि मनुष्य अपनी आवश्यकता पूर्ति, रक्षा करने एवं चुन्नोत्तियां का सामना करने के लिए साथ–साथ रहने व कार्य करने को प्रेरित होते रहे हैं।

ईसा से 3000 वर्ष पहले मिश्र में दस्तकारों के सहकारी संघ थे, जो समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के उद्देश्य से मिलकर उत्पादन करते थे। सन् 1769 में जर्मनी में भूमि बन्धक बैंक स्थापित किए गए। सन् 1844 में 'रॉकडेल' स्थान के 28 बुनकरों ने मिलकर एक सहकारी समिति का गठन किया। भारत में सहकारिता का विचार व कार्य संस्कृति अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय समाज में संयुक्त परिवार प्रथा तथा जन्म से लेकर मृत्यु तक की परम्पराओं, विशेषकर शादी–विवाह में मिलजुल कर कार्य करने, सहयोग करने, सुख–दुःख में हाथ बंटाने के उदाहरण सहकारिता के ही स्वरूप है। ग्रामीण जीवन में घरेलु कार्य, घरेलु उत्पादों के उत्पादन एवं कृषि कार्य में आज भी सहकारिता जीवित हैं।

भारत में महाजनों के चुंगल में फंसे किसान एवं औद्योगिक क्रान्ति के बाद पूंजीवाद एवं बढ़ते कारखानों से श्रमिक वर्ग का शोषण होने लगा, लघु उद्योग भी समाप्त होने लगे। इस दुर्दशा व शोषण के समाधान हेतु 1895 व 1897 में मद्रास सरकार द्वारा नियुक्त सर निकल्सन ने अपनी रिपोर्ट में "ग्रामीण साख समितियों" के गठन का सुझाव दिया। तत्पश्चात् उत्तर प्रदेश में सहकारी साख व्यवस्था पर कार्य कर रहे ड्यूपरनेक्स ने भी अपनी पुस्तक Peoples Bank for Northern India में ग्रामीण बैंकों की स्थापना का सुझाव दिया। सन् 1901 में भारत सरकार ने एडवर्ड लॉ समिति का गठन किया। इस समिति ने भी सिफारिश की कि, सरकारी सहायता से सहकारी समितियाँ स्थापित की जायें। इसके आधार पर केन्द्रीय विधानसभा में बिल प्रस्तुत कर सहकारी साख समिति अधिनियम 1904 बना। वहीं से सहकारिता आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इस अधिनियम के दोषों को दूर करने के लिए दुसरा अधिनियम 1912 में लाया गया। जिसके तहत हजारो कृषि व गैर कृषि समितियां बनी। 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति से अब तक पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से इस आन्दोलन को संरक्षित रखकर मजबूत बनाया गया , इस हेतु समय–समय पर संविधान संशोधन द्वारा राष्ट्रीय व राज्य स्तरीय सहकारी कृषि एवं ग्रामीण बैंकों का विस्तार किया गया एवं प्रभावी बनाया गया। सहकारिता क्षेत्र में सरकार द्वारा स्थापित राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (NSDC), नाबार्ड बैंक (NABARD), भारतीय कृषक उर्वरक सहकारी समिति (IFFCO), राष्ट्रीय सहकारी आवास संघ (NCHF) द्वारा साख व्यवस्था से प्रारम्भ सहकारिता आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त हो चुकी है।

सहकारिता की परिभाषा (Definition of Cooperation):

एम.टी. हैरिक के अनुसार – "सहकारिता स्वेच्छा से संगठित ऐसे व्यक्तियों की क्रिया है, जो सामूहिक लाभ या हानि के लिए पारस्परिक प्रबन्ध के अन्तर्गत अपनी शक्तियों, साधनों या दोनों का सम्मिलित प्रयोग करते हैं।"

सर होरेक प्लेन्केट के मत से "सहकारिता संगठन द्वारा स्वावलम्बन को प्रभावपूर्ण बनाने की विधि है।"

प्रो. पी.एच. कैसलमेन के अनुसार – "सहकारिता सामाजिक तत्व से युक्त एक आर्थिक पद्धति है।"

सैलिगमैन के अनुसार – "सहकारिता उत्पादन और वितरण की क्रियाओं से प्रतिस्पर्धा को त्याग कर सभी प्रकार के मध्यस्थों को हटाना है।"

जापान के सहकारी विधान 1921 के अनुसार – "सहकारी समिति एक संगठन है, जिसका अस्तित्व वैध है और जिसमें समिति साधनों वाले व्यक्ति इसलिए शामिल होते हैं कि वे सामूहिकता के सिद्धान्तों पर कार्य करके अपने आर्थिक स्तर को विकसित एवं उन्नत कर सकें।"

भारतीय सहकारी समिति अधिनियम 1912 की धारा 4 (स) के अनुसार – "सहकारी समिति – एक ऐसी समिति है, जिसका उद्देश्य सहकारी सिद्धान्तों के अनुरूप अपने सदस्यों के आर्थिक हितों में वृद्धि करना है।"

उचित परिभाषा – सहकारिता एक व्यापक विचार वाला सामाजिक व आर्थिक आन्दोलन है जिसके मूल में समाज की सेवा का उद्देश्य है। यह ऐसे व्यक्तियों का संगठन है जो पारस्परिक सहयोग, स्वावलम्बन, स्वेच्छा, समानता, प्रजातांत्रिक प्रबन्ध और न्याय के आदर्श सिद्धान्तों पर आधारित होता है। यह समाजवाद की तरह राज्य द्वारा नियन्त्रित एवं पूंजीवाद की तरह स्वचलित एवं अचेतना पूर्ण नहीं होता।

सहकारिता के लक्षण या विशेषताएं
(Characteristics of Co-operativeness) :

1. **ऐच्छिक संगठन** – सहकारिता एक स्वतन्त्र सार्वलौकिक संगठन है जिसमें व्यक्ति स्वेच्छा से स्वतन्त्रतापूर्वक सदस्य बन सकता है या सदस्यता त्याग सकता है।

2. **जनतान्त्रिक प्रबन्ध** – सहकारी संस्थाएँ लोकतान्त्रिक प्रणाली के आधार पर संचालित होती है। संस्था के प्रत्येक सदस्य को एक मत या वोट देने का अधिकार होता है। निर्णय लेने में भी सभी सदस्यों को समान अधिकार प्राप्त होता है। जनतान्त्रिक व्यवस्था से ही कार्यकारिणी का गठन किया जाता है।

3. **समानता की व्यवस्था**–सहकारिता में गरीब–अमीर, शिक्षित–अनपढ़ या लिंग, जाति, वर्ग या दलगत आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाता है सभी एक समान सदस्य होते हैं।

4. **सेवा एवं सहयोग की भावना** – यह संस्थाएं इसके मूल सिद्धान्त – पारस्परिक सहायता द्वारा आत्म सहायता पर आधारित होती है। जिसका मूल मन्त्र **'एक सबके लिए व सब एक के लिए'** होता है। सहकारी संस्थाएं लाभ के स्थान पर सेवा भाव से कार्य करती है। जैसे – उपभोक्ता सहकारी समितियाँ अपने सदस्यों को उचित कीमत पर शुद्ध वस्तुएँ उपलब्ध करवाती है।

5. **शोषण मुक्त मध्यम मार्ग** – सहकारिता आन्दोलन मूलतः सामाजिक विकृतियों व शोषण से मुक्त करवाने के लिए ही प्रारम्भ किए गए है। इस स्वरूप में समाजवाद के गुणों का समावेश करते हुए पूंजीवाद के अत्यधिक लाभ की चेष्टा या अवगुणों को दूर करने का मिश्रित प्रयास किया गया है।

6. **संघात्मक ढाँचा**–सहकारिता कार्य संघात्मक पद्धति पर आधारित है, जिसमें अनेक ईकाइयां मिलकर संघ बना लेती है। जैसे साख सहकारी व्यवस्था में त्रि–स्तरीय ढांचा है – ग्रामीण स्तर पर – प्राथमिक साख समितियाँ, जिला स्तर पर केन्द्रीय सहकारी बैंक और राज्य स्तर पर शीर्ष बैंक (Apex Ban) बने हुए हैं।

सहकारिता का महत्त्व
(Advantage of Co-operative Movement)

आधुनिक युग में सहाकारिता के महत्व को निम्नांकित बिन्दुओं से देखा जा सकता है–

1. **सर्वांगीण विकास**– सहकारिता सम्पूर्ण मानवीय पहलुओं को दृष्टिगत रखती है। सहकारिता व्यक्ति की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करती है, परस्पर सहयोग व भाईचारे की भावना का विकास करती है, व्यक्ति में राजनैतिक चेतना जागृत करती है। उत्पादक व उभोक्ताओं के हितों में समन्वय स्थापित करती है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि सहकारिता व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करती है।

2. **आर्थिक साधनों का विकेन्द्रीयकरण** – इसके अन्तर्गत साम्यवाद की तरह क्रान्ति लाकर आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण का तत्काल अन्त नहीं किया जाता वरन् शान्तिपूर्वक आन्दोलन द्वारा आर्थिक दृष्टि से निर्बल वर्ग को ऊँचा उठाया जाता है। इसमें शोषित वर्ग संगठित होकर शोषक वर्ग के भय से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार यह आर्थिक साधनों के समान वितरण में सहयोग देती है एवं एकाधिकार को समाप्त करती है।

3. **न्यायपूर्ण वितरण** – सहकारिता ही न्यायपूर्ण वितरण पर जोर देती है। सहकारिता का मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना नहीं होता, वरन् सदस्यों को उचित मूल्य पर वस्तुएँ व सेवाएँ उपलब्ध करवाना होता है। इसके अलावा सहकारी समिति के पास जो आधिक्य व लाभ शेष रहता है, उसका भी वितरण सदस्यों में व्यवहारानुसार कर दिया जाता है।

4. **स्वावलम्बी समाज की स्थापना** – सहकारिता में मध्यस्थों को समाप्त करने पर बल दिया जाता है। इसका उद्देश्य अपने ही परिश्रम से सम्पन्नता प्राप्त करने की भावना भरना है। ऐसा समाज ही शोषण के भय से मुक्त होकर विकास की ओर अग्रसर हो सकता है।

5. **जनतन्त्र का विकास** – सहकारिता प्रजातन्त्र की जड़ें मजबूत करने पर बल देती है। इसके अन्तर्गत जाति, धर्म, लिंग आदि के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाता तथा सभी व्यक्तियों को मत देने व मत प्राप्त करने का समान अधिकार होता है। समिति के सभी सदस्य समिति के कार्यों में हाथ बंटाने के अधिकारी होते हैं तथा समिति स्वशासित संस्था होती है जो अपने सदस्यों को लोकतन्त्र का पाठ सिखाती है।

6. **सार्वजनिक कल्याण पर बल** – सहकारिता का उद्देश्य एक व्यक्ति विशेष की भलाई करना नहीं है वरन् सम्पूर्ण समाज या समुदाय का विकास करना है। यही कारण है कि सहकारिता मानवीय मूल्यों पर सबसे अधिक जोर देती है। इसके अन्तर्गत निर्धन व्यक्तियों के हितों की रक्षा

सामूहिक प्रयत्नों से की जाती है व लाभ का वितरण न्यायोचित तरीके से किया जाता है। ऐसे आन्दोलन से ही सार्वजनिक कल्याण सम्भव है।

7. **सहकारिता व्यावहारिक आन्दोलन** – यह एक शान्तिपूर्ण आन्दोलन है जो पूँजीवाद तथा समाजवाद की बुराईयों का अन्त करते हुए आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। सहकारिता में पूँजीवाद एवं समाजवाद की अति को समाप्त करने का प्रयास किया जाता है। इसमें पूँजीवाद की तरह आर्थिक असमानता एवं शोषण का कोई स्थान नहीं है। इसी प्रकार इसमें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन व राज्य नियन्त्रण भी सम्मिलित नहीं है।

8. **अवसर की समानता** – सहकारिता सभी व्यक्तियों को समान आर्थिक अवसर उपलब्ध कराती है। इसमें व्यक्ति को अपनी आजीविका के लिए समान आर्थिक अवसर प्राप्त होते हैं। जनतान्त्रिक नियन्त्रण व न्यायोचित वितरण के कारण सहकारिता के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यवसाय के चुनाव की स्वतन्त्रता होती है। साधनहीन व्यक्ति अपने सीमित साधनों का संकलन कर समिति का गठन करके अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्य कर सकते हैं।

9. **जीवन–स्तर में सुधार**– सहकारी संस्थायें मध्यस्थों को समाप्त करती हैं। कृषक को सस्ती साख मिलती है, उसको सस्ती व उचित मूल्य पर कृषि सम्बन्धित वस्तुएँ जैसे – बीज, खाद आदि मिल जाते हैं। इससे उत्पादन लागत कम आती है। समितियाँ सदस्यों की उपज का श्रेणीकरण करती है तथा मण्डियों में उनकी उपज का विक्रय करती हैं जिससे उन्हें उपज का उचित मूल्य मिल जाता है। इस प्रकार सहकारिता कृषकों की आय बढ़ा कर उनके जीवन–स्तर को उन्नत करने में योगदान देती हैं। ये उपभोक्ताओं को भी सस्ती व अच्छी वस्तुएँ उपलब्ध करवाकर उनकी आय को बढ़ाती हैं। इस प्रकार सहकारी समितियाँ सदस्यों के जीवन–स्तर में सुधार करने का प्रयास करती हैं।

10. **सरकारी योजनाओं की सफलता** – सरकार सहकारी समितियों के माध्यम से अपनी योजनाएँ गाँवों तक पहुँचाने में सफल रहती है। सहकारिता के माध्यम से ग्रामीण जनता को आर्थिक नियोजन की जानकारी दी जाती है व जन सहयोग प्राप्त किया जाता है। भारत में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में सहकारिता को पर्याप्त महत्व दिया गया है। इन योजनाओं में ग्रामीण विकास के लिए सहकारी संस्थाओं का योगदान प्राप्त करने की बात कही गयी हैं।

11. **रोजगार में वृद्धि** – सहकारिता एक आर्थिक आन्दोलन है। सहकारिता ने अनेक क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ाये हैं। स्वयं सहकारी संगठनों में लाखों व्यक्तियों को रोजगार मिला हुआ है। सहकारी समितियाँ ग्रामीण बचतों को प्रोत्साहित कर इकट्ठा करती है। इस बचत को उत्पादन कार्यों में लगाया जाता है। इससे अनेक व्यक्तियों को रोजगार मिला है। सीमित साधनों वाले व्यक्ति मिलकर अपने साधनों को इकट्ठा कर कोई न कोई उत्पादन कार्य प्रारम्भ कर देते हैं इससे भी अनेक व्यक्तियों को रोजगार मिलता है।

12. **पूंजी निर्माण में सहायक**–सहकारिता ग्रामीण जनसमुदाय को बचत लिए प्रोत्साहित करती है और अपने संसाधनों का उचित स्थान पर उपयोग करना सिखाती है। सहकारिता के अभाव में ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों के पास पूंजी बेकार पड़ी रहती हे, जिसका समुचित उपयेाग नहीं हो पाता।

13. **लघु व कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन**–सहकारिता छोटे–छोटे उत्पादकों को भी प्रोत्साहन देती है। लघु व कुटीर उद्योग सहकारी आधार पर संचालित किये जाते हैं। सहकारी समितियों को कच्चा माल उचित मूल्य पर मिल जाता है। साथ ही साख सुविधायें व बिक्री की सुविधायें भी मिल जाती हैं। इससे उद्योग धन्धों का विकास होने लगता है। इससे ग्रामीण क्षेत्र में लघु उद्योगों का विकास होने लगता है तथा देश में उद्योगों का सन्तुलित विकास हो जाता है।

14. **बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार**–सहकारिता ग्रामीण क्षेत्र में बैंकिंग सुविधायें उपलब्ध करवाती है। प्राथमिक समितियाँ ग्रामीण जनता को ऋण देती हैं एवं उनकी बचतें जमा करती हैं। इससे जनता में बैंकिंग की आदत का विकास होता है। ग्रामीण क्षेत्र में बैंकिंग सुविधाओं के विस्तार ने कृषि, ग्रामीण उद्योग, व्यापार व रोजगार के अवसरों में वृद्धि की है।

15. **जागरूकता की शिक्षा**–सहकारिता अपने सदयों को सामाजिक दृष्टि से जागरूक बनाने व अधिकारों व कर्त्तव्यों के प्रति सजग करती है। सदस्यों को अच्छे व योग्य नागरिक बनने की शिक्षा प्रदान करती है।

सहकारिता के दोष व कमियाँ
(Dis-advantage of Co-operative movement)

यद्यपि सहकारिता में सैद्धान्तिक रूप में कई लाभ पाये जाते हैं,फिर भी व्यावहारिक जीवन में इसमें कुछ दोष व कमियाँ पाई जाती है। प्रमुख दोष व कमियाँ निम्नलिखित हैं–

1. **अपेक्षित वर्ग को लाभ न मिला**– सहकारिता का प्रमुख उद्देश्य 'सेवा करना' है। किन्तु गाँवों के कुछ प्रभावशाली लोगों ने इसे व्यक्तिगत स्वार्थ का अखाड़ा बना दिया है। जो सुविधायें व सेवाएँ निर्बल व असहाय लोगों को मिलनी चाहिए, उनका फायदा ये (सम्पन्न) लोग उठा रहे हैं। इससे इसके उद्देश्यों को क्षति पहुँची है व लक्ष्य–प्राप्ति में बाधा आयी है।

2. **साधनों का दुरुपयोग** – कमजोर व दुर्बल व्यक्ति अज्ञानतावश समिति के प्रबन्ध में हिस्सा नहीं ले पाते। वे लोग अपने तमाम साधन समिति को सौंप देते हैं, समिति में भी कुछ प्रभावशाली सबल व्यक्ति होते हैं जो इन साधनों का दुरुपयोग करने लगते हैं जिससे उन्हें उचित लाभ नहीं मिल पाता।

3. **सुविधा का दुरुपयोग**–सहकारिता से लोगों में ऋण लेने की प्रवृत्ति बढ़ी है। साख समितियाँ जो ऋण उत्पादन कार्यों के लिए देती हैं, उसे कुछ लोग घरेलू कार्यों में फिजुल खर्च कर देते हैं, जिससे निर्धारित लक्ष्य अधूरा ही रह जाता है व ऋण भार बढ़ने लगता है। जिससे ऋण वसुली में कठिनाई आती है।

4. **कमजोर उत्पादन**– सहकारिता के अन्तर्गत साधनों का उचित व सही उपयोग नहीं होने से कम उत्पादन होता है, क्योंकि इनमें कार्य करने वाले सदस्य अकुशल होते हैं।

5. **कमजोर प्रबन्ध व्यवस्था**–सहकारी समिति के सदस्यप्राय अशिक्षित व अकुशल होते हैं। साथ ही कुछ नया सीखना नहीं चाहते है किसी भी विकास कार्यक्रम को गति देने के लिए प्रशिक्षित व कुशल कर्मचारियों का होना आवश्यक है। केवल आदर्श सिद्धान्तों पर चलकर सहकारिता अपने लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सकती।

6. **सरकारी मानसिकता**– सहकारी संस्थान को सार्वजनिक संस्था समझा जाता है। इसमें होने वाले लाभ या हानि का उत्तरदायित्व किसी एक व्यक्ति का नहीं होता। फलस्वरूप निजी व्यवसाय की तरह साधनों का पूरा उपयोग नहीं होता। इसलिये लाभ व उत्पादन भी कम होता है। इसके प्रबन्धक भी निजी प्रबन्धकों की तरह कुशल नहीं होते। अतः इसमें कार्यरत व्यक्ति लगन व मेहनत से कार्य नहीं करते।

7. **भ्रष्टाचार** – समाज में प्रायः ईमानदारी का लोप होता जा रहा है। कुछ लोग अनुचित नेतृत्व के कारण साधनों का दुरुपयोग करते हैं व संस्था से प्राप्त अतिरिक्त लाभ हजम कर जाते हैं। प्रायः दलगत आधार पर वर्ग विशेष के आधार पर आजकल भेदभाव देखने को मिलता है। इससे सहकारिता की साख को भी धक्का लगता है व उसकी लोकप्रियता कम हो जाती है।

8. **अलाभप्रद** – ग्रामीण स्तर पर फैली हुई प्राथमिक समितियों का आकार बहुत छोटा होता है। इनकी सदस्य संख्या, कार्यशील पूंजी, व्यवसाय व लाभ अत्यन्त सीमित हैं। फलस्वरूप ये सुदृढ़ आर्थिक इकाई के रूप में विकसित नहीं हो पाती है। अधिकांश समितियाँ हानि में चलते हुए कुछ वर्षों बाद बन्द हो जाती है। इससे सहकारिता का आधार कमजोर होता है। अतः समितियों का छोटा आकार इनके विकास में बाधा बन जाता है।

9. **सरकारी अनुदान व हस्तक्षेप** –सहकारी आन्दोलन के विकास में सरकारी सहयोग को भुलाया नहीं जा सकता। सरकारी सहयोग के फलस्वरूप ही सरकारी आन्दोलन विकसित हो पाया है। लेकिन अत्यधिक सरकारी सहयोग ने सहकारिता को परावलम्बी बना दिया है। आज किसी भी समिति को सरकारी ऋण सहायता न मिले तो वह बन्द हो जाती है। सहकारिता का जो मूल उद्देश्य स्वायत्त शासन था, अत्यधिक सरकारी सहायता से वह समाप्त हो गया है। आज समितियाँ सरकारी विभागों के समान कार्य करती हैं। इससे ये जनता से स्वय को जोड़ पाने में असफल रही हैं। प्रबन्ध में भी सरकारी हस्तक्षेप बढ़ता जा रहा है। सरकार कभी भी चुने हुए सदस्यों को हटाकर सरकारी अधिकारियों को नियुक्त कर देती है।

राजस्थान में सहकारी संस्थाएँ
(Co-operative institutions in Rajasthan)

सहकारी साख का ढाँचा

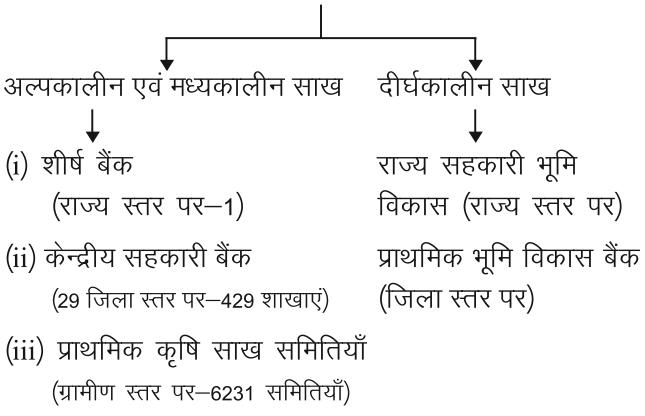

राजस्थान राज्य सहकारी बैंक / शीर्ष बैंक (Apex Bank)

रिजर्व बैंक द्वारा श्री कोठारी की अध्यक्षता में गठित समिति ने राजस्थान में सहकारी विकास के लिए शीर्ष बैंक स्थापित करने का सुझाव दिया । इन सिफारिशों के आधार पर 14 अक्टूबर, 1953 को शीर्ष सहकारी बैक की स्थापना की गई। इसका मुख्यालय जयुपर में रखा गया। इस बैंक की स्थापना का मुख्य उद्देश्य सम्पूर्ण राज्य में सहकारी आन्दोलन का समन्वित विकास करना था। इस बैंक पर राज्य में सहकारी विकास करने का दायित्व है। यह बैंक राज्य के केन्द्रीय सहकारी बैंकों, उनकी शाखाओं तथा प्राथमिक साख समितियों के माध्यम से कृषकों, ग्रामीण जनता एवं अन्य जरूरतमन्द लोगों को वित्तीय साधन उपलब्ध करवाकर उनकी आर्थिक सहायता करता है। राज्य सहकारी बैंक के मुख्य कार्य निम्नलिखित है–

1. राज्य में सहकारी साख व्यवस्था का प्रसार करना।
2. केन्द्रीय सहकारी बैंकों को अल्पकालीन एवं मध्यकालीन ऋण प्रदान करना। (किसान क्रेडिट कार्ड से 3 लाख तक फसली ऋण 7 प्रतिशत ब्याज पर उपलब्ध करावाया जा रहा है।)
3. रिजर्व बैंक, नाबार्ड एवं राज्य के केन्द्रीय सहकारी बैंकों के बीच सम्पर्क कड़ी का कार्य करना।
4. विभिन्न केन्द्रीय सहकारी बैंको के मध्य वित्तीय सन्तुलन का कार्य करना।
5. कृषि साख समितियों के अतिरिक्त अन्य अ–कृषि सहकारी समितियों का अवश्यक ऋण प्रदान करना।
6. विनिमय बिलों एवं चैकों आदि का संग्रह करना।
7. विभिन्न खातों के माध्यम से आकर्षक ब्याज दरों पर जमायें स्वीकार करना।
8. सदस्यों एवं जमाकर्त्ताओं को ऋण एवं अधिविकर्ष की सुविधायें प्रदान करना।
9. बहुमूल्य वस्तुओं को सुरक्षित रखने के लिए लॉकर्स की सुविधायें प्रदान करना।

केन्द्रीय सहकारी बैंक (Cetral Co-opreative Bank)

केन्द्रीय सहकारी बैंक जिला स्तर पर गठित किए जाते हैं। राज्य का पहला केन्द्रीय सहकारी बैंक सन् 1910 में अजमेर में खुला, जो काफी सफल रहा। इसके बाद केन्द्रीय सहकारी बैंक खुले। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व तक इनकी काई विशेष प्रगति नहीं हुई। स्वतंन्त्रता प्राप्त के बाद नियुति आर्थिक विकास की नीति अपनाई गई। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में सहकारिता को महत्वदेने से केन्द्रीय बैंकों का विकास हुआ। वर्तमान में राज्य में 29 केन्द्रीय सहकारी बैंक, इनकी 429 शाखायें तथा 6231 ग्राम सेवा सहकारी समितियाँ कार्यरत है।

प्राथमिक कृषि साख समितियाँ
(Primary Agriculatue Credit Societies)

प्राथमिक कृषि साख समितियाँ सहकारी आन्दोलन का आधार है। ये समितियाँ ही ग्रामीण जनता के सम्पर्क में आती है। ये ग्रामीण क्षेत्रों में बचत को प्रोत्साहित एवं एकत्रित करने का महत्वपूर्ण माध्यम है। समितियाँ अपने सदस्यों को अल्पकालीन एवं मध्यकालीन ऋण देती है। साख के अतिरिक्त समितियाँ सदस्यों को अन्य सेवाएँ प्रदान करती है। राजस्थान में प्राथमिक कृषि साख समितियों की संख्या 6231 (as on 31-3-2015) हैं।

प्राथमिक कृषि साख समितियों के कार्य (Function of PAC's)

1. अपने क्षेत्र के कृषकों, दस्तकारों, भूमिहीन किसानों व कृषि श्रमिकों एवं अन्य कमजोर वर्ग के लोगों को अल्पकालीन एवं मध्यकालीन ऋण प्रदान करती हैं।
2. प्राथमिक समितियाँ कृषि आदानों, जैसे–बीज, खाद, कीटनाशक, दवाइयाँ कृषि यंत्र आदि की पूर्ति करती हैं।
3. ग्रामीण जनता में बचत की भावना व आदत विकसित करती हैं।
4. उपभोक्ता वस्तुओं को उचित मूल्यों पर उपलब्ध करवाने का कार्य करती है।
5. कृषक एवं अन्य सदस्यों को उचित मार्गदर्शन एवं सलाह देती हैं।
6. उन्नत कृषि के विकास में सहयोग देती हैं।

राजस्थानी स्टेट को–ओपरेटिव बैंक लि. द्वारा वर्ष 2014–15 में क्रियान्वित मुख्य योजनाएं :

1. सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड – 29,21,646 कार्डधारकों को 16,830.54 करोड़ का ऋण दिया।
2. ज्ञान सागर ऋण योजना – 15.77 लाख का ऋण दिया।
3. स्वयं सहायता समूह ऋण सुविधा – 3600 स्वयं सहायता समूहों को 3410 लाख का ऋण दिया।
4. स्वरोजगार क्रेडिट कार्ड योजना – 1564.04 लाख का ऋण।
5. व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा योजना– 3 लाख रुपये का बीमा 43 रुपये प्रीमियम पर किया गया।
6. समस्त ग्राम सेवा सहकारी समितियों (PACs) में कोर बैंकिंग प्रणाली स्थापित कर Anywhere Banking की सेवा उपलब्ध करवाने का तीव्र प्रयास जारी है।

भूमि विकास बैंक

कृषकों को दीर्घकालीन ऋण प्रदान करने के लिए भूमि विकास बैंक स्थापित किए गए हैं। ये बैक अपने सदस्यों को उनकी भूमि की जमानत पर ऋण प्रदान करते हैं। ग्रामीण क्षेत्र के किसानों की दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने का यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। राजस्थान में इनका ढाँचा द्वि–स्तरीय है। जिला स्तर पर प्राथमिक भूमि विकास बैंक कार्य करता है तथा राज्य–स्तर पर राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक कार्य करते हैं।

26 मार्च 1957 को स्थापित राजस्थान राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक लि. वर्तमान में 33 जिलों में 36 भूमि विकास बैंकों द्वारा 143 शाखाओं के माध्यम से ग्रामीण विकास में कार्यरत है। वर्ष 2014–15 में बैंक द्वारा विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत 25,638.86 लाख राशि के ऋण वितरित किये गये।

ये बैंक अपने सदस्यों को भूमि की उत्पादन क्षमता बढ़ाने, भूमि में सिंचाई की व्यवस्था करने, कुएँ व तालाबों के निर्माण व मरम्मत सेट आदि लगाने, भूमि खरीदने व फलों की खेती के लिए दीर्घकालीन ऋण प्रदान करते हैं। ये बैंक पशुपालन के विकास के लिए ऋण दते हैं। इन ऋणों की मात्रा व अवधि अधिक होती है। इन पर ब्याज दर कम होती है तथा ऋण को किश्तों में भुगतान की सुविधा होती है।

अन्य सहकारी समितियाँ

(i) सहकारी विपणन समितियाँ (राजफैड)

केवल कृषि उत्पादन बढ़ाने से ही कृषक की आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं हो सकता है। अतः उत्पादन बढ़ाने के साथ उसे उत्पादन का उचित मूल्य भी मिलना चाहिए। इसके लिए राज्य में क्रय विक्रय सहकारी समितियां (राजफैड) कार्यरत है। जो कृषक की उपज को उचित मूल्य पर बेचने की व्यवस्था करती है। राजफैड किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य दिलाने में सहायता करती है। ये समितियाँ दलालों व मध्यस्थों को समाप्त कर किसानों को कृषि उपज का उचित मूल्य दिलाती हैं। प्राथमिक साख समितियाँ कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए ऋण देती हैं तथा विपणन समितियाँ कृषि उत्पादन को बेचने में सहायता करती है। ये समितियाँ कृषि उपज का विपणन करने के अतिरिक्त कृषि आदानों (Inputs) जैसे उन्नत बीज, रासायनिक खाद, कीटनाशक दवाइयाँ, कृषि उपकरण आदि की पूर्ति भी करती है।

26 नवम्बर 1957 को स्थापित इस राजफैड़ ने वर्ष 2014–15 में 200 करोड़ का टर्न ओवर कर 80 लाख का लाभ अर्जित किया। गत वर्ष में मुख्यतः रबी व खरीब की फसलों का न्यूनतम समर्थन मूल्य के आधार पर लगभग 60000 लाख रुपये की खरीद की गई। डी.ए.पी., यूरिया, जिप्सम व बीज का 34,695 लाख रु. का वितरण किया गया।

(ii) सहकारी उपभोक्ता भण्डार (कानफैड़)–जनता को आवश्यक उपभोक्ता वस्तुएँ उचित मूल्य पर उपलब्ध करवाने के लिए वर्ष 1967 से राज्य में उपभोक्ता भण्डार स्थापित किये गये। जून, 2000 तक राज्य में 613 उपभोक्ता भण्डार कार्यरत थे। कानफैड द्वारा अपनी व्यावसायिक गतिविधियों का संचालन तीन अनुभाग – मेडिकल, मार्केटिंग व नागरिक आपूर्ति के माध्यम से किया जा रहा है।

मेडकिल अनुभाग द्वारा 62 एलोपैथी व 3 आयुर्वेदिक दवा विक्रय केन्द्रों तथा 65 मुख्यमंत्री निशुल्क दवा वितरण केन्द्र द्वारा दवाईयों का व्यवसाय किया जा रहा है। दैनिक उपयोग की वस्तुओं के विक्रय हेतु जयपुर में 11 विक्रय केन्द्र स्थापित किए गए है। प्रत्येक जिला स्तर पर उपभोक्ता सहकारी भण्डार कार्यरत है।

कानफैड का वर्ष 14–15 का टर्नओवर 8470 लाख रुपये का रहा है। भविष्य में जैविक उत्पादों के विक्रय केन्द्र, महिला विक्रय केन्द्र एवं ग्राम स्तर पर मिनी सुपर मार्केट प्रारम्भ करने की योजना है।

(iii) सहकारी गृह निर्माण समितियाँ

कमजोर वर्ग को आवास सुविधायें उपलब्ध करवाने के लिए सहकारी गृह–निर्माण समितियाँ कार्य कर रही हैं। इस समय राज्य में इस प्रकार की 1202 समितियाँ कार्यरत हैं। समाज में कमजोर एवं पिछड़े वर्गों तथा शहरी एवं ग्रामीण जनता को भवन बनाने के लिए ऋण उपलब्ध करवाने का कार्य राजस्थान

राज्य सहकारी गृह निर्माण वित्त निगम द्वारा किया जाता है। राज्य में 1224 गृह निर्माण सहकारी समितियाँ द्वारा आवासीय कालोनियों का विकास कर 2.25 लाख भूखण्ड/भवन उपलब्ध कराये गये। आवासन संघ में 1344 गृह निर्माण सहकारी समितियां तथा 5512 साधारण सदस्य है। राज्य सरकार द्वारा आवासन संघ को 108.60 लाख रुपये हिस्सा राशि के रूप में दिये है।

(iv) डेयरी सरकारी समितियाँ

राज्य में दुग्ध विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत 13878 प्राथमिक दुग्ध उत्पादक समितियाँ (5159 महिला दुग्ध समितियां), 21 जिला स्तरीय दुग्ध उत्पादक समितियाँ, 1 शीर्ष संस्था राजस्थान कोपरेटिव डेयरी फेडरेशन (RCDF) कार्यरत है। वर्ष 2014–15 में इन्होंने 26.01 लाख लीटर प्रतिदिन दुग्ध संकलन किया एवं 18.56 लीटर प्रतिदिन दुग्ध का विपणन किया। इन समितियों की सदस्य संख्या 2014–15 तक 7.61 लाख हो गयी। राजस्थान में सहकारी डेयरी संघ का ढाँचा सुदृढ़ है। राज्य में प्रतिदिन 1955 हजार लीटर दूध, 65 मीट्रिक टन दूध पाउडर का उत्पादन हो रहा है। राज्य में दूध अवशीतन क्षमता 915 हजार लीटर दूध प्रतिदिन है तथा अवशीतन केन्द्रों की संख्या 32 है। डेयर अपने उत्पादों के विक्रय हेतु 328 बिक्री केन्द्र एवं 17965 डेयरी बूथ का संचालन कर रही है।

(v) सहकारी शिक्षा एवं प्रबन्ध संस्थान (राइसेम) – सहकारिता आन्दोलन की उत्तरोत्तर प्रगति के लिए व्यावसायिक प्रबन्धक एवं दक्ष कार्मिक वर्ग तैयार करने के लिए 1994 में इसका गठन किया गया। विभिन्न प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के तहत वर्ष 2014–15 में 119 कार्यक्रमों के अन्तर्गत 3477 व्यक्तियों को प्रशिक्षित किया गया।

सार्वजनिक उपक्रम (Pubic Sector Units-PSUs) :

भारत सरकार द्वारा नियंत्रित एवं संचालित उद्यमों एवं उपक्रमों को सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम या पीएसयू कहा जाता है। केन्द्र सरकार या किसी राज्य के आधिपत्य वाले सार्वजनिक उपक्रम में सरकारी पूंजी की हिस्सेदारी 51 प्रतिशत या इससे अधिक होती है। यदि पीएसयू में एक अथवा एक से अधिक राज्यों एवं केन्द्र सरकारी की साझेदारी है तब भी पूंजी हिस्सेदारी का प्रतिशत इसी प्रकार रहेगा। स्वतंत्र भारत में वर्ष 1951 में मात्र 5 पीएसयू थे। अब इनकी तादाद लगभग 250 हो चुकी है।

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (पीएसयू) ने देश के औद्योगिक विकास के लिए एक मजबूत नींव रखी है। सार्वजनिक क्षेत्र का उद्देश्य लाभ कमाना नहीं है। इसलिए वे अर्थव्यवस्था को सही दिशा में ले जाने वाली राष्ट्र निर्माण की गतिविधियों में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम सरकार को लाभ उठाने या प्रदान करने (उनके नियंत्रित शेयरधारक) के लिए तथा अर्थव्यवस्था में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वांछित सामाजिक आर्थिक उद्देश्यों और लंबी अवधि के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए हस्तक्षेप करते हैं।

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक (पीएसबी) कृषि अर्थव्यवस्था को प्रगतिशील मार्ग की ओर ले जाने और ग्रामीण भारत के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके अलावा सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम नागरिकों के लिए बुनियादी ढांचागत सेवाएं प्रदान कर ग्रामीण विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का विकास :

स्वतंत्रता के पहले हमारा देश आय में असमानता और रोजगार के निम्न स्तर, आर्थिक विकास और प्रशिक्षित जनशक्ति, कमजोर औद्योगिक आधार, अपर्याप्त निवेश और बुनियादी सुविधाओं, आदि के अभाव में क्षेत्र असंतुलन जैसी गंभीर सामाजिक और आर्थिक समस्याओं से जूझ रहा था।

इसलिए, सार्वजनिक क्षेत्र का खाका आत्मनिर्भर आर्थिक विकास के लिए एक साधन के रूप में विकसित किया गया था। देश ने योजनाबद्ध आर्थिक विकास की नीतियां बनाकर सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के विकास की परिकल्पना को अपनाया।

प्रारंभ में, सार्वजनिक क्षेत्र प्रमुख और सामरिक उद्योगों तक ही सीमित था। दूसरे चरण में उद्योगों का राष्ट्रीयकरण, बीमार इकाइयों के निजी क्षेत्र द्वारा अधिग्रहण और सार्वजनिक क्षेत्र का नए उपक्रमों में प्रवेश जैसे उपभोक्ता वस्तुओं का निर्माण, सलाहकारी संस्था, करार और परिवहन आदि देखा गया।

औद्योगिक नीति संकल्प पत्र 1948 ने अर्थव्यवस्था की जरूरत और इसके लिए उत्पादन में निरंतर वृद्धि और न्याय संगत वितरण को महत्वपूर्ण बताया। इस प्रक्रिया में, नीति उद्योगों के विकास में राज्यों की सक्रिय भागीदारी की परिकल्पना की गई।

औद्योगिक नीति संकल्प पत्र 1956 ने उद्यमों को राज्य द्वारा निभाई गई भूमिका के आधार पर तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया–

पहली श्रेणी (अनसूची अ) में उन उद्यमों को शामिल किया गया जिनके विकास की विशेष जिम्मेदारी भविष्य में राज्यों की होगी।

दूसरी श्रेणी (अनुसूची ब) में उन उद्यमों को शामिल किया गया जिनका विकास मुख्य रूप से राज्य द्वारा संचालित किया

जाएगा परंतु राज्य के प्रयासों के पूरक के तौर पर निजी भागीदारी को शामिल होने की अनुमति होगी।

और तीसरी श्रेणी में शेष उद्योगों, जो निजी क्षेत्र के लिए छोड़ दिए गए थे शामिल थे।

वर्ष 1969 में सरकार ने 14 प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया। औद्योगिक लाइसेंसिंग नीति 1970 ने बड़े औद्योगिकरण घरानों से संबंधित उपक्रमों पर 350 करोड़ रुपए से अधिक संपत्ति के आधार पर परिभाषित कर कुछ प्रतिबंध लगाए। 1973 में, बड़े औद्योगिक घरानों को एम आर टी पी एक्ट 1969 की परिभाषा के अनुरूप अपनाया गया और जिन कंपनियों की संपत्तियां 200 करोड़ रुपये से अधिक थीं, उन्हें भी शामिल किया गया।

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के लिए महारत्न/नवरत्न/मिनीरत्न का दर्जा

लोक उपक्रम विभाग द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (सीपीएसई) को महारत्न, नवरत्न, मिनीरत्न के दर्जे से नवाजा जाता है। ये प्रतिष्ठित खिताब उन्हें वैश्विक बाजार में प्रतिस्पर्धा करने के लिए अधिक से अधिक स्वायत्तता प्रदान करते हैं।

महारत्न का खिताब पाने की योग्यता के लिए एक कंपनी का वर्ष में औसत कारोबार 20,00 करोड़ रुपये होना चाहिए जो तीन साल पहले 25,000 करोड़ रुपये निर्धारित किया गया था। कंपनी का औसत वार्षिक कुल मूल्य 10,000 करोड़ रुपये होना चाहिए।

महारत्न का खिताब वृहद सीपीएसई को अपने अभियान का विस्तार करने और वैश्विक के रूप में उभरने की ताकत प्रदान करता है। यह दर्जा उन फर्मों के बोर्डों को जिनकी वर्तमान निवेश सीमा 1,000 करोड़ रुपये है को बिना सरकार की मंजूरी के तय सीमा के खिलाफ 5,000 करोड़ रुपए का निवेश करने का फैसला लेने का अधिकार प्रदान करता है। महारत्न फर्में अब अपनी परियोजना के कूल मूल्य के 15 फीसदी हिस्से तक निवेशकरने के लिए मुक्त होंगी, परंतु यह निवेश 5,000 करोड़ रुपये की अधिकतम सीमा से अधिक नहीं होगा।

नवरत्न केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम (सीपीएसई) निम्नलिखित मानदंडों को पूरा करने पर नवरत्न का दर्जा प्रदान करने के लिए विचार किए जाने के पात्र होते हैं:

अनुसूची 'अ' और मिनीरत्न श्रेणी –1 का दर्जा प्राप्त करने के बाद। पिछले पांच वर्षों के दौरान कम से कम तीन 'उत्कृष्ट' या 'बहुत अच्छा होने की रेटिंग (एमओयू) प्राप्त करना।

नवरत्न का खिताब सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमी (पीएसई) को 1,000 करोड़ या एक परियोजना में उसके कुल मूल्य का 15 फीसदी तक बिना सरकारी मंजूरी के निवेश करने की क्षमता प्रदानकरता है। एक साल में ऐसी कंपनियां कुल मूल्य का 30 फीसदी तक खर्च कर सकती हैं परंतु यह 1,000 करोड़ रुपये से अधिक नहीं होना चाहिए। ये कंपनियां संयुक्त उद्यम, गठबंधन और विदेशी सहायक के रूप में प्रवेश का भी लाभ उठाती हैं।

मिनीरत्न श्रेणी – मिनीरत्न श्रेणी का खिताब पाने के लिए सीपीएसई को पिछले तीन सालों में लागातार लाभ कमाना चाहिए, इन तीन वर्षों में से किसी एक में कम से कम 30 करोड़ रुपये या इससे अधिक का कर पूर्व लाभ (PBT) प्राप्त होना चाहिए और एक सकारात्मक मूल्य होना चाहिए। द्वितीय श्रेणी के लिए सीपीएसई को लगातार तीन वर्षों तक लाभ कमाना चाहिए और सकारात्मक कुल मूल्य होना चाहिए।

मिनीरत्न कंपनियां कुछ शर्तों पर संयुक्त उद्यमों में तब्दील, सहायक कंपनियां रखना और विदेशों में कार्यालय स्थापित कर सकती हैं। यह पद पीएसई को तब मिलता है जब उसने निरंतर तीन वर्षों तक लाभ कमाया हो या उसका शुद्ध लाभ 30 करोड़ हो या तीन वर्षों में से किसी एक में इससे अधिक लाभ कमाया हो।

मिनीरत्न श्रेणी–II सीपीएसई–द्वितीय श्रेणी की मिनीरत्न कंपनियां सरकार की मंजूरी के बिना 300 करोड़ रुपए या अपने मूल्य का 50 फीसदी तक जो भी कम हो पूंजी व्यय की स्वायत्ता रखती हैं।

सार्वजनिक उपक्रमों का महत्व – 'आर्थिक विकास में योगदान : प्रथम प्रधानमंत्री श्री नेहरू ने सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को आधुनिक भारत का मंदिर कहा था, उनका यह कथन अकारण नहीं था; पहली पंचवर्षीय योजना में 29 करोड़ रु. के कुल निवेश से पांच केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम स्थापित किए जाने के बाद से सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों ने भारत के सामाजिक–आर्थिक विकास में अहम भूमिका निभाई है। आज देश में 250 से अधिक केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रम हैं। इन उपक्रमों का कुल कारोबार देश के जीडीपी का करीब 25 प्रतिशत और निर्यात आय में इनकी हिस्सेदारी 8 प्रतिशत है। इन इकाइयों में कुल मिला कर 13.9 लाख लोग काम करते हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम यानि पीएसयू की कुल बाजार पूंजीकरण में हिस्सेदारी 21 प्रतिशत है जो जून 2014 में इनकी संयुक्त पूंजी 337.6 अरब डॉलर तक पहुंच गई। मुंबई शेयर बाजार में सूचीबद्ध 500 सबसे बड़ी कंपिनयों में 60 से अधिक पीएसयू हैं। कुछ पीएसयू का तो अपने कारोबार के मूल क्षेत्रों में लगभग एकाधिकार है। मिसाल के तोर पर भारत के कुल कोयला उत्पादन का करीब 81.1 प्रतिशत कोल इंडिया के हाथ में है और 74 प्रतिशत

कोयला बाजार उसकी मुट्ठी में है. इसी तरह भारत में लौह अयस्क का खनन करने वाली सबसे बड़ी कंपनी राष्ट्रीय खनिज विकास निगम हैं।

आर्थिक वृद्धि में उल्लेखनीय योगदान करने व अच्छा प्रदर्शन करने वाली सभी पीएसयू में तीन प्रमुख समानताए है – दक्ष मानव संसाधन, ठोस प्रबंधन, और नित नई सोच।

भारत पेट्रालियम कॉरपोरेशन के सीएमडी एस. वरदराजन बताते हैं– "रिफाइनिंग में बेहतर मार्जिन लेकर और इंवेंट्री के कड़े प्रबंधन से हम 2013–14 में कच्चे तेल के दामों में उतार–चढ़ाव के विपरीत असर को नाकाम करने में कामयाब रहे और बाजार स्पर्धा में अपना पलड़ा भारी रख सके। वृद्धि तेज करने के लिए हमने बाजार में कड़े नए तरीके अपनाए जिनमें पीएफएस प्लैटिनम, ऑटोमेशन फॉर श्योर, डायल अ भारत गैस, मिनी और न्यू जेनरेशन ल्यूब्रिकेंट्स शामिल हैं. इसके साथ–साथ हमने मूल्यों पर पर आधारित मानव संसाधन प्रक्रियाएं अपनाई जिससे कर्मचारियेां के साथ संपर्क का स्तर बढ़ सकें।"

पावर ग्रिड कॉपरेशन ऑफ इंडिया के सीएमडी आर.एन. नायक अपनी कंपनी की सफलता का श्रेय प्रदर्शन से संचालित कार्यशैली को देते हैं, जिससे सारा ध्यान परिणामों और स्मार्ट प्रक्रियाओं के विकास पर नायक का कहना था, "हमारे कर्मचारी हमारी सबसे बड़ी दौलत हैं। दुनिया के कुछ बेहतरीन इलेक्ट्रिकल इंजीनियर हमारे यहां काम करते हैं।"

लेकिन पीएसयू को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। पेट्रोलियम, खनन, बिजली उत्पादन, बिजली संप्रेषण, परमाणु ऊर्जा, भारी इंजीनियरिंग ओर विमानन, दूरसंसार जैसे क्षेत्रों पर हावी रहे केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को 1991 में आर्थिक उदारीकरण का दौर शुरू होने के साथ ही निजी कंपनियों से कड़ी टक्कर मिल रही है। केन्द्रीय वित्त मंत्री अरुण जेटली ने स्वयं 22 जुलाई को राज्यसभा में अपने बयान में यह बात स्वीकार की कि, "सरकारी कंपनियों को स्पर्धा के माहौल में किसी भी अन्य कारोबारी संगठन की तरह काम करना सीखना चाहिए। उन्हें सरकारी विभाग की तरह काम नहीं करना चाहिए। उन्होंने बताया कि घाटे में चल रहे 79 पीएसयू में से 49 बीमार है।"

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1 व्यापार की सहायक क्रियाओं में सम्मिलित नहीं है –

अ बैंक ब बीमा

स गोदाम द विक्रय परान्त सेवा

2 नवप्रवर्तन का क्या अर्थ है –

अ नवीन वस्तुओं का उत्पादन

ब ग्राहक संतुष्टि

स ग्राहक आवश्यकतानुसार उत्पादन

द वस्तुओं की अधिकतम विक्रय करना।

3 ग्राहकों के सृजन में क्या सम्मिलित है?

अ ग्राहकों को सुविधाएं देना

ब ग्राहकों को उचित मूल्य पर वस्तुएं देना

स ग्राहकों की संख्या में वृद्धि

द ग्राहकों को संतुष्ट करना

4 व्यवसाय के उद्देश्यों में सर्वप्रमुख उद्देश्य होता है?

अ लाभ उद्देश्य

ब सेवा उद्देश्य

स मानवीय उद्देश्य

द इनमें से कोई भी नहीं

5 निम्न में से एकल व्यापार की विशेषता है?

अ समझौता

ब दो या दो से अधिक व्यक्ति

स लाभ का विभाजन

द एकल स्वामित्व

6 साझेदारी कब अवैध समझी जाती है?

अ दो से कम व्यक्ति हो जाने पर

ब अवैधानिक उद्देश्य होने पर

स व्यवसाय में 50 से अधिक साझेदारों के होने पर

द उपरोक्त सभी।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1 व्यवसाय से क्या अर्थ है?

2 एकल व्यापार किसे कहते है?

3 साझेदारी को समझाइए।

4 साझेदारी संलेख क्या है?

5 दायभाग प्रणाली क्या है?

6. सहकारिता क्या है?

7. सार्वजनिक उपक्रमों में सरकारी पूँजी का हिस्सा कितना प्रतिशत होता है?

8. सीमित दायित्व साझेदारी कानून कब से लागु हुआ?

9. राजस्थान राज्य सहकारी बैंक की स्थापना कब हुई?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1 व्यवसाय के प्रकार बताइए।

2 नवप्रवर्तन क्या है?

3 व्यवसाय एक मानवीय क्रिया है, समझाइये।

4 उपयोगिता का सृजन क्या है?

5 प्रदर्शन द्वारा साझेदार किसे कहते हैं?

6 साझेदारी कब अवैध हो जाती है?

7 साझेदारी की चार विशेषताएं समझाइयें।

8. हिन्दु अविभाजित परिवार की चार सीमाएं बताइएं।

9. साझेदारी संलेख के अभाव में लागू होने वाली शर्तें बताइएं।

10. प्राथमिक कृषि साख समितियों के कार्य बताईये।

निबंधात्मक प्रश्न

1 व्यवसाय से आपका क्या आशय है? व्यवसाय की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

2 व्यवसाय के महत्व को स्पष्ट रूप से समझाइये।

3 व्यवसाय के उद्देश्य क्या क्या होते हैं?विस्तार से समझाइये।

4 व्यवसाय के आर्थिक उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से समझाइये।

5 एकल व्यापार की उपादेयता बताइये।

6 एकल व्यापार की परिभाषा दीजिए तथा इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

7 साझेदारी क्या है ? इसके लाभ–दोष बताइये।

8 साझेदारी संलेख की प्रमुख बातों का उल्लेख कीजिए।

9 हिन्दु अविभाजित परिवार का अर्थ बताते हुए इसकी चार विशेषताएं एवं चार गुण बताइये।

10 सीमित दायित्व साझेदारी (एल.एल.पी) पर टिप्पणी लिखिए।

या

एल.एल.पी. का अर्थ बताते हुए इसकी दस विशेषताएं बताइये।

11. साझेदारों को विभिन्न प्रकारों की विवेचना कीजिए।

12. सहकारिता आन्दोलन का वर्णन कीजिए।

13. राजस्थान में कार्यरत सहकारी संस्थाओं का वर्णन कीजिए।

14. सार्वजनिक उपक्रम की उपादेयता बताते हुए उनके वर्गीकरण का वर्णन कीजिए।

15. सहकारिता संस्थाओं के गुण दोष बताईये।

उत्तर माला–

1 द, 2. अ, 3. स, 4. अ, 5. द, 6. द

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम देश के आर्थिक विकास और संपन्नता में महत्वपूर्ण योगदान कर रहे हैं

	महारत्न	नवरत्न	मिनीरत्न	अन्य पीएसयू
सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन	गैस अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड (गेल)	भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड (बीपीसीएल)	वाप्कोस लिमिटेड	एनटीपीसी विद्युत व्यापार निगम लिमिटेड
सर्वाधिक तेज वृद्धि	कोल इंडिया लिमिटेड (सीआइएल)	पावर ग्रिड कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड	एन्नोर पोर्ट लिमिटेड	पावर सिस्टम ऑपरेशन कॉर्पोरेशन लिमिटेड
सर्वाधिक मूल्यवान	ऑयल ऐंड नेचुरल गैस कॉर्पोरेशन (ओएनजीसी)	नेशनल मिनरल डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन लिमिटेड (एनएमडीसी)	नेशनल हाइड्रोइलेक्ट्रिक कॉर्पोरेशन लिमिटेड (एनएचपीसी)	फर्टिलाइजर्स ऐंड केमिकल्स (त्रावणकोर) लिमिटेड
सीएसआर-टिकाऊपन में सर्वश्रेष्ठ	स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड (सेल)	ऑयल इंडिया लिमिटेड	इरकॉन इंटरनेशनल लिमिटेड	यूरेनियम कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड
एचआर के मामले में सर्वश्रेष्ठ	नेशनल थर्मल पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड (एनटीपीसी)	रूरल इलेक्ट्रिफिकेशन कॉर्पोरेशन लिमिटेड (आरईसीएल)	हाउस ऐंड अर्बन डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन लिमिटेड (हुडको)	एनएचडीसी लिमिटेड
सर्वाधिक ईको-फ्रेंड्ली	स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड (सेल)	भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड	नुमालीगढ़ रिफाइनरी लिमिटेड	यूरेनियम कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड
आरऐंडी-इनोवेशन में सर्वश्रेष्ठ	भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड (भेल)	भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड	राजस्थान इलेक्ट्रॉनिक्स ऐंड इंस्ट्रुमेंट्स लिमिटेड	इंडियन रिन्यूएबल एनर्जी डेवलपमेंट एजेंसी (इरेडा)
सर्वश्रेष्ठ ग्लोबल प्रजेंस अवार्ड	भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड (भेल)	हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड (एचएएल)	इंजीनियर्स इंडिया लिमिटेड	–

अध्याय– 3

कम्पनी (Company)

व्यापारिक क्षेत्र के बदलते परिवेश में एकाकी एवं साझेदारी फर्म की व्यवस्थाएं, व्यावसायिक प्रगति के लिए अपर्याप्त या कमजोर सिद्ध होने लगी । एकल व्यापार में पूँजी की अपर्याप्तता एवं अत्यधिक जोखिम तथा साझेदारी फर्म में पूँजी की सीमितता (वर्तमान में साझेदारों की संख्या अधिकतम 50), असीमित दायित्व (निजी सम्पत्ति का व्यापारिक दायित्व पूर्ति के लिए प्रयुक्त होने का भय) एवं साझेदारी व्यापार की अन्य सीमाओं के कारण विकसित होती अर्थव्यवस्था एवं बाजार में यह व्यावसायिक स्वरूप अपर्याप्त सिद्ध होने लगे।

अत्यधिक जोखिम एवं सीमित पूँजी के कारण व्यापार जगत में एक ऐसे संगठन की आवश्यकता प्रतीत हुई जिसमें पूँजीदाता का निवेश सुरक्षित रहे, दायित्व सीमित रहे अर्थात् हानि की दशा में भी निजी सम्पत्ति दॉव पर न लगे तथा व्यावसायिक ज्ञान व कुशलता के अभाव में भी (केवल पूँजी निवेश द्वारा) व्यापारिक लाभ कमा सकें। इसी आवश्यकता हेतु व्यवसाय जगत में **कम्पनी** व्यापार प्रणाली प्रारम्भ हुई।

अखण्ड भारत में 'कम्पनी' प्रारूप का आरम्भ सन्1600 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना से हुआ, जो ब्रिटिश सम्राट के शाही अधिकार पत्र (Royal charter) द्वारा की गई। कालान्तर में, व्यापार विस्तार एवं प्रगति के साथ ही इस क्षेत्र में जटिलताएँ व चुनौतियॉ उत्पन्न होने पर कंपनी व्यापार के सुचारू संचालन हेतु निश्चित कानून की आवश्यकता अनुभव की गई। परिणाम स्वरूप, ब्रिटिश संसद ने 'ज्वाइंट स्टॉक कम्पनी रजिस्ट्रेशन अधिनियम 1844' पारित किया। इसी आधार पर भारत में भी–''संयुक्त पूँजी कम्पनीज अधिनियम 1850'' बनाया गया। इस अधिनियम में ''सीमित दायित्व'' के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया गया था। इस कमी को पूरा करने के लिए इग्लैड में नया कम्पनी अधिनियम 1855 में पारित किया गया इसी आधार पर भारत में भी पुनः 1857 में सीमित दायित्व सिद्धान्त के साथ बैंकिग व बीमा व्यापार को छोड़कर अन्य व्यवसाय के लिए कम्पनी स्थापना हेतु नया कानून पारित किया गया। चूंकि बैकिंग एवं बीमा कम्पनियों को सीमित दायित्व को सुविधा उपलब्ध नहीं थी इसलिए इन कम्पनियों को यह सुविधा देने हेतु 1860 में नया कम्पनी कानून बनाया गया। इसके बाद भी 1866,1882,1913 तक संशोधन कानून इग्लैण्ड के समकक्ष बनाये गये।

द्वितीय विश्व युद्ध (1939–1945) के बाद की औद्योगिक क्रान्ति, भारत शासन अधिनियम 1935 एवं 1947 में प्राप्त स्वतन्त्रता के कारण कम्पनी व्यवसाय के प्रशासन में अनेक विसंगतियॉ उत्पन्न होने लगी । सरकार द्वारा श्री.सी.एच.भाभा की अध्यक्षता में नये कम्पनी कानून निर्माण हेतु अक्टूबर 1950 में विशेषज्ञ समिति गठित की गई। जिसने 1952 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। 1956 में सरकार ने रिपोर्ट स्वीकार कर नया **कम्पनी अधिनियम 1956** पारित किया, जो अनेक संशोधनों के साथ (जिसमें 658 धाराएँ एवं 15 अनुसूचियॉ थी) लागू किया गया , जो 30 अगस्त 2013 तक प्रभावी रहा।

कम्पनी अधिनियम, 2013

कम्पनी अधिनियम 1956 को प्रतिस्थापित करने हेतु नया कम्पनी विधेयक लोकसभा/संसद द्वारा 18 दिसंबर 2012 को तथा राज्यसभा द्वारा 8 अगस्त 2013 को पारित किया गया। इस पारित विधेयक पर 29 अगस्त 2013 को महामहिम राष्ट्रपति ने अपनी सम्मति प्रदान कर दी और यह पारित विधेयक कम्पनी अधिनियम 2013 बन गया।

कम्पनी अधिनियम 2013 में कुल 29 अध्याय, 470 धाराएँ एवं 7 अनुसूचियॉ हैं। इस अधिनियम को एक युगान्तकारी / ऐतिहासिक कानून कहा गया है। **इस नये कम्पनी अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं:–**

1. कम्पनी की कार्य व्यवस्था यथा सम्भव पारदर्शी एवं जबावदेह हो तथा निवेशकों एवं कम्पनी व्यापार में हित रखने वाले व्यक्तियों /पक्षकारों के हितों की सुरक्षा सुनिश्चित करने का सर्वाधिक प्रयास किया गया है।
2. निवेशकों की रक्षार्थ कम्पनी द्वारा पूँजी जुटाने हेतु जारी किए जाने वाले प्रविवरण संबन्धी नियमों को अधिक कठोर एवं

प्रभावी बनाया गया है तथा '' स्थानापन्न प्रविवरण'' का प्रावधान ही समाप्त कर दिया गया है।

3. कम्पनी की प्रथम वार्षिक सभा की अवधि **समामेलन** के 18 माह से घटाकर केवल 9 माह कर दी गई है।

4. कम्पनी द्वारा जारी किए गए ऋण पत्रों 'डिबेंचर' का 'ऋण' में समावेश नहीं होगा।

5. निजी कम्पनी की अधिकतम सदस्य संख्या 200 कर दी गई है।

6. कम्पनी के निदेशक मण्डल में कुल सदस्यों (अधिकतम 15) का 1/3 स्वतन्त्र निदेशकों (प्रवर्तक या प्रबन्धकीय व्यक्ति न हो) की नियुक्ति अनिवार्य की गई है।

7. केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित कुछ विशेष प्रकार की कम्पनियों के निदेशक मण्डल में एक महिला निदेशक की नियुक्ति अनिवार्य कर दी गई है।

8. कम्पनी अपने 50 प्रतिशत ऋणदाताओं के भुगतान में विफल रहती हैं तो बीमार कम्पनी घोषित किये जाने के प्रावधान सम्मिलित किये गये है। बीमार कम्पनी के पुनरूद्धार व पुनर्वास हेतु भी व्यवस्थाएँ है।

9. कम्पनी से संबंधित अवैध भीतरी व्यापार (Insider Trading) को प्रतिबन्धित करने के लिए पर्याप्त प्रावधान किए गए है।

10. नये कानून में निगमिय मामलों में 'कपट' की परिभाषा दी गई है व इस हेतु कड़े दण्ड की व्याख्या की गई है। (पूर्व में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं थीं)

11. नए कानून के तहत कम्पनी के विरूद्ध कुप्रबन्ध या दमन तथा बीमार कम्पनी संबन्धी कार्यवाही के लिए 'राष्ट्रीय कम्पनी कानून अधिकरण NCLT'' बनाया गया है।

12. कम्पनी गत तीन वर्षों में अर्जित सकल लाभ का 7.5 प्रतिशत राजनितिक दलों को चन्दा दे सकती है। कम्पनी को गत तीन वर्षों के औसत लाभ का 2 प्रतिशत राशि सामाजिक दायित्व (CSR) पर अनिवार्य रूप से व्यय करनी होगी।

13. केवल एक सदस्य की कम्पनी (OPC) वाली नयी संकल्पना को प्रभाव में लाया गया है।

14. निष्क्रिय कम्पनी (Defunct Co.)के पंजीयन की व्यवस्था भी की गई है।

15. कम्पनी के सुचारू संचालन हेतु ई–प्रबन्ध/ प्रशासन सम्बन्धी प्रावधान भी किए गए है।

कम्पनी की परिभाषा (Definition of Company)

'कम्पनी ' शब्द लैटिन भाषा से लिया गया है तथा इसकी उत्पत्ति दो लैटिन शब्दों 'कम' (Com) और 'पेनिस' (Panis) के मेल से हुई है जिनका अर्थ क्रमशः 'साथ– साथ' तथा 'रोटी' है। प्रारम्भ में 'कम्पनी' शब्द से आशय ऐसे व्यक्तियों के समूह से था जो "भोजन के लिए एकत्रित हुए हों।''

ज्वाइंट स्टॉक कम्पनी से आशय ऐसी कम्पनी से है जिसके पास स्थायी चुकता या अंशों में विभाजित एक निश्चित राशि की नाममात्र अंश पूँजी होती है, जो निश्चित राशि से धारित होती है तथा जो इस सिद्धान्त पर आधारित होती है, कि उसके अंश या स्टॉक को धारण करने वाले ही उसके सदस्य होंगे, अन्य कोई व्यक्ति नहीं।

ऐसी कम्पनी को जब सीमित दायित्व सहित अधिनियम के अर्न्तगत पंजीकृत किया जाता है ,तो उसे अंशो द्वारा सीमित कम्पनी कहा जाता है।

हेने (Heney) के अनुसार''ज्वॉइट स्टॉक कम्पनी लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से निर्मित एक ऐच्छिक संस्था है, जिसकी पूँजी अन्तरणीय अंशों में विभक्त होती है तथा जिसके स्वामित्व के लिए सदस्यता आवश्यक है।''

लार्ड लिण्डले (Loard Lindley) के शब्दों में '' कम्पनी से आशय अनेक व्यक्तियों के ऐसे संघ से है जिसकी संयुक्त पूँजी में वे अपना धन या कोई अन्य सम्पति लगाते हैं तथा किसी सामान्य उद्देश्य के लिए उसका उपयोग करते है, इस प्रकार एकत्रित धन को ही कम्पनी की पूँजी कहते है। वे व्यक्ति जो इस पूँजी में अंशदान करते हैं,कम्पनी के सदस्य होते हैं। पूँजी का आनुपातिक भाग जिसका प्रत्येक सदस्य अधिकारी होता है,उसका 'अंश' कहलाता है।''

अमेरिका के प्रधान न्यायाधीश तथा विधिवेत्ता मार्शल ने कम्पनी के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है–

'' ज्वाइॅट स्टॉक कम्पनी एक ऐसा कृत्रिम व्यक्ति है,जो अदृश्य तथा अमूर्त है, और जिसका अस्तित्व केवल विधि की दृष्टि से है। केवल कानून की कृति होने के कारण इसके केवल वही तत्व होते हैं जो इसे निर्मित करने वाली विधि इसे प्रदान करती है अथवा जो इसके अस्तित्व के लिए परम आवश्यक है। इसकी प्रमुख विशेषताएं शाश्वतता और व्यक्तित्व हैं जिनके कारण एक निरन्तर बदलने वाले व्यक्तियों के समूह को 'अपरिवर्तित' माना जाता है और वह एक 'व्यक्ति' की भॉति कार्य कर सकती है।''

एम.एम.शाह के अनुसार 'कम्पनी' शब्द से आशय सामान्य उद्देश्य के लिए निर्मित अनेक व्यक्तियों के एक संघ से है। इसमें दो महत्वपूर्ण तत्त्व समाविष्ट हैं, प्रथम–यह कि संघ के सदस्य इतने

अधिक होते है कि उसे सही अर्थ में फर्म या साझेदारी नहीं कहा जा सकता है और दूसरे, प्रत्येक सदस्य संघ में अपने हित को अन्य सदस्यों की सहमति के बिना अन्तरित कर सकता है। ऐसे संघ को विधि के अर्न्तगत निगमित (incorporate) किया जा सकता है। जिसके फलस्वरूप यह एक निगमित संस्था हो जाती है जिसे सामान्यतः स्थायी अस्तित्व वाली सार्वमुद्रा (having common seal) युक्त कहा जाता है। इसके पश्चात् वह अपने सदस्यों से पृथक एवं वैधानिक व्यक्ति माना जाता है। परन्तु यदि उसका इस प्रकार निगमन नहीं हुआ तो उसे कोई अस्तित्व प्राप्त नहीं होता और वह विधि कि अर्न्तगत अपने सदस्यों से पृथक नहीं माना जाता है। कम्पनियों का सबसे महत्वपूर्ण रूप अंशों द्वारा सीमित कम्पनी है।

कम्पनी अधिनिमय 2013 की धारा 2(20) में दी गयी 'कम्पनी' की परिभाषा के अनुसार 'कम्पनी से तात्पर्य इस अधिनियम अथवा पूर्ववर्ती किसी कम्पनी विधि के अर्न्तगत निगमित कम्पनी से है। अगली दो धाराओं अर्थात् धारा 2 (21) तथा धारा 2 (22) में क्रमशः 'गारण्टी द्वारा लिमिटेड कम्पनी ' तथा 'अंशों द्वारा लिमिटेड कम्पनी ' की परिभाषाएँ दी गयी हैं।

इन परिभाषाओं के निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि **''कम्पनी एक ऐसा कृत्रिम व्यक्ति है जिसका वास्तविक कारोबार किन्हीं सजीव व्यक्तियों द्वारा कुछ सजीव व्यक्तियों के हित या लाभ के लिए किया जाता है।"**

कम्पनी की विशेषताएं / प्रकृति

(Charcteristics /Nature of Company)

1. **कृत्रिम व्यक्ति (An artificial person)**

   कम्पनी विधान के प्रावधानों के अनुसार निर्मित एक कृत्रिम व्यक्ति है। न्यायमूर्ति मार्शल (Marshall) ने लिखा है कि, ''कम्पनी अदृश्य, अमूर्त तथा कृत्रिम व्यक्ति है जिसका अस्तित्व केवल कानून की दृष्टि में ही होता है।''

   किन्तु इसे जाली या काल्पनिक व्यक्ति नहीं अपितु वास्तविक व्यक्ति माना जाता है। इसके अनेक कारण हैं– कम्पनी प्राकृतिक मनुष्यों की तरह ही अपने **नाम से सम्पति खरीद सकती है,** अपने नाम से प्राकृतिक व्यक्तियों के माध्यम से **अनुबन्ध कर सकती है** तथा अपने नाम से अन्य पक्षकारों पर न्यायालय में वाद प्रस्तुत कर सकती है तथा अन्य पक्षकार भी कम्पनी के नाम से वाद प्रस्तुत कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, कम्पनी के भी उतने ही व्यावसायिक दायित्व तथा अधिकार हो सकते है जितने कि एक प्राकृतिक व्यक्ति के होते है। इस प्रकार सभी वैधानिक उद्धेश्यों की पूर्ति की दृष्टि से कम्पनी भी ठीक उसी प्रकार का एक व्यक्ति है जिस प्रकार एक प्राकृतिक व्यक्ति होता है।

2. **पृथक वैधानिक अस्तित्व (Separaet legal entity)** कम्पनी का अपने सदस्यों एवं संचालक मण्डल से पृथक वैद्याानिक अस्तित्व होता है। भारत के भूतपूर्व उपराष्ट्रपति एवं न्यायमूर्ति हिदायतुल्ला ने लिखा है कि ''एक समामेलित कम्पनी का पृथक अस्तित्व होता है तथा कानून इसे अपने सदस्यों से पृथक मानता है। ऐसा पृथक अस्तित्व समामेलन होते ही उत्पन्न हो जाता है।''दूसरे शब्दों मे, कम्पनी का अस्तित्व उन लोगों या सदस्यों से भिन्न एवं स्वतन्त्र होता है जो कम्पनी की स्थापना करते है या उसके अंश खरीदते है। पृथक वैधानिक अस्तित्व के बावजूद भी भारतीय नागरिकता अधिनियम 1955 के तहत 'कम्पनी' को नागरिकता का अधिकार प्राप्त नहीं है।

3. **शाश्वत उत्तराधिकारी (Perpetual succession)** – कम्पनी का अस्तित्व चिरस्थायी होता है। दूसरे शब्दों में कम्पनी को अविच्छिन्न / शाश्वत उतराधिकारी प्राप्त होता है। कम्पनी कभी भी मरती नहीं है इसका कारण यह है कि यह विधान के अधीन बनायी जाती है तथा केवल उसी विधान के अधीन ही उसका विघटन किया जा सकता है। इसके सदस्यों (अंशधारक) की मृत्यु, अक्षमता (पागलपन या अन्य अपंगता), दिवालियापन आदि का कम्पनी के अस्तित्व पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है। ''सदस्य आते –जाते रहते है किन्तु कम्पनी का अस्तित्व सदैव बना रहता है।'' अंश हस्तान्तरण के कारण सदस्यों के परिवर्तित हो जाने से कम्पनी के निरन्तर या अविच्छिन्न अस्तित्व पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।

4. **सीमित दायित्व (Limited liability)**– कम्पनी प्रारूप का सबसे बड़ा लाभ तथा इसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि कम्पनी के सदस्यों का दायित्व सीमित होता है। सामान्यतः अंशों द्वारा सीमित कम्पनी के सदस्यों का दायित्व उनके द्वारा क्रय किये गये अंशों के अंकित मूल्य के अदत्त भाग तक सीमित होता है। यदि सदस्यों ने अंशों का समस्त अंकित मूल्य पहले ही चुका दिया है तो कम्पनी उन सदस्यों से अब और अधिक राशि वसूल नहीं कर सकती है चाहे कम्पनी को अपने ऋणों को चुकाने के लिए अधिक धन की आवश्यकता ही क्यों न हो।

   गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी की दशा में प्रत्येक सदस्य का दायित्व उनके द्वारा दी गयी गारण्टी की राशि तक सीमित होता है। उसे यह राशि कम्पनी के समापन की दशा में चुकानी पड़ती है। (असीमित दायित्व वाली कम्पनी के सदस्यों के दायित्व की कोई सीमा नहीं होती।)

5 **हस्तान्तरणीय अंश (Transferable shares)**– कम्पनी के अंश हस्तान्तरित किये जा सकते है। एक सार्वजनिक कम्पनी के अंशधारी अपने अंशों को कम्पनी के अन्तर्नियमों में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार स्वतन्त्रतापूर्वक हस्तान्तरित कर सकते है। (निजी कम्पनी के सदस्य प्रतिबन्धों के अन्तर्गत ही अपने द्वारा धारित अंशों का अन्तरण कर सकते है। एक व्यक्ति कम्पनी (OPC) के सदस्य के अंश उसकी मृत्यु या उसके अनुबन्ध करने के अयोग्य होने पर उसके द्वारा नामांकित व्यक्ति को स्वतः अन्तरित हो जाते हैं।)

6. **निगमिय अर्थव्यवस्था (Corporate Economy)**– कम्पनी के अंश अन्तरणीय होने के कारण इस व्यवस्था में अधिक ये अधिक पूँजी कम से कम समय में प्राप्त की जा सकती है। इसके अतिरिक्त, कारोबार के विस्तार के लिए अधिक पूँजी की आवश्यकता होने पर कम्पनी अपने सीमानियम के अनुसार ऋण पत्रों (debentures) का निर्गमन भी कर सकती है। इस प्रकार व्यापारिक क्षेत्र में सुगमतापूर्वक पूँजी प्राप्त कर सकने की जो सुविधा कम्पनी व्यवस्था में उपलब्ध है, वह अन्य संगठनों में नहीं हैं। इसी प्रकार ,कम्पनी का एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व होने के कारण वह अपने आस्तियों की स्वामी हो सकती है तथा अपने दायित्व से बाध्य होती है।

7. **अप्रत्यक्ष प्रबन्ध (Indirect Management)**– कम्पनी की व्यवस्था तथा प्रबंधन में अंशधारियों का प्रत्यक्षतः कोई हाथ नहीं रहता है अर्थात् कम्पनी की व्यवस्था उसके स्वामित्व (अंशधारियों) से पूर्णतः भिन्न होती है। कम्पनी के प्रबन्धन के लिए अंशधारियों द्वारा योग्य एवं कुशल व्यक्तियों की निदेशक के रूप में नियुक्ति की जाती है कम्पनी के प्रबन्धन का दायित्व पूर्णतः उसके निदेशकों एवं निदेशक मण्डल पर होता है जो अपनी बैठकों द्वारा कम्पनी की संचालन योजना निर्धारित करते हैं। निदेशकों का कार्यकाल सीमित रखा गया है ताकि वे अपने पद का दुरूपयोग करने की ओर प्रवृत न हों तथा साथ ही इस व्यवस्था में परिवर्तनशीलता बनायी रखी जा सके। अक्षमता अथवा कुप्रबन्धन की स्थिति में निदेशकों को उनकी कार्यकाल की समाप्ति के पूर्व भी हटाया जा सकता है।

8. **पूंजी का स्थायित्व तथा कंपनी की स्थिरता (Permanence of capital and stability of the company)**– निगमित कम्पनी की एक विशेषता यह भी है कि कम्पनी द्वारा निर्गमित अंश तथा ऋणपत्र अपेक्षाकृत कम मूल्य के होने के कारण सामान्य व्यक्ति भी उसमें अपनी पूँजी का निवेश कर सकता है तथा उन्हें हानि की संभावना कम रहती है। साथ ही, कम्पनी में पूँजी लगाने वाले व्यक्ति को अपने अंशों या ऋणपत्रों को आवश्यकतानुसार बेचकर पूँजी वापस लेने में सुविधा रहती है जो अन्य व्यावसायिक संगठनों में उपलब्ध नहीं हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे अनेक व्यक्ति होते हैं जो प्रत्यक्षतः व्यापार में भाग लेना नहीं चाहते हैं परन्तु व्यापार में धन लगाने तथा उससे अर्जित करने के इच्छुक होते हैं। ऐसे व्यक्तियों के लिए कम्पनी –व्यवस्था अत्यन्त सुविधाजनक व लाभप्रद होती है। इससे कम्पनी की पूंजी को स्थायित्व प्राप्त होने के अलावा उसकी स्थिरता भी बनी रहती है।

9. **निवेशकों को हानि से संरक्षण (Protection to investors against loss)** – एक निगमित निकाय या कम्पनी वास्तविक व्यक्ति न होने के कारण उसकी स्वयं की अपनी कोई इच्छा नहीं होती, अतः उसका दूषित मन नहीं हो सकता है। इसलिए उसका आपराधिक दायित्व नहीं होता है। परन्तु भारतीय दण्ड संहिता की धारा 11 में यह स्पष्ट उल्लेख है कि 'व्यक्ति' के अन्तर्गत कोई कम्पनी या व्यक्तियों का संगठन भी समाविष्ट है, चाहे वह साधारण खण्ड अधिनियम ,1897 (General Clauses Act,1897) की धारा 2 (42) के अन्तर्गत निगमित हो अथवा न हो। अतः कम्पनी पर आपराधिक दायित्व अधिरोपित किया जा सकता है जिससे कम्पनी में पूंजी निवेश करने वाले निवेशकों को हानि के विरूद्ध पर्याप्त संरक्षण उपलब्ध होता है।

कम्पनियों का वर्गीकरण (Classification of Companies)

(A) निर्माण की विधि/सृजन स्रोत के आधार पर कम्पनियों के प्रकार (On the basis of mode/ source of incorporation)

1. **शाही राजपत्र द्वारा निर्मित कम्पनी (चार्टर्ड कम्पनी) (incorporated by Royal Charter)** –ऐसी कोई कम्पनी जिसका निर्माण किसी शासक या प्रभुसत्ता– सम्पन्न सम्राट के द्वारा जारी किये गए शाही अधिकार पत्र के द्वारा होता है तो उसे शाही अधिकार पत्र द्वारा निर्मित कम्पनी कहते है। इसका प्रचलन इग्लैण्ड में रहा है जिसका ऐतिहासिक उदाहरण – ईस्ट इण्डिया कम्पनी, 1600 रहा है। भारत में अब ऐसी कम्पनियॉ अस्तित्व में नहीं हैं।

2. **संसद के विशेष अधिनियम द्वारा निर्मित कम्पनी (वैधानिक/स्टेच्युटरीकम्पनी) (incorporated under special Act/Ststute)** जब राष्ट्रीय या राज्य हित में किसी कम्पनी का निर्माण देश की संसद या राज्य की विधानसभा में

विशेष विधान पारित कर किया जाता है तो ऐसी कम्पनी को स्टेच्युटरी कम्पनी कहते है। जैसे – भारतीय जीवन बीमा निगम, राज्य पथ परिवहन निगम, औद्योगिक वित्त निगम, दामोदर घाटी कॉरपोरेशन, विद्युत वितरण निगम।

3. **कम्पनी अधिनियम द्वारा पंजीकृत कम्पनी (रजिस्टर्ड कम्पनी) (incorporated under the companies Act)** – ऐसी कम्पनी जो कम्पनी अधिनियम 2013 अथवा पूर्व में चलन में रहे किसी भी कम्पनी कानून के तहत (निर्धारित प्रक्रिया द्वारा) पंजीकृत / समामेलित हुई है।

(B) सदस्यों के दायित्व अनुसार कम्पनियों के प्रकार (On the basis of Liability of members)

1. **अंशो द्वारा सीमित (दायित्व वाली) कम्पनी (Companies Limited by shares)**–[धारा 2(22)] क. अधि.के अन्तर्गत पंजीकृत ऐसी कम्पनी के सदस्यों (अंशधारी) का दायित्व उनके द्वारा धारित (क्रय) किये गये अंशो के अंकित मूल्य के चुकता न किये गये (unpaid) भाग तक ही सीमित रहता है। ऐसी कम्पनियों को अपने साथ 'सीमित' (Limited) शब्द का प्रयोग अनिवार्य रूप से करना होता है। ऐसी कम्पनी के किसी भी सदस्य को उसके द्वारा धारित अंश मूल्य की सीमा से अधिक के लिए उत्तरदायी नहीं बनाया जा सकता है।

2. **गारण्टी द्वारा सीमित (दायित्व वाली) कम्पनी (Companies Limited by Guarantee)** – [धारा 2(21)] – गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी के सदस्यों का दायित्व कम्पनी के समापन की दशा में उस राशि तक सीमित होता है जिस राशि को चुकाने के लिए उन सदस्यों ने चुकाने या देने की गारण्टी दी थी या प्रतिज्ञा की थी। अतः उनका दायित्व उनके द्वारा दी गई गारण्टी की राशि तक सीमित होता है। इस राशि के अतिरिक्त किसी भी राशि के लिए कम्पनी के सदस्यों को कभी भी उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है।

गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी में अंश पूँजी हो भी सकती है और नहीं भी। किसी गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी में अंश पूँजी है तो उसके सदस्यों को दोहरा दायित्व होता है:

(i) सदस्यों को अपने द्वारा धारित अंशों पर अदत्त सम्पूर्ण राशि कम्पनी द्वारा कभी भी मांग करने पर चुकानी ही पड़ सकती है। [धारा 4(1)]

(ii) सदस्यों को गारण्टी की राशि कम्पनी के समापन के समय चुकानी ही पड़ती है। [धारा 2(21)और धारा 285]

गारन्टी द्वारा सीमित कम्पनी का निर्माण सामान्यतः लाभ के उद्देश्य वाले व्यापारिक कार्यों के लिए नहीं किया जाता है। ऐसी कम्पनियों का निर्माण कला, वाणिज्य, विज्ञान, धर्म आदि महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक हित के कार्यों को सम्पन्न करने के लिए ही किया जाता है। चैम्बर ऑफ कामर्स इस प्रकार की कम्पनी का सर्वोत्तम उदाहरण है।

(C) सदस्यों की संख्या के आधार पर कम्पनियों के प्रकार (On the basis of Number of members)

1 **एकल व्यक्ति कम्पनी (One Person Company)** [धारा 2 (62)]– '' एक व्यक्ति कम्पनी से तात्पर्य उस कम्पनी से है जिसका केवल एक ही सदस्य होता है।"

एकल व्यक्ति कम्पनी (OPC) भी एक समामेलित एवं विधिक व्यक्ति है जिसका अपने एवं एकमात्र सदस्य से पृथक अस्तित्व होता है। इसके सदस्य का दायित्व सीमित होता है। जब तक कि वह कम्पनी असीमित दायित्व वाली कम्पनी नहीं हों।

एकल व्यक्ति कम्पनी में सदस्य केवल एक ही होता है । इसमें कम ये कम एक संचालक होना आवश्यक है। किन्तु एकल व्यक्ति कम्पनी में भी अधिकतम 15 संचालक हो सकते है।

एकल व्यक्ति कम्पनी की अवधारणा को भारत में सर्वप्रथम कम्पनी अधिनियम, 2013 द्वारा अंगीकार किया गया है। इस अवधारणा का उद्देश्य है कि कोई एक व्यक्ति भी जोखिम पूर्ण कार्यों को सीमित दायित्व के साथ प्रारम्भ एवं संचालित कर सके। इससे युवा उद्यमियों को प्रोत्साहन मिलेगा।

2. **प्राइवेट/निजी कम्पनी (Private Company)** [धारा 2(68)]– कम्पनी अधिनियम के अनुसार निजी कम्पनी से तात्पर्य ऐसी कम्पनी से है जिसकी प्रदत्त पूँजी निर्धारित की गई राशि की है तथा जो अपने अन्तर्नियमों द्वाराः जिस पर निम्न प्रतिबन्ध हो–
   1. अपनी प्रतिभूतियों के क्रय के लिए जनता को निमन्त्रण देने पर निषेध लगाती है।
   2. ऐसे सदस्यों की संख्या (एक व्यक्ति कम्पनी को छोड़कर) को 200 तक सीमित रखती हैं
   3. अपने अंशों, यदि हो तो, के हस्तान्तरण के अधिकार पर प्रतिबन्ध लगाती है।
   4. कम्पनी को अपने नाम के अन्त में ''प्राइवेट लिमिटेड'' लगाना आवश्यक होता है।

3. **सार्वजनिक /लोक कम्पनी (Public Company)** [धारा 2 (71)]– सार्वजनिक कम्पनी से तात्पर्य ऐसी कम्पनी से है जो निजी कम्पनी नहीं हैं, अर्थात एक ऐसी कम्पनी जिस पर निजी कम्पनी की तरह प्रतिबन्ध नहीं होते वह सार्वजनिक कम्पनी है।

1. सार्वजनिक कम्पनी अंश पूँजी प्राप्त करने के लिए आम जनता को आमन्त्रित कर सकती है इसलिए इसे अंश क्रय करने के जन–आमन्त्रण हेतु 'प्रविवरण' जारी करना पड़ता है।
2. अंश क्रय के पश्चात् अंशधारी /सदस्य अपने अंशों का हस्तान्तरण(क्रय विक्रय) बिना अनुमति करने के लिए स्वतंत्र है।
3. सार्वजनिक कम्पनी की सदस्य सीमा न्यूनतम 7 सदस्यों की होती है, लेकिन अधिकतम पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है वह अंश पूँजी की सीमा पर निर्भर करता है।
4. कोई भी पब्लिक कम्पनी तब तक अपना व्यापार नहीं कर सकती है जब तक उसें ऐसा करने के लिए कंपनी –रजिस्ट्रार से अनुमति प्राप्त न हो जाये।

(D) नियंत्रण के आधार पर कम्पनियों के प्रकार (On the basis of control)

1 **सूत्रधारी या नियन्त्रक कम्पनी (Holding Company)** – सूत्रधारी कम्पनी से तात्पर्य किसी ऐसी कम्पनी से है जिसका किसी अन्य कम्पनी या कम्पनियों पर प्रत्यक्ष या परोक्ष नियन्त्रण होता है। इस प्रकार जो कम्पनी किसी अन्य कम्पनी या कम्पनियों पर नियन्त्रण करती है, वह नियन्त्रण करने वाली कम्पनी ही सूत्रधारी कम्पनी कहलाती है। सूत्रधारी कम्पनी अन्य कम्पनी (सहायक कम्पनी) पर अपना नियन्त्रण निम्न प्रकार से प्राप्त कर सकती है।

(i) उस कम्पनी (सहायक क.) की अंश पूँजी का 51% या अधिक भाग के अंश खरीद लेने पर ,अथवा

(ii) उस कम्पनी (सहायक क.) के संचालक मण्डल (BOD) के गठन में अधिकांश संचालकों की नियुक्ति का अधिकार प्राप्त कर लेने पर।

2. **सहायक कम्पनी (Subsidiary Company)** –कोई भी कम्पनी जिसका नियन्त्रण किसी अन्य कम्पनी द्वारा किया जाता है, तो उसे सहायक कम्पनी के नाम से जाना जाता है अर्थात् ऐसी कम्पनी के मुख्य निर्णय अन्य सूत्रधारी कम्पनी द्वारा किये जाते है।

3. **सहचारी या सम्बद्ध कम्पनी (Associate Company):** ऐसी कम्पनी जिस पर किसी अन्य कम्पनी का सारवान या महत्वपूर्ण प्रभाव होता है, किन्तु वह कम्पनी उस प्रभाव रखने वाली कम्पनी की सहायक कम्पनी नहीं होती है।

महत्वपूर्ण प्रभाव का तार्त्पय है कि वह अन्य कम्पनी की कुल अंश पूँजी के कम से कम 20 प्रतिशत भाग पर नियन्त्रण रखती है अथवा वह अन्य कम्पनी किसी अनुबन्ध के अधीन उस कम्पनी के व्यावसायिक निर्णयों पर नियन्त्रण करती है।

(E) पूंजी बाजार के आधार पर कम्पनियों के प्रकार (On basis of Capital / Stock Market)

1. **सूचीबद्ध कम्पनियाँ (Listed Company)**– सार्वजनिक कम्पनियों की प्रतिभूतियाँ– अंश ऋणपत्र के स्वतन्त्र क्रय – विक्रय हेतु मान्यता प्राप्त बाजार – स्टॉक बाजार (BSE,NSE) है। ऐसी कोई कम्पनी जो अपनी प्रतिभूतियों को इस प्रकार के मान्यता प्राप्त पूँजी बाजार या स्टॉक एक्सचेन्ज में पंजीकृत या सूचिबद्ध (Listed) करवाने की कार्यवाही करती है तो सूचीबद्ध कम्पनी कहलाती है।

अर्थात् सूचीबद्ध कम्पनी की प्रतिभूतियॉ ही स्टॉक बाजार में स्वतंत्र रूप से क्रय – विक्रय की जा सकती है।

2. **असूचीबद्ध कम्पनियाँ (Unlisted company)** – ऐसी कम्पनियॉ जो स्टॉक बाजार में सूचीबद्ध नहीं है गैर सूचीबद्ध कम्पनियॉ कहलाती है। ऐसी कम्पनियों के अंश –ऋणपत्र स्टॉक एक्सचेन्ज पर क्रय –विक्रय नहीं किये जा सकते है।

(F) अन्य कम्पनियॉ (Other companies)

1. **सरकारी कम्पनी (Government Company)** [2(45)] – ऐसी कोई भी कम्पनी जिसकी चुकता अंश–पूँजी का कम से कम 51% हिस्सा केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकारों या मिश्रित रूप से धारण किया हुआ हो तो उसे सरकारी कम्पनी कहते है।
2. **विदेशी कम्पनी (Foreigin company)** [2(45)] – ऐसी कम्पनी जिसका समामेलन या पंजीकरण भारत से बाहर किसी अन्य राष्ट्र में हुआ हो किन्तु भारत में अपना व्यापार स्थापित या किसी रूप में संचालित करती हो उसे विदेशी कम्पनी कहते है।
3. **फेरा कम्पनी (FERA company)**– ऐसी कम्पनियॉ जो विदेशी मुद्रा विनिमयन अधिनियम 1973 के अन्तर्गत् भारत में कार्यरत् है, फेरा कम्पनी कहलाती है।
4. **निष्क्रिय/प्रसुप्त कम्पनी (Defunct/ Dormant company)** –ऐसी कम्पनी जिसमें विगत दो वर्षों में कोई व्यापारिक क्रिया का संचालन नहीं हुआ हो अर्थात् कम्पनी ने गत दो वर्षों के कोई वित्तीय विवरण पत्र प्रस्तुत नहीं किये हो वह निष्क्रिय कम्पनी कहलाती है।

कभी– कभी ऐसी कम्पनी भी पंजीकृत हो जाती है जो भविष्य की परियोजना से सम्बन्ध रखती है, या जो भावी परियरोजना के लिए या किसी सम्पत्ति या बौद्धिक सम्पदा – पेटेन्ट की प्राप्ति हेतु इस कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत् पंजीकृत होती है और कोई व्यावसायिक क्रिया नहीं होती है तो उसे निष्क्रिय कम्पनी कहते है

कम्पनी एवं साझेदारी में अन्तर (Distinction between Company and Partership)

क्र. स.	अन्तर का आधार	साझेदारी	कम्पनी
1.	अधिनियम	साझेदारी अधि.1932 लागू होता है।	कम्पनी अधि. 2013 लागू होता है।
2.	पंजीकरण	पंजीयन अनिवार्य नहीं है किन्तु निर्धारित सदस्य संख्या से अधिक होने पर पंजीयन अनिवार्य होता है।	कम्पनी अधि. के अन्तर्गत पंजीयन अर्थात् समामेलन अनिवार्य है।
3.	न्यूनतम सदस्य संख्या	फर्म में न्यूनतम 2 साझेदार होते है।	OPC को छोड़कर निजी कम्पनी में 2 एवं सार्वजनिक कम्पनी में न्यूनतम 7 सदस्य होते है।
4.	अधिकतम संख्या	निर्धारित अधिकतम सीमा 50 है लेकिन केन्द्र सरकार की अनुमति से अधिकतम 100 हो सकती है।	निजी कम्पनी में अधिकतम 200 सदस्य हो सकते है लेकिन लोक कम्पनी में अधिकतम की कोई सीमा नहीं है।
5.	दायित्व	साझेदारों का दायित्व असीमित होता है।	इसमें सदस्यों (अंशधारियों) का दायित्व धारित अंशों की मूल्य सीमा या दी गई गारण्टी की राशि तक सीमित होता है।
6.	अस्तित्व का आधार व संचालन	साझेदारी एक समझौता है एवं इसके अभाव में साझेदारी अधि. की व्यवस्थाए संचालन हेतु आवश्यक है।	मूल आधार पार्षद सीमानियम एवं संचालन के लिए पार्षद अर्न्तनियम तथा क.अधि. की व्यवस्थाएं प्रभावी रूप से लागू रहती है।
7.	प्रबन्ध संचालन	सभी साझेदारों द्वारा या सहमती से कुछ द्वारा व्यापार का प्रबन्ध व संचालन किया जाता है।	अंशधारियों द्वारा नियुक्त निदेशकों के संचालक मण्डल द्वारा (अप्रत्यक्ष) प्रबन्ध किया जाता है।
8.	हित या अंश हस्तान्तरण	अन्य सभी साझियों की अनुमति से ही कोई साझेदार अपना हित किसी अन्य को हस्तान्तरित कर सकता है अन्यथा नहीं कर सकता ।	कम्पनी के सदस्य (अंशधारी) स्वतन्त्रापूर्वक अपना हित अर्थात् अंश अन्य को हस्तान्तरित कर सकता है ,अनुमति आवश्यक नहीं है।
9.	मृत्यु,दिवाला या पागलपन का प्रभाव	किसी भी साझेदार की मृत्यु या पागल या दिवालिया होने पर साझेदारी का विघटन हो जाता है।	कम्पनी व्यापार में सदस्य (अंशधारी) की मृत्यु या दिवाला या पागल होने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता ,कम्पनी चलती रहती है।

10.	पृथक अस्तित्व	साझेदारी फर्म का साझेदारों से पृथक अस्तित्व नहीं होता है साझेदारों में आंशिक परिवर्तन मात्र से साझेदारी का विघटन हो जाता है।	कम्पनी का अपने सदस्यों से पृथक एवं शाश्वत वैद्यानिक अस्तित्व होता है। सदस्यों की स्थिति परिवर्तन का कम्पनी पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं होता है।

सार्वजनिक कम्पनी तथा निजी कम्पनी में अन्तर
(Distinction between Private and Public Company)

क्र. स.	अन्तर का आधार	सार्वजनिक कम्पनी	निजी कम्पनी
1.	न्यूनतम सदस्य	इसमें कम से कम 7 सदस्य होने चाहिए।	इसमें कम से कम 2 सदस्य होने चाहिए।
2.	अधिकतम संख्या	इसमें अधिकतम संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।	इसमें 200 सदस्य से अधिक नहीं हो सकते है।
3.	अंश पूँजी हेतु जन–आमन्त्रण	इसमें प्रविवरण जारी कर पूँजी प्राप्ति हेतु आम जनता को आमन्त्रित किया जा सकता है।	पूँजी प्राप्ति हेतु आम–जनता को आमन्त्रित नहीं कर सकती है । केवल सदस्यों द्वारा ही एकत्र की जा सकती है।
4.	संचालकों की संख्या	न्यूनतम 3 संचालक आवश्यक है।	न्यूनतम 2 संचालक आवश्यक है।
5.	स्वतन्त्र संचालक	कुल संचालकों का 1/3 स्वतन्त्र संचालक होना चाहिए।	इसमें ऐसा करना अनिवार्य नहीं हैं।
6.	प्रबन्धकीय पारिश्रमिक	कम्पनी अपने शुद्व लाभ के 11% तक ही संचालकों का पारिश्रमिक दे सकती है।	इसमें ऐसी कोई सीमा नहीं है 11% से अधिक भी दे सकती है।
7.	पार्षद अन्तर्नियम की अनिवार्यता	इसके लिए अन्तर्नियम निर्माण ऐच्छिक है अधिनियम में उपलब्ध मॉडल अन्तर्नियम का उपयोग कर सकती है।	इसे अपना पार्षद अन्तर्नियम अनिवार्यतः बनाना पड़ता है। अधिनियम में उपलब्ध मॉडल का प्रयोग नहीं कर सकती है।
8.	अंश हस्तान्तरण	इसके अंशधारी अपनें अंशों का स्वतन्त्रतापूर्वक हस्तान्तरण कर सकते है।	इसमें अंशधारी या सदस्य अन्तर्नियमों में निहीत प्रतिबन्धों के अधीन अंश हस्तान्तरण कर सकते है।
9.	वार्षिक रिर्पोट	वार्षिक सभा की रिर्पोट अनिवार्यत रजिस्ट्रार के समक्ष प्रस्तुत करनी पड़ती है।	वार्षिक प्रतिवेदन की यह अनिवार्यता इस पर लागू नहीं होती है।

कम्पनी निर्माण के प्रलेख
(Documents of Company Formation)

पार्षद सीमानियम (Memorandum of Association)

पार्षद सीमानियम कम्पनी का अधिकार पत्र होता है। यह एक महत्त्वपूर्ण प्रलेख है जो कम्पनी की शक्तियों और उसके कार्यक्षेत्र को निर्धारित करता है जिसके आधार पर कम्पनी अपना कार्य करती है। कोई भी कम्पनी ऐसा कार्य नहीं कर सकती है जो सीमानियम में दिये गये अधिकारों से बाहर हो। यदि ऐसा किया जाता है तो वह कार्य या व्यवसाय व्यर्थ होता है।

अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition)

पार्षद सीमानियम कम्पनी के संविधान और उसकी शक्तियों की सीमाओं को परिभाषित करता है। इसमें कम्पनी से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण सूचनाओं का उल्लेख होता है। यह एक ऐसा प्रलेख है जो कम्पनी का नाम, स्थान, उद्देश्य, पूँजी एवं सदस्यों के दायित्व की सीमा इत्यादि की जानकारी प्रदान करता है। यह कम्पनी तथा उससे सम्बन्ध रखने वाले बाहरी व्यक्तियों के बीच एक अनुबन्ध की तरह होता है। सीमानियम एक सार्वजनिक प्रलेख है अतः बाहरी व्यक्तियों से यह अपेक्षा की जाती है कि उन्हें इस प्रलेख के बारे में पूर्ण जानकारी है।

पार्षद सीमानियम की कुछ महत्त्वपूर्ण परिभाषाएँ इस प्रकार :

1. **कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 2 (56) के अनुसार,** ''सीमानियम से आशय कम्पनी के ऐसे पार्षद सीमानियम से है जो पिछले किसी कम्पनी विधान अथवा इस अधिनियम के अन्तर्गत मूल रूप से बनाया गया अथवा समय–समय पर परिवर्तित किया गया है।''

   अधिनियम में दी गई यह परिभाषा स्पष्ट नहीं है । यह सीमानियम की विशेषताओं को प्रकट नही करती है। पार्षद सीमानियम की प्रकृति एवं स्वरूप को सही अर्थों में समझने के लिए निम्नलिखित परिभाषाओं का अध्ययन करना आवश्यक है:

2. **लार्ड सेलबोर्न (Lord Selborne)** के अनुसार, ''पार्षद सीमानियम कम्पनियों का महत्त्वपूर्ण एवं अपरिवर्तनीय (कुछ परिस्थितियों को छोड़कर) अधिकार पत्र है। कम्पनियों का समामेलन केवल उन्हीं उद्देश्यों के लिए होता है, जो पार्षद सीमानियम में दिये रहते हैं।''

3. **न्यायाधीश बोवेन (Justice Bowen)** के अनुसार, ''सीमानियम में वे आधारभूत शर्तें होती हैं जिनके आधार पर कम्पनी के समामेलन की आज्ञा प्रदान की जाती है। ये शर्तें ऋणदाताओं, बाह्य जनता तथा अंशधारियों के हितों के लिए सम्मिलित की जाती हैं।''

4. **न्यायाधीश चार्ल्सवर्थ (Justice Charlesworth)** के अनुसार, '' पार्षद सीमानियम कम्पनी का अधिकार पत्र है जो उसकी शक्तियों की सीमाओं को परिभाषित करता है।''

इस प्रकार स्पष्ट है कि पार्षद सीमानियम कम्पनी का आधारभूत प्रलेख है जो कम्पनी के अधिकार एवं कार्यक्षेत्र की जानकारी प्रदान करता है। कम्पनी का समामेलन केवल उन्हीं उद्देश्यों के लिए होता है जो पार्षद सीमानियम में दिये जाते हैं। पार्षद सीमानियम का पंजीयन हो जाने के बाद यह सार्वजनिक प्रलेख बन जाता है।

पार्षद सीमानियम की विशेषताएँ
(Characteristics of Memorandum of Association)

पार्षद सीमानियम की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

1. यह कम्पनी का आधारभूत प्रलेख है।
2. यह कम्पनी के अधिकार की सीमाओं को परिभाषित करता है।
3. यह एक सार्वजनिक प्रलेख है जो बाहरी व्यक्तियों से यह अपेक्षा रखता है कि उन्हें इस प्रलेख की विस्तृत जानकारी है।
4. इसको बनाना प्रत्येक कम्पनी के लिए अनिवार्य है ।
5. इसमें कम्पनी के समामेलन के उद्देश्यों का उल्लेख होता है।
6. यह प्रत्येक कम्पनी द्वारा मौलिक रूप से तैयार किया जाता है।
7. यह कम्पनी के साथ व्यवहार करने वाले सभी व्यक्तियों को अधिकृत कार्य क्षेत्र से अवगत करवाता है।
8. सीमानियम तृतीय पक्षकारों तथा कम्पनी के मध्य अनुबन्ध का निर्माण करता है।
9. सीमानियम में परिवर्तन एवं पुनः परिवर्तन किया जा सकता है।
10. सीमानियम कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत बनाया जाता है। इसमें कोई भी प्रावधान ऐसा नहीं होना चाहिए जो कम्पनी अधिनियम का उल्लंघन करे।

पार्षद सीमानियम का प्रारूप
(Form of Memorandum of Association)

कम्पनी अधिनियम 2013 की धारा 4 (6) के अनुसार पार्षद सीमानियम के प्रारूप कम्पनी अधिनियम की अनुसूची–I में दिये गये हैं। प्रत्येक कम्पनी को अपने ऊपर लागू होने वाले प्रारूप के अनुसार ही सीमानियम तैयार करना चाहिए। विभिन्न प्रारूप निम्नानुसार हैं :

(i) अशो द्वारा सीमित कम्पनी की दशा में – तालिका A

(ii) गारन्टी द्वारा सीमित कम्पनी जिसमें अंशपूँजी नहीं हो – तालिका B

(iii) गारन्टी द्वारा सीमित कम्पनी जिसमें अंशपूँजी हो – तालिका C

(iv) असीमित दायित्व कम्पनी जिसमें अंशपूँजी नही हो – तालिका D

(v) असीमित दायित्व कम्पनी जिसमें अंशपूँजी हो – तालिका E

पार्षद सीमानियम का महत्त्व
(Importance of Memorandum of Association)

निम्नलिखित बिन्दुओं की सहायता से पार्षद सीमानियम के महत्त्व को स्पष्ट किया जा सकता है :

1. **आधारभूत प्रलेख (Fundamental document)** – पार्षद सीमानियम कम्पनी का आधारभूत प्रलेख होता है जो कम्पनी के उद्देश्यों को परिभाषित करता है। इस प्रलेख को बनाये बिना कम्पनी समामेलित नहीं हो सकती है। यह वह आधारशिला है जिस पर कम्पनी का अस्तित्व निर्भर करता है।

2. **कार्यक्षेत्र का निर्धारक (Determines company's scope)** –पार्षद सीमानियम कम्पनी के कार्य क्षेत्र को निर्धारित करता है । कोई भी कम्पनी इसी निर्धारित कार्य क्षेत्र में अपना कार्य कर सकती है।

3. **कम्पनी के अधिकारों का निर्धारण (Determines company's rights)** –सीमानियम में कम्पनी के कार्यों एवं अधिकारों का विवरण होता है। कोई भी कम्पनी सीमानियम मे दिये गये अधिकारों के बाहर जाकर अनुबन्ध नहीं कर सकती है। यदि कोई कम्पनी ऐसा करती है तो यह कम्पनी की शक्तियों के बाहर का कार्य होने के कारण व्यर्थ होगा।

4. **कम्पनी का मार्ग–दर्शक (Guide to the company)** – पार्षद सीमानियम कम्पनी को सही दिशा प्रदान करता है। महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने में कम्पनी की सहायता करता है। ऐसे लाभप्रद कार्य जो कम्पनी के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक हैं, उन्हें करने के लिए यह कम्पनी को प्रोत्साहित करता है।

5. **विनियोजकों के हितों की सुरक्षा (Protects the interest of investors)** – पार्षद सीमानियम विनियोजकों के हितों को सुरक्षा प्रदान करता है। सीमानियम में वर्णित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ही कम्पनी अपना कार्य करती है । विनियोजक सीमानियम में वर्णित उद्देश्यों का मूल्यांकन कर अच्छी ख्याति वाली कम्पनियों में अपनी पूँजी लगाते हैं। इस प्रकार उनकी पूँजी सुरक्षित रहती है।

6. **ऋणदाताओं के हितों की सुरक्षा (Protects the interest of creditors)** – पार्षद सीमानियम कम्पनी को ऋण उपलब्ध करवाने वाले ऋणदाताओं के हितों की भी सुरक्षा करता है। ऋणदाता सीमानियम का अध्ययन करके कम्पनी में जोखिम का अनुमान लगाकर ऋण देने या नहीं देने का निर्णय लेते सकते हैं।

7. **अन्य पक्षकारों की सहायता (Helps other parties)** –पार्षद सीमानियम कम्पनी के साथ व्यवहार करने वाले अन्य पक्षकारों की भी सहायता करता है। अन्य पक्षकारों को कम्पनी के अधिकार एवं सीमाओं की जानकारी हो जाती है। अतः वे कम्पनी के साथ अनुबन्ध करते समय सावधानी रखते हैं।

8. **राष्ट्रीय हित पोषक (Serves the national interest)** –कम्पनी के पार्षद सीमानियम को राष्ट्रीय हित का पोषक भी माना जाता है। इसमें कम्पनी के उद्देश्यों का विवरण होता है। यदि कम्पनी के उद्देश्य राष्ट्रीय हित में नही हों तो ऐसी कम्पनी का समामेलन नही करवाया जा सकता है।

पार्षद सीमानियम की विषय –वस्तु
(Contents of Memorandum of Association)

अनुसूची–I की तालिका A के अनुसार अंशों द्वारा सीमित कम्पनी के पार्षद सीमानियम में निम्नलिखित बातों का वर्णन होना चाहिए :

I. कम्पनी का नाम अथवा नाम वाक्य
II. कम्पनी का पंजीकृत कार्यालय अथवा स्थान वाक्य
III. कम्पनी के उद्देश्य अथवा उद्देश्य वाक्य
IV. कम्पनी के सदस्यों का दायित्व अथवा दायित्व वाक्य
V. कम्पनी की पूँजी अथवा पूँजी वाक्य
VI. अभिदान हेतु घोषणा अथवा अभिदाता वाक्य
VII. नामांकन वाक्य–केवल एक व्यक्ति वाली कम्पनी की दशा में

I. कम्पनी का नाम अथवा नाम वाक्य
(Name of the Company or Name Clause)

कम्पनी का यह महत्त्वपूर्ण प्रथम वाक्य है क्योंकि इससे कम्पनी की पहचान होती है। इस वाक्य में अंकित नाम से ही

कम्पनी को समामेलन का प्रमाण पत्र जारी किया जाता है। प्रत्येक सार्वजनिक कम्पनी को अपने नाम के साथ 'लिमिटेड' तथा निजी कम्पनी को अपने नाम के साथ 'प्राईवेट लिमिटेड' शब्द अवश्य जोड़ना चाहिए। [धारा 4(1)] धर्मार्थ कम्पनियों को इन शब्दों को जोड़ने एवं लिखने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। (धारा 4 एवं 8)

कम्पनी के नाम का चुनाव करते समय निम्नलिखित वैधानिक प्रावधानों को ध्यान में रखना चाहिए । [धारा 4(2) एवं 4 (3)]

1. कम्पनी का नाम किसी विद्यमान कम्पनी के नाम के समान या उससे मिलता जुलता नहीं होना चाहिए।
2. कम्पनी को ऐसा नाम नहीं रखना चाहिए जिसका उपयोग करना देश के किसी कानून के अधीन अपराध मान लिया जावे।
3. कम्पनी का नाम केन्द्रीय सरकार की राय में अवांछनीय नहीं हो।
4. कम्पनी के नाम में कोई ऐसा शब्द नहीं होना चाहिए जिससे यह प्रतीत होता हो कि उस कम्पनी को सरकार का संरक्षण प्राप्त है।
5. प्रतिबन्धित शब्द वाले नाम का प्रयोग करने से पूर्व केन्द्रीय सरकार की अनुमति प्राप्त करनी चाहिए।

नाम का रजिस्ट्रार से आरक्षण : कम्पनी अपना जो नाम रखना चाहती है उसे आरक्षित करवाने के लिए आवेदन पत्र निर्धारित शुल्क के साथ रजिस्ट्रार को प्रस्तुत करना चाहिए।[धारा 4 (4)] कम्पनी का आवेदन प्राप्त करने के बाद रजिस्ट्रार प्रस्तुत सूचनाओं एवं प्रलेखों के आधार पर कम्पनी के लिए उस नाम को आरक्षित कर देता है। यह आरक्षण 60 दिनों तक बना रहता है। [धारा 4 (5)]

गलत सूचनाओं के आधार पर नाम का आरक्षण एवं उसके परिणाम : यदि नाम का आरक्षण गलत सूचनाओं के आधार पर हो जाता है तो उसके निम्न परिणाम होते हैं –

1. यदि कम्पनी का समामेलन नही हुआ है तो कम्पनी के लिए नाम के आरक्षण को निरस्त किया जायेगा। आवेदनकर्ता पर₹ 1 लाख तक का अर्थदण्ड लगाया जा सकेगा।
2. यदि आरक्षित नाम से समामेलन हो गया है तो रजिस्ट्रार कम्पनी को सुनवाई का एक अवसर देने के बाद निम्न में से कोई भी कदम उठा सकता है :
   (i) कम्पनी को साधारण प्रस्ताव पारित कर नाम परिवर्तन का निर्देश देगा। यह परिवर्तन 3 माह के भीतर करना होगा।
   (ii) कम्पनियों के रजिस्टर में से कम्पनी का नाम हटाना।
   (iii) कम्पनी के समापन हेतु याचिका प्रस्तुत करना।

II. कम्पनी का पंजीकृत कार्यालय अथवा स्थान वाक्य

(Registered Office of Company or Domicile Clause)

पार्षद सीमानियम के इस वाक्य में उस राज्य का नाम लिखा जाता है जिस राज्य में कम्पनी का पंजीकृत कार्यालय स्थापित होगा। [धारा 4(1)(इ)] पंजीकृत कार्यालय को कम्पनी का वास्तविक व्यापारिक स्थान माना जाता है। यह न्यायालय की सीमा को निर्धारित करता है तथा इसके आधार पर यह जाना जाता है कि कम्पनी देशी है या विदेशी। पंजीकृत कार्यालय पर ही सदस्यों तथा जनता के अवलोकनार्थ सदस्यों का रजिस्टर तथा अन्य आवश्यक सार्वजनिक प्रलेख रखे जाते हैं।

पंजीकृत कार्यालय की सूचना : कम्पनी के पंजीयन के 15 दिनों में उसे अपना पंजीकृत कार्यालय निर्धारित कर लेना चाहिए जिससे सूचना एवं प्रलेख इस निर्धारित पते पर भेजे जा सकें। कम्पनी को अपने समामेलन के 30 दिनों के भीतर उचित प्रारूप में आवश्यक प्रलेख के साथ अपने पंजीकृत कार्यालय की सूचना रजिस्ट्रार को प्रस्तुत कर देनी चाहिए।

नाम का प्रकाशन : कम्पनी को अपना नाम एवं पंजीकृत कार्यालय का पता अपने प्रत्येक कारोबार के स्थान तथा शाखाओं पर लिखवाना होगा। यह पढ़े जा सकने योग्य अंग्रेजी भाषा या उस क्षेत्र की स्थानीय भाषा में पेन्ट से लिखेगी या टांगा या चिपकाया जायेगा तथा उसको उसी रूप में रखा जावेगा। कम्पनी का नाम कम्पनी की सार्वमुद्रा (यदि है तो) पर अंकित होगा। सभी हुण्डियों व्यापारिक पत्रों, बिलों, विनिमय–पत्रों व अन्य दस्तावेजों पर भी कम्पनी का नाम, पंजीकृत कार्यालय का पता, निगमीय पहचान संख्या, टेलीफोन नम्बर, फैक्स नम्बर, ई मेल एवं वेबसाइट इत्यादि का उल्लेख करना होगा।

एक व्यक्ति कम्पनी की दशा में : जिस स्थान पर भी कम्पनी के नाम को लिखा, पेण्ट किया या मुद्रित किया जाएगा, वहाँ कम्पनी के नाम के साथ मे ''एक व्यक्ति कम्पनी'' (OPC) शब्द लिखा जावेगा।

दण्ड : यदि कोई कम्पनी नाम एवं पंजीकृत कार्यालय के पते के प्रकाशन से सम्बन्धित प्रावधानों का पालन नहीं करती है तो ऐसी कम्पनी तथा प्रत्येक दोषी अधिकारी पर 1000 प्रतिदिन के हिसाब से त्रुटि जारी रहने तक अर्थदण्ड लगाया जा सकता है। ऐसे दण्ड की अधिकतम राशि 1 लाख तक हो सकती है।

III. कम्पनी के उद्देश्य अथवा उद्देश्य वाक्य (Objects of company or Object Clause)

यह कम्पनी का बहुत महत्त्वपूर्ण वाक्य होता है। कम्पनी अधिनियम 2013 की धारा 4 (1) (C) के अनुसार कम्पनी के पार्षद सीमानियम के उद्देश्य वाक्य में उन उद्देश्यों का वर्णन किया जाता है जिनके लिए कम्पनी का निर्माण किया जा रहा है। उद्देश्य वाक्य में कम्पनी के उद्देश्यों को इस प्रकार लिखा जाता है :

(i) कम्पनी के वे सभी उद्देश्य जिनके लिए कम्पनी का समामेलन किया जा रहा है।

(ii) अन्य कोई उद्देश्य जो इन उद्देश्यों के प्रोत्साहन के लिए आवश्यक माने गये हैं।

उद्देश्य वाक्य अति–महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि इससे कम्पनी के साथ लेनदेन करने वाले व्यक्तियों को कम्पनी की कार्य करने की शक्तियों की सीमाओं का पता लग जाता है। उद्देश्य वाक्य से बाहर जाकर किये गये कार्य अधिकारों के बाहर माने जाते हैं तथा व्यर्थ होते हैं।

उद्देश्य वाक्य को तैयार करते समय ध्यान रखने योग्य बातें :

1. कम्पनी के उद्देश्य अवैध एवं कानून के विरूद्ध नहीं होने चाहिए।
2. ऐसे उद्देश्य नहीं होने चाहिए जिसे कम्पनी अधिनियम ने निषिद्ध ठहराया है।
3. उद्देश्य लोकनीति तथा सार्वजनिक हित के पोषक होने चाहिए।
4. उद्देश्य स्पष्ट होने चाहिए।
5. उद्देश्य वाक्य पूर्ण तथा विस्तृत होना चाहिए।
6. उद्देश्य वाक्य में शब्दों का चुनाव सावधानी से करना चाहिए जिससे उद्देश्यों को उनके सही अर्थों में समझा जा सके।
7. उद्देश्य वाक्य में औचित्यता को बनाये रखना चाहिए।
8. उद्देश्य वाक्य में कठोरता, संदिग्धता एवं अस्पष्टता नहीं होनी चाहिए।

IV. सदस्यों का दायित्व अथवा दायित्व वाक्य

(Liability of Members of Liability Clause)

[धारा 4(1)(क)] इस वाक्य में कम्पनी के सदस्यों के दायित्व का उल्लेख किया गया है, चाहे वह सीमित हो या असीमित।

अंशों द्वारा सीमित कम्पनी के पार्षद सीमानियम के दायित्व वाक्य में इस बात का उल्लेख होता है कि सदस्यों का दायित्व उनके द्वारा लिये गये अंशों पर बकाया राशि तक सीमित होगा।

गारन्टी द्वारा सीमित कम्पनी के पार्षद सीमानियम के दायित्व वाक्य में यह लिखा जाता है कि कम्पनी के सदस्यों का दायित्व कम्पनी के समापन पर उनके द्वारा दी गई गारन्टी राशि तक सीमित होगा।

पूँजी वाली गारन्टी द्वारा सीमित कम्पनी के पार्षद सीमानियम में सदस्यों द्वारा गारन्टी की राशि चुकाने की प्रतिज्ञा के साथ ही उनके द्वारा धारित अंशो पर अदत्त राशि के दायित्व का भी उल्लेख होता है।

असीमित कम्पनी के पार्षद सीमानियम में यह उल्लेख किया जाता है कि कम्पनी के सदस्यों का दायित्व असीमित होगा।

V. कम्पनी की पूँजी अथवा पूँजी वाक्य (Capital of Company or Capital Clause)

इस वाक्य में उस पूँजी का वर्णन होता है, जिसके द्वारा कम्पनी का पंजीयन होता है। इस वाक्य में पूँजी को एक निश्चित राशि के अंशों में बाँटकर भी लिखा जाता है। [धारा 4(1)(e)]

यदि कम्पनी की पूँजी समता और पूर्वाधिकार अंशों में विभक्त है तो पूँजी को इन दोनों भागों में विभक्त कर लिखना चाहिए। एक कम्पनी अपनी अधिकृत पूँजी से ज्यादा पूँजी का निगर्मन नहीं कर सकती है। जिस कम्पनी में अंश पूँजी नहीं होती है उस कम्पनी के पार्षद सीमानियम में पूँजी वाक्य नहीं होता है।

VI. अभिदान हेतु घोषणा अथवा अभिदाता वाक्य

(Declaration for Subscription or Subscribers' Clause)

पार्षद सीमानियम के इस वाक्य में कम्पनी के अभिदाताओं का विवरण होता है । इसमें कम्पनी के अभिदाताओं द्वारा इस बात की घोषणा की जाती है कि ''हम जिनका नाम और पता निम्नलिखित है, कम्पनी के सीमानियम के अनुसार कम्पनी का निर्माण करने के इच्छुक है और हमारे नाम के आगे लिखे गये अंशों को लेने के लिए सहमत है।'' इसके पश्चात् उनका नाम, पता, व्यवसाय तथा उनके द्वारा लिये गये अंशो की संख्या को लिखा जाता है।

प्रत्येक सार्वजनिक कम्पनी के पार्षद सीमानियम पर कम से कम 7, निजी कम्पनी के सीमानियम पर कम से कम 2 तथा यदि कोई निजी कम्पनी एक व्यक्ति कम्पनी के रूप में पंजीकृत करवायी जाती है तो उसके सीमानियम पर केवल 1 ही अभिदाता के हस्ताक्षर होते है [धारा 3(1)] प्रत्येक अभिदाता के हस्ताक्षर को किसी साक्षी से प्रमाणित करवाना होता है। यदि अभिदाता अशिक्षित

हो तो उनके द्वारा अगूंठे का निशान लगाया जाता है। यदि अभिदाता निगम निकाय या सीमित साझेदारी हो तो अधिकृत व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षर किये जायेंगे।

VII. नामांकन वाक्य

(Nomination Clause)

एक व्यक्ति वाली कम्पनी की दशा में पार्षद सीमानियम में उस व्यक्ति का नाम लिखा जाता है जो अभिदाता की मृत्यु अथवा उसके अनुबन्ध करने के अयोग्य होने की दशा में कम्पनी का सदस्य बन जायेगा। यह नाम उस व्यक्ति की लिखित सहमति प्राप्त होने पर ही लिखा जाता है। यह सहमति कम्पनी के गठन के समय पार्षद सीमानियम व अन्तर्नियम के साथ रजिस्ट्रार को भेजी जायेगी।

पार्षद सीमानियम में परिवर्तन (Alteration of Memorandum of Association)

एक कम्पनी विशेष प्रस्ताव पारित करके एवं कम्पनी अधिनियम के अधीन निर्धारित प्रक्रिया का पालन करते हुए अपने सीमानियम के प्रावधानों में परिवर्तन कर सकती है।

अतः एक कम्पनी, कम्पनी अधिनियम के नियन्त्रण एवं नियमन के अधीन ही अपने नाम, पंजीकृत कार्यालय, उद्देश्य, अंशपूँजी या दायित्व वाक्य में परिवर्तन कर सकती है।

अधिकारों के बाहर का सिद्धान्त (Doctrine of Ultra Vires)

कम्पनी के सीमानियम के उद्देश्य वाक्य में उन उद्देश्यों का उल्लेख होता है जिनकी पूर्ति के लिए कम्पनी का निर्माण किया जा रहा है। उद्देश्य वाक्य कम्पनी के कार्यों और अधिकार की सीमाओं को निश्चित करता है। कोई भी कम्पनी अपने पार्षद सीमानियम के कार्य क्षेत्र के बाहर जाकर कार्य नहीं कर सकती है। यदि कोई कम्पनी सीमानियम द्वारा प्रदत्त अधिकार सीमा के बाहर जाकर कोई कार्य करती हे तो वह कार्य व्यर्थ होता है। उसे न तो वैध बनाया जा सकता है और न ही उसकी पुष्टि संभव है। कम्पनी के सभी सदस्य अपनी सहमति प्रदान कर दें तब भी इसे कम्पनी वैध नहीं बना सकती ।

अतः जब कोई कम्पनी पार्षद सीमानियम द्वारा प्रदत्त अधिकार सीमा के बाहर जाकर कोई कार्य करती है तो वह कार्य 'अधिकारो के बाहर' का कार्य कहलाता है। **एशबरी रेलवे केरीज एण्ड आयरन कम्पनी लि. बनाम रिके के** मामले के अनुसार कम्पनी के उद्देश्य वाक्य में लिखा था कि कम्पनी का उद्देश्य रेल के डिब्बे बनाना, रेल की मशीनें बनाना, बेचना तथा किराये पर देना, मैकेनिकल इन्जीनियर्स तथा जनरल कान्ट्रेक्टर्स का कार्य करना है। इस कम्पनी ने रिके नामक रेलवे ठेकेदार से बेल्यिजम मे रेल की पटरी बिछाने के लिए धनराशि देने का अनुबन्ध कर लिया। बाद में कम्पनी ने अनुबन्ध के अन्तर्गत धनराशि देने से मना कर दिया और कहा कि यह उसके अधिकारों के बाहर का कार्य है। रिके ने कम्पनी पर क्षतिपूर्ति हेतु वाद प्रस्तुत किया। रिके ने तर्क दिया कि कम्पनी के उद्देश्य वाक्य में लिखे ''जनरल – कॉन्ट्रेक्टर्स'' शब्द से प्रतीत होता कि कम्पनी इस कार्य को करने के लिए अधिकृत थी। लेकिन न्यायालय ने जनरल कॉन्ट्रेक्टर्स शब्द का तात्पर्य उन अनुबन्धों के लिए ही माना जो मैकेनिकल इन्जीनियरिंग से ही सम्बन्धित था। न्यायालय ने इस अनुबन्ध को पार्षद सीमानियम में निर्दिष्ट उद्देश्यों से बाहर माना।

लार्ड केयर्न्स ने निर्णय में लिखा कि ''अधिकारों के बाहर किया गया अनुबन्ध व्यर्थ होता है और उसका अंशधारियों की सर्वसम्मति से भी पुष्टिकरण नहीं किया जा सकता है।''

भारत वर्ष में अधिकारों के बाहर के सिद्धान्त को सर्वप्रथम सन् 1866 में बम्बई के उच्च न्यायालय ने जहाँगीर आर, मोदी बनाम शामजी लढ्ढा के विवाद में लागू किया था।

अधिकारों के बाहर के कार्यों का प्रभाव (Effect of Ultra Vires Transaction)

1. **कार्य व्यर्थ होना** – अधिकारों के बाहर किये गये कार्य प्रारम्भ से ही व्यर्थ होते हैं। उसका कोई वैध प्रभाव नहीं होता है। कम्पनी इन कार्यों से बाध्य नहीं होती है।
2. **संचालकों का व्यक्तिगत दायित्व** – संचालकों को कम्पनी की पूँजी का उपयोग अधिकृत कार्यों के लिए ही करना चाहिए। यदि वह पूँजी अनाधिकृत कार्य में उपयोग ली जाए तो वे उसके लिए व्यक्तिगत रूप से दायी होते है। पूँजी का दुरूपयोग करने पर कम्पनी का कोई भी सदस्य उन पर वाद प्रस्तुत कर सकता है।
3. **न्यायालय से निषेधाज्ञा** – यदि कम्पनी अधिकारों के बाहर जाकर कोई कार्य करती है तो सदस्य न्यायालय से निषेधाज्ञा जारी करवा सकता है।
4. **पुष्टि संभव नहीं** – यदि कोई कम्पनी अधिकार क्षेत्र से बाहर कार्य करती है तो वह कार्य व्यर्थ एवं शून्य होता है। अनाधिकृत कार्यों की अंशधारियों द्वारा पुष्टि नहीं की जा सकती है।
5. **वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता** – सीमानियम के बाहर किये गये कार्य अनाधिकृत एवं व्यर्थ होते हैं। अनाधिकृत कार्यों के लिए न तो कम्पनी पर वाद चलाया जा सकता है और न ही कम्पनी किसी बाह्य पक्षकार पर वाद कर सकती है।

6. **अनधिकृत कार्यों के लिए दिए गये धन को वसूला नहीं जा सकता** – यदि किसी व्यक्ति, बैंक या संस्था ने कम्पनी को अनधिकृत कार्यों के लिए धन उधार दिया है तो वह उस धन को वसूल नहीं कर सकता है। परन्तु कम्पनी अपनी इच्छा से भुगतान करना चाहे तो कर सकती है।

7. **अधिकारों तथा शक्तियों के बाहर प्राप्त की गई सम्पत्ति** – यदि कम्पनी की धनराशि से अधिकारों तथा शक्तियों के बाहर कोई सम्पत्ति क्रय की गई है तो वह कम्पनी के अधिकार में रहती है। कम्पनी उसे रख सकती है।

पार्षद अन्तर्नियम
(Articles of Association)

अन्तर्नियम कम्पनी का ऐसा प्रलेख है जिसमें कम्पनी के आन्तरिक नियम होते हैं। कम्पनी के आन्तरिक कार्यों का प्रबन्ध और संचालन इन्हीं नियमों के आधार पर किया जाता है।

अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions)

1. **भारतीय कम्पनी अधिनियम 2013 की धारा 2(5)** के अनुसार – ''अन्तर्नियम से आशय किसी कम्पनी के ऐसे अन्तर्नियमों से है जो किसी पिछले कम्पनी अधिनियम या वर्तमान कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत मूलरूप से बनाया गया है या समय–समय पर परिवर्तित किया गया है।''

2. **न्यायाधीश चार्ल्सवर्थ (Justice Charlesworth)** के अनुसार, ''पार्षद अन्तर्नियम एक ऐसा प्रलेख है जो कम्पनी के सदस्यों के आपसी अधिकारों तथा उन रीतियों का नियमन करता है जिसके अनुसार कम्पनी का व्यापार चलाया जायेगा।''

3. **भारत के उच्चतम न्यायालय (Supreme Court of India)** के अनुसार, ''अन्तर्नियम कम्पनी के आन्तरिक प्रबन्ध का नियमन करते है तथा इसके अधिकारियों के अधिकारों को परिभाषित करते है।'' (नरेश चन्द सान्याल बनाम कलकत्ता स्टॉक एक्सचेंज लि. (1971) के मामले पर आधारित)

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि पार्षद अन्तर्नियम कम्पनी का एक ऐसा प्रलेख है जो उस रीति और प्रारूप को निर्धारित करता है जिसके अनुसार कम्पनी का व्यवसाय संचालित किया जायेगा। ये कम्पनी के आन्तरिक प्रबन्ध को विनियमित करते हैं तथा संचालक मण्डल की शक्तियों एवं सीमाओं को परिभाषित करते हैं। अन्तर्नियम सीमानियम के अधीन और उसके सहायक होते हैं। कम्पनी के कार्यों में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

पार्षद अन्तर्नियम की विशेषताएँ (Characteristics of Memorandum Articles)

पार्षद अन्तर्नियम की कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

1. कम्पनी का महत्त्वपूर्ण प्रलेख है जो आन्तरिक प्रबन्ध का नियमन करते हैं।
2. पार्षद अन्तर्नियम सार्वजनिक प्रलेख है।
3. इसमें कम्पनी के नियमों, उपनियमों एवं विनियमों इत्यादि का उल्लेख होता है।
4. यह मुद्रित तथा अनुच्छेदों में विभाजित होता है।
5. यह परिवर्तनीय प्रलेख है। इसमें कम्पनी अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार परिवर्तन किया जा सकता है।
6. यह उन रीतियों का नियमन करता है जिसके अनुसार कम्पनी का व्यापार चलाया जायेगा।
7. कम्पनी के अन्तर्नियम, सीमानियम के अधीन और उसके सहायक होते हैं।
8. अन्तर्नियम पूर्ववर्ती कम्पनी विधान अथवा इस अधिनियम के अधीन बनाये हुए हो सकते हैं।
9. अन्तर्नियम मूल रूप से बनाये गये अथवा समय – समय पर परिवर्तित किये हुए हो सकते हैं।
10. यह कम्पनी के संचालकों एवं अधिकारियों की शक्तियों एवं कर्त्तव्यों को स्पष्ट परिभाषित करते हैं।
11. निजी कम्पनियों के लिए मॉडल अन्तर्नियमों में कोई प्रारूप नहीं है। निजी कम्पनी के लिए अन्तर्नियम बनाना अनिवार्य है।

अन्तर्नियम का पंजीयन (Registration of Articles)

कम्पनी का पंजीकृत कार्यालय जिस रजिस्ट्रार के क्षेत्र में स्थापित होगा, उस रजिस्ट्रार के पास कम्पनी के पंजीयन के समय अन्तर्नियमों को फाइल करना होगा। निर्धारित प्रारूप में कम्पनी के प्रथम अभिदाताओं के द्वारा पार्षद सीमानियम एवं अन्तर्नियम पर हस्ताक्षर किये जायेंगे।

पार्षद अन्तर्नियम का प्रारूप (Form of Articles of Association)

कम्पनी अधिनियम 2013 की धारा 5 (6) तथा अनुसूची I में विभिन्न प्रकार की कम्पनियों के पार्षद अन्तर्नियमों के प्रारूप दिये गये है। इनमें कम्पनी अपने ऊपर लागू होने वाले अन्तर्नियमों को

अपना सकती है। विभिन्न प्रारूप इस प्रकार है :–

(i) तालिका F : अंशों द्वारा सीमित कम्पनियों के लिए।

(ii) तालिका G : गारन्टी द्वारा सीमित कम्पनियाँ जिनमें अंश पूँजी है।

(iii) तालिका H : गारन्टी द्वारा सीमित कम्पनियाँ जिनमें अंशपूँजी नहीं है।

(iv) तालिका I : अंश पूँजी वाली असीमित कम्पनियाँ जिनमें अंश पूँजी है।

(v) तालिका J : असीमित कम्पनियाँ जिनमें अंश पूँजी नहीं है।

पार्षद अन्तर्नियम की विषय–वस्तु
(Contents of Articles of Association)

पार्षद अन्तर्नियम में कम्पनियों के आन्तरिक प्रबन्ध और संचालन के सम्बन्ध में बनाई गई नीति, विनियम तथा उपनियमों का उल्लेख होता है। अन्तर्नियमों की प्रमुख विषय – वस्तु निम्नानुसार होती है :

1. कम्पनी का नाम एवं पंजीकृत कार्यालय का राज्य
2. प्रारम्भिक अनुबन्धों की स्वीकृति
3. अंशपूँजी, अंशों की संख्या और मूल्य
4. पूर्वाधिकार अंशों का निर्गमन
5. अंशों का आबंटन
6. अंशों पर ग्रहणाधिकार
7. अंशों पर याचना राशि की मांग
8. अंशों का हस्तान्तरण
9. अंशों का हस्तांकन
10. अंशों का नामांकन
11. अंशों का हरण
12. पूँजी में परिवर्तन
14. अंशों का पुनः क्रय
15. अंश प्रमाण पत्र
16. अभौतिकीकरण
17. मताधिकार
18. प्रतिपुरुष
19. लाभांश और संचय कोष
20. सामान्य सभा
21. संचालक मण्डल
22. संचालक मण्डल की सभा
23. संचालकों का पारिश्रमिक
24. सार्वमुद्रा (यदि हो तो)
25. प्रबन्ध संचालक, प्रबन्धक तथा कम्पनी सचिव
26. लेखांकन
27. अंकेक्षण समिति
28. समापन
29. क्षतिपूर्ति
30. लाभों का पूँजीकरण
31. अभिदाताओं के हस्ताक्षर
32. हस्ताक्षर की तिथि एवं स्थान

पार्षद अन्तर्नियम में परिवर्तन
(Alteration of Articles of Association)

एक कम्पनी अपने अन्तर्नियमों में परिवर्तन करने का अधिकार रखती है। कम्पनी विशेष प्रस्ताव पारित करके कम्पनी अधिनियम के प्रावधानों का पालन करते हुए सीमानियम की सीमाओं के भीतर इस प्रकार का परिवर्तन कर सकती है। कोई भी परिवर्तन कम्पनी अधिनियम या किसी अन्य कानून के प्रावधानों के विरूद्ध नहीं होना चाहिए। यदि अन्तर्नियमों में प्रावधान करके अन्तर्नियमों के परिवर्तन पर रोक लगाई जाती है तो ऐसा प्रावधान व्यर्थ होता है। किन्तु अन्तर्नियमों में परिवर्तन वैधानिक एवं कम्पनी के हित में होना चाहिए। परिवर्तन तभी प्रभावी माने जाते हैं जबकि रजिस्ट्रार से उनका पंजीयन करवा लिया हो।

पार्षद सीमानियम और अन्तर्नियम में अन्तर (Distinction between Memorandum and Articles of Association)

क्र. सं.	अन्तर का आधार	पार्षद सीमानियम	पार्षद अन्तर्नियम
01	परिभाषा	पार्षद सीमानियम कम्पनी का अधिकार पत्र है जिसमें कम्पनी के समामेलन की शर्तों का उल्लेख होता है।	अन्तर्नियम कम्पनी के आन्तरिक नियम होते है। इन नियमों के अनुसार कम्पनी के व्यवसाय का संचालन किया जाता है।
02	महत्त्व	यह कम्पनी का आधारभूत प्रलेख होता है।	यह कम्पनी का सहायक प्रलेख होता है।
03	विषय सामग्री	सीमानियम में कम्पनी का नाम, पता, उद्देश्य, पूँजी, दायित्व एवं अभिदाताओं के नाम, पते एवं हस्ताक्षर इत्यादि का उल्लेख होता है।	अन्तर्नियमों में कम्पनी के उद्देश्य पूर्ति हेतु आवश्यक नियमों एवं विनियमों का उल्लेख होता है।
04	उद्देश्य	यह कम्पनी की कार्यक्षेत्र की सीमाओं को निश्चित करता है।	यह कम्पनी के आन्तरिक प्रबन्ध एवं संचालन को नियन्त्रित करता है।
05	शासित होना	सीमानियम अन्तर्नियमों द्वारा शासित नहीं होता है।	जबकि अन्तर्नियम पार्षद सीमानियम द्वारा शासित होता है।
06	परिवर्तन	सीमानियम में परिवर्तन करना कठिन है।	अन्तर्नियमों में पार्षद सीमानियम की तुलना में सरलता से परिवर्तन किया जा सकता है।
07	प्रावधानों का पालन	सीमानियम का निर्माण कम्पनी अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप किया जाता है।	अन्तर्नियमों का निर्माण पार्षद सीमानियम एवं कम्पनी अधिनियम दोनों के प्रावधानों का पालन करते हुए किया जाता है।
08	सम्बन्धों की व्याख्या	सीमानियम कम्पनी व बाह्य पक्षों के बीच में सम्बन्धों को परिभाषित करता है।	अन्तर्नियम कम्पनी और सदस्यों के आपसी सम्बन्धों को परिभाषित करता है।
09	अधिकारों के बाहर कार्य	यदि कोई कम्पनी सीमानियम के बाहर कार्य करती है तो ऐसा कार्य व्यर्थ होता है तथा सभी सदस्य मिलकर भी उसकी पुष्टि नहीं कर सकते।	अन्तर्नियमों के बाहर किये गये संचालकों के कार्यों को अंशधारियों के द्वारा अनुमोदित करवाया जा सकता है।
10	स्पष्टीकरण	सीमानियम में अन्तर्नियमों का स्पष्टीकरण नहीं होता है।	जबकि अन्तर्नियमों में सीमानियम का स्पष्टीकरण होता है।

रचनात्मक सूचना का सिद्धान्त (Doctrine of Constructive Notice)

सीमानियम और अन्तर्नियम जब रजिस्ट्रार के यहाँ पंजीकृत हो जाते हैं तो वे सार्वजनिक प्रलेख बन जाते है। रचनात्मक सूचना के सिद्धान्त के अनुसार कम्पनी से व्यवहार करने वाले प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा की जाती है कि उसको सीमानियम और अन्तर्नियम के बारे में पर्याप्त जानकारी है तथा उन्होंने इनको पढ़ लिया है तथा वास्तविक अर्थ के अनुसार उन्हें समझ कर ही कम्पनी के साथ अनुबन्ध किया है चाहे उन्होंने इनको कभी देखा, पढ़ा, सुना तथा समझा ही न हो।

यदि कोई व्यक्ति कम्पनी के साथ अनुबन्ध करने के पश्चात् सीमानियम की जानकारी के अभाव में हानि उठाता है तो वह स्वयं इसके लिए उत्तरदायी होगा। इस सिद्धान्त से कम्पनियों को उनसे व्यवहार करने वाले बाह्य पक्षकारों से संरक्षण मिलता है।

आन्तरिक प्रबन्ध का सिद्धान्त (Doctrine of Indoor Management)

रचनात्मक सूचना का सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि कम्पनी के साथ व्यवहार करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को सीमानियम एवं अन्तर्नियम की जानकारी है। इस सिद्धान्त का एक अपवाद भी है जिसे आन्तरिक प्रबन्ध के सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है । यह सिद्धान्त कम्पनी के साथ अनुबन्ध करने वाले व्यक्तियों के हितों की सुरक्षा करता है। इसका प्रतिपादन सन् 1856 में रॉयल ब्रिटिश बैंक बनाम टरक्वांड के मामले में किया गया था।

इस सिद्धान्त के अनुसार कम्पनी के साथ व्यवहार करने वाले प्रत्येक बाह्य व्यक्ति से यह आशा तो की जा सकती है कि उसने सीमानियम एवं अन्तर्नियमों को पढ़ एवं समझ लिया है। किन्तु उसे इस बात की जाँच करने की आवश्यकता नहीं है कि कम्पनी की आन्तरिक क्रियायें किस प्रकार चल रही हैं। बाहरी व्यक्ति कम्पनी के आन्तरिक प्रबन्ध से सम्बन्ध नहीं रखते हैं। कम्पनी के साथ व्यवहार करने वाला बाह्य पक्षकार यह मानकर चलता है कि आन्तरिक प्रबन्ध की सभी क्रियाए नियमानुसार की जा रही हैं। यदि कम्पनी अपने अन्तर्नियमों में दी गई व्यवस्थाओं का पालन नहीं करती है तो बाह्य पक्षकारों के हितों पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है तथा कम्पनी के संचालक उत्तरदायी ठहराये जा सकते हैं। रॉयल ब्रिटिश बैंक बनाम टरक्वांड के मामले के अनुसार रॉयल ब्रिटिश बैंक के अन्तर्नियमों में यह व्यवस्था थी कि बैंक के संचालक सदस्यों की सामान्य सभा में विशेष प्रस्ताव पारित करके बॉण्ड निर्गमित कर सकते हैं। बैंक ने बिना प्रस्ताव पास किये ही टरक्वांड को एक बाण्ड निर्गमित कर दिया। कम्पनी के अशंधारियों ने कहा कि बॉण्ड जारी करने से पूर्व कोई प्रस्ताव पास नहीं किया गया । अतः कम्पनी इस ऋण को चुकाने के लिए उत्तरदायी नहीं है।

न्यायालय ने इस तर्क को नहीं माना तथा निर्णय दिया कि कम्पनी ऋण चुकाने के लिये बाध्य है क्योंकि टरक्वांड यह मानने के लिए अधिकृत था कि कम्पनी ने आवश्यक प्रस्ताव पास कर लिया होगा। न्यायाधीश ने कहा, बाह्य पक्षकार सिर्फ कम्पनी की बाहरी स्थिति को जानने के लिए बाध्य है, आंतरिक स्थिति को नहीं।

यदि बाह्य व्यक्ति को अनियमितता का पता हो अथवा वह लापरवाही करता है अथवा सीमानियम व अन्तर्नियमों की जानकारी नहीं रखता या इन प्रपत्रों की अनदेखी करता है तो आन्तरिक प्रबन्धक का सिद्धान्त उन पर लागू नहीं होता है।

सारांश

सीमित पूँजी के साथ अत्याधिक जोखिम के व्यापार हेतु अप्रत्यक्ष प्रबन्ध द्वारा लाभ कमाने के लिए किये जाने व्यापार के उपक्रम को ' कम्पनी' के रूप में संचालित किया जाता है। व्यापार का यह स्वरूप विश्व व्यापी स्वीकार किया गया है। सभी देशों ने इस प्रकार के व्यवसायिक संगठन को संचालित व नियन्त्रित करने के लिए कम्पनी कानून बना रखे है। भारत में भी इस हेतु वर्तमान में कम्पनी अधिनियम 2013 प्रभावी है।

कम्पनी की विभिन्न विशेषताओं के कारण इसका प्रचलन निरन्तर बढ़ रहा है फलस्वरूप इसके कई प्रकार /स्वरूप प्रकट हो रहे है।

संवैधानिक रूप से कृत्रिम व्यक्ति का स्वरूप होने के कारण उसके निर्माण, संचालन, नियमन व नियन्त्रण तथा समापन के लिए नियमावली व कानूनी प्रक्रिया का निर्माण कम्पनी कानून के अन्तर्गत किया गया है। अधिनियम के पालन की जिम्मेदारी संबन्धित अधिकारियों की होती है जिसका पालन नहीं करने पर सजा का प्रावधान भी इस अधिनियम में किया गया है। कम्पनी निर्माण एवं संचालन की आधारभूत संरचना उसके पार्षद सीमानियम व अन्तर्नियम से निर्धारित होती है।

पार्षद सीमानियम कम्पनी का अधिकार पत्र होता है। यह कम्पनी की शक्तियों और उसके कार्यक्षेत्र को निर्धारित करता है।

कम्पनी के पार्षद सीमानियम के विभिन्न प्रारूप अधिनियम की अनुसूची–I में दिये गये हैं। पार्षद सीमानियम कम्पनी का एक महत्त्वपूर्ण प्रलेख है। विनियोजकों व ऋणदाताओं की सुरक्षा तथा अन्य पक्षकारों की सहायता करता है। यह

राष्ट्रीय हित का पोषक है।

एक कम्पनी आवश्यक प्रस्ताव पारित करके कम्पनी अधिनियम के अधीन निर्धारित प्रक्रिया का पालन करते हुए अपने सीमानियम के प्रावधानों मे परिवर्तन कर सकती है।

यदि कोई कम्पनी पार्षद सीमानियम द्वारा प्रदत्त अधिकार सीमा के बाहर जाकर कोई कार्य करती है तो वह कार्य अधिकारों के बाहर का कार्य कहलाता है।

पार्षद अन्तर्नियम में कम्पनी के आन्तरिक नियमों का उल्लेख होता है। अधिनियम की अनुसूची–I में विभिन्न प्रकार के कम्पनियों के पार्षद अन्तर्नियमों के प्रारूप दिये गये हैं। कम्पनी के पार्षद अन्तर्नियमों में परिवर्तन किया जा सकता है। कम्पनी आवश्यक प्रस्ताव पारित करके कम्पनी अधिनियम के प्रावधानों का पालन करते हुए सीमानियम की सीमाओं के भीतर ही परिवर्तन कर सकती है।

रचनात्मक सूचना के सिद्धान्त के अनुसार यह माना जाता है कि कम्पनी के साथ व्यवहार करने वाले व्यक्तियों को सीमानियम और अन्तर्नियमों की पर्याप्त जानकारी है तथा इनको वास्तविक अर्थ के अनुसार समझकर ही उन्होंने कम्पनी के साथ अनुबन्ध किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार कम्पनियों को उनसे व्यवहार करने वाले बाह्य पक्षकारों से संरक्षण मिलता है। जबकि आन्तरिक प्रबन्ध का सिद्धान्त बाह्य पक्षकारों को कम्पनी के विरूद्ध सुरक्षा प्रदान करता है। उसे इस बात की जाँच करने की आवश्यकता नहीं है कि कम्पनी की आन्तरिक क्रियायें किस प्रकार चल रही है। वह यह मानकर चलता है कि कम्पनी अन्तर्नियमों की व्यवस्थाओं का पालन कर रही है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न :

1. वर्तमान भारतीय कम्पनी अधिनियम 2013 को राष्ट्रपति ने कब अपनी सहमती प्रदान की थी

   (अ) 20 अगस्त 2013 (ब) 29 अगस्त 2013

   (स) 1 सितम्बर 2013 (द) 29 सितम्बर 2013

2. शाही आज्ञापत्र द्वारा किस कम्पनी की स्थापना हुई थी?

   (अ) ईस्ट इण्डिया कम्पनी

   (ब) वेस्ट इण्डिया कम्पनी

   (स) नार्थ इण्डिया कम्पनी

   (द) साउथ इण्डिया कम्पनी

3. भारतीय कम्पनी अधिनियम 2013 में कुल कितनी धाराऐं हैं?

   (अ) 420 धाराएँ (ब) 370 धाराएँ

   (स) 470 धाराएँ (द) 520 धाराएँ

4. वर्तमान भारतीय कम्पनी अधिनियम 2013 के अनुसार निजी कम्पनी में अधिकतम सदस्य संख्या कितनी हो सकती है?

   (अ) 200 (ब) 100 (स) 50 (द) 150

5. भारतीय कम्पनी अधिनियम 2013 किस प्रकार थी नई संकल्पना को प्रभाव में लाया गया है?

   (अ) एक सदस्य कम्पनी (OPC)

   (ब) गारन्टी द्वारा सीमित कम्पनी

   (स) विदेशी कम्पनी

   (द) सूत्रधारी कम्पनी

6. स्रकारी कम्पनी की दशा में चुकता पूंजी का कम से कम कितना हिस्सा केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकारों या मिश्रित रूप से धाराण किया हुआ होना चाहिए–

   (अ) 50 % (ब) 51%

   (स) 75% (द) 49%

7. एक सार्वजनिक कम्पनी में सदस्यों की न्यूनतम संख्या क्या होनी चाहिए–

   (अ) 10 (ब) 20

   (स) 7 (द) 15

8. एक निजी कम्पनी को निम्न से कौन –सा प्रलेख बनाने की आवश्यकता नहीं है–

   (अ) पार्षद सीमानियम (ब) पार्षद अन्तर्नियम

   (स) प्रविवरण (द) उपरोक्त सभी

9. एक निजी कम्पनी में न्यूनतम कितने संचालक होने चाहिए?

   (अ) 2 (ब) 3

   (स) 4 (द) 7

10. भारतीय कम्पनी अधिनियम 2013 से पूर्व भारत में कौन सा अधिनियम था?

    (अ) भारतीय कम्पनी अधिनियम 1932

    (ब) भारतीय कम्पनी अधिनियम 1930

    (स) भारतीय कम्पनी अधिनियम 1956

    (द) कम्पनी अधिनियम 1856

11. अंशों द्वारा सीमित कम्पनी के लिए पार्षद सीमानियम का निम्न में से कौनसा प्रारूप निर्धारित है–

(अ) तालिका A का प्रारूप

(ब) तालिका B का प्रारूप

(स) तालिका C का प्रारूप

(द) तालिका D का प्रारूप

12. कम्पनी के निर्माण के लिए उसका प्रस्तावित नाम अवांछनीय नहीं होना चाहिए। अवांछनीय से आशय–

(अ) किसी अन्य कम्पनी या सीमित दायित्व साझेदारी के स्वीकृत नाम से मिलता जुलता

(ब) किसी ट्रेडमार्क से मिलता जुलता

(स) परम्परा, मान्यता व संस्कृति के विरूद्ध

(द) उपर्युक्त सभी

13. कम्पनी अधिनियम 2013 के अनुसार कम्पनी को पंजीयन के कितने दिनों में अपना पंजीकृत कार्यालय तय कर लेना चाहिए जिससे सूचना सही पते पर भेजी जा सके –

(अ) 50 दिन (ब) 60 दिन

(स) 30 दिन (द) 15 दिन

14. सार्वजनिक कम्पनी के सीमानियम पर कम से कम कितने अभिदाताओं के हस्ताक्षर होने चाहिए–

(अ) 2 (ब) 3

(स) 7 (द) 10

15. किस प्रकार की कम्पनी के पार्षद सीमानियम में उस व्यक्ति का नाम लिखा जाता है जो अभिदाता की मृत्यु अथवा अनुबन्ध के अयोग्य होने की दशा में कम्पनी का सदस्य बनेगा–

(अ) सार्वजनिक कम्पनी में

(ब) एक व्यक्ति वाली कम्पनी में

(स) निजी कम्पनी में

(द) सभी कम्पनियों में

16. यदि कम्पनी कोई ऐसा अनुबन्ध, व्यापार या कारोबार करती है जो कि कम्पनी के पार्षद सीमानियम के बाहर है, वह होगा –

(अ) प्रवर्तनीय (ब) व्यर्थ

(स) वैधानिक (द) बाध्यकारी

17. अन्तर्नियम है –

(अ) कम्पनी का चार्टर

(ब) कार्य क्षेत्र का निर्धारक

(स) कम्पनी का पथ– प्रदर्शक

(द) सीमानियम का सहायक

18. कम्पनी के आन्तरिक नियमों का उल्लेख होता है –

(अ) प्रविवरण में (ब) पार्षद अन्तर्नियम में

(स)पार्षद सीमानियम में(द)शेल्फप्रविवरण में

19. रचनात्मक सूचना का सिद्धान्त सुरक्षा प्रदान करता है–

(अ) कम्पनी को बाह्य पक्षकार के विरूद्ध

(ब) बाह्य पक्षकार को कम्पनी के विरूद्ध

(स) निदेशकों को कम्पनी के विरूद्ध

(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

20. आन्तरिक प्रबन्ध का सिद्धान्त सुरक्षा प्रदान करता है –

(अ) बाह्य पक्षकार को कम्पनी के विरूद्ध

(ब) कम्पनी को बाह्य पक्षकार के विरूद्ध

(स) प्रवर्तकों को

(द) उपर्युक्त सभी को

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. कम्पनी की परिभाषा दीजिए।
2. कम्पनी के सदस्यों के सीमित दायित्व का सिद्धान्त भारत में कब लागू किया गया?
3. 'कम्पनी एक कृत्रिम व्यक्ति है' कैसे ?
4. निजी कम्पनी को परिभाषित कीजिए।
5. सूत्रधारी कम्पनी किसे कहते हैं?
6. 'एक व्यक्ति कम्पनी' किसे कहते हैं?
7. कम्पनी व्यापार प्रणाली की आवश्यकता क्यों हुई?
8. पाषर्द सीमानियम से आप क्या समझते हैं ?
9. पार्षद सीमानियम की दो विशेषताएँ बतलाइए।
10. गारन्टी द्वारा सीमित कम्पनी जिसमें अंशपूँजी होती है, वह किस प्रारूप में पार्षद सीमानियम बनाती है।
11. पार्षद सीमानियम कम्पनी का मार्गदर्शक होता है समझाइये।
12. अन्तर्नियमों से आप क्या समझते हैं ?

13. रचनात्मक सूचना के सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं ?
14. आन्तरिक प्रबन्ध का सिद्धान्त क्या है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. नये कम्पनी अधिनियम 2013 की प्रमुख विशेषताऐं बताइये।
2. कम्पनी की प्रमुख विशेषताऐं बताइये।
3. सदस्यों की संख्या के आधार पर कम्पनियों के प्रकार बताइये।
4. सूचीबद्ध कम्पनीयां किसे कहते हैं?
5. कम्पनी एवं साझेदारी में प्रमुख अन्तर लिखिए।
6. एक सार्वजनिक कम्पनी एवं निजी कम्पनी में अन्तर बताइए।
7. कम्पनी के उद्देश्य वाक्य को तैयार करते समय ध्यान रखने योग्य बाते बतलाइए।
8. पार्षद सीमानियम कम्पनी का एक आधारभूत प्रलेख है, स्पष्ट करिए।
9. पार्षर्द सीमानियम के दायित्व वाक्य पर एक टिप्पणी लिखिए।
10. कम्पनी के पंजीकृत कार्यालय के स्थान का क्या महत्त्व है।
11. पार्षद सीमानियम व अन्तर्नियम में चार अन्तर बतलाइए।
12. अधिकार के बाहर के सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. कम्पनी को परिभाषित करते हुए उसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. कम्पनी अधिनियम की धारा 2013 कर प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. कम्पनी किसे कहते हैं?कम्पनी के प्रकार बताइए।
4. पार्षद सीमानियम की परिभाषा दीजिए तथा इसकी विषय वस्तु का वर्णन कीजिए।
5. कम्पनी के जीवन में पार्षद सीमानियम के महत्त्व को स्पष्ट करिए।
6. पार्षद सीमानियम से आप क्या समझते हैं?पार्षद सीमानियम और पार्षद अन्तर्नियम में अन्तर बतलाइए।
7. पार्षद अन्तर्नियम से आप क्या समझते हैं ? पार्षद अन्तर्नियम की विषय वस्तु बतलाइए।

उत्तर :

(1) ब	(2) अ	(3) स	(4) अ
(5) अ	(6) ब	(7) स	(8) स
(9) अ	(10) स	(11) अ	(12) द
(13) द	(14) स	(15) ब	(16) ब
(17) द	(18) ब	(19) अ	(20) अ

अध्याय–4

व्यापार जोखिम एवं अनिश्चितताएँ

व्यापार एक आर्थिक क्रिया है जो भविष्य सें संबधित है। भविष्य अनिश्चित होता है और इसी कारण अनेक अनिश्चितताएँ व्यापार को प्रभावित करती हैं। इन्हीं अनिश्चितताओं को जोखिम कहा जाता है।

अरबी भाषा में ''जोखिम'' शब्द का आशय है ''जिविका कमाना''। कोई भी व्यापारी जोखिम उठाकर ही अपनी जिविका कमा सकता है। जोखिम व्यापार का अनिवार्य अंग है और सच तो यह है कि ''व्यापार जोखिम का खेल'' है। व्यापारी जोखिम उठाकर ही लाभ कमा सकता है।

'जोखिम' का अर्थ किसी आपदा या संकट से उत्पन्न हानि की संभावना से है। यह संभावना अनिश्चितता को जन्म देती है और यह अनिश्चतता ही जोखिम उत्पन्न करती है। कुछ विद्वानों ने जोखिम को इस प्रकार परिभाषित किया है:–

परिभाषा (Definition) :

फ्रेंक नाइट के शब्दो में ''जोखिम एक गणना योग्य अनिश्चितता है।''

बूने एवं कुर्ट्ज के अनुसार ''जोखिम क्षति अथवा हानि की सम्भावना को कहते हैं।''

इस प्रकार जोखिम का अभिप्राय उस संयोग से है जिसमें किसी प्रकार की क्षति की संभावना या अनिश्चितता हो। यह खतरे का पूर्वानुमान है।

जोखिमों के प्रकार (Types of Risks) :

बीमा व्यापार में जोखिमों को दो भागों में बॉटा जाता है:–

1 शुद्ध जोखिमें 2 परिकल्पी जोखिमें

1. शुद्ध जोखिम:– वह है जहाँ केवल नुकसान होने की संभावना रहती है लाभ होने की नहीं। यह वह जोखिम है जिसका परिणाम एक ही होता है–नुकसान।
2. परिकल्पी जोखिम :– ऐसी जोखिम है जिसमें लाभ या हानि की समान सम्भावना पायी जाती है

सभी प्रकार के व्यापार में पायी जाने वाली जोखिमों को निम्न दो भागों में बॉटा जा सकता है

1 आर्थिक जोखिमें

2 गैर आर्थिक जोखिमें

आर्थिक जोखिमें : आर्थिक जोखिमें वे हैं जो धनोपार्जन एवं व्यापार की मौद्रिक क्रियाओं को प्रत्यक्षतः प्रभावित करती है। इन जोखिमों के कारण व्यापार का अस्तित्व तक समाप्त हो सकता है। आर्थिक वातावरण अत्यधिक गतिशील होता है अतः आर्थिक जोखिमों की संख्या में वृद्धि होती रहती है। प्रमुख आर्थिक जोखिमें निम्न हैं

1. **मुद्रा एवं पूँजी बाजार की दशा सम्बन्धी जोखिमें :** मुद्रा एवं पूँजी बाजार वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। जब देश के वित्तीय बाजार सही दिशा में क्रियाशील होते हैं तो विकास के लिये पर्याप्त कोष उपलब्ध हो जाते हैं और कोष प्रबंधन की जोखिम कम हो जाती है। मुद्रा एवं पूँजी बाजार की दशा ठीक नही होने पर को कोषों का प्रबंध करने की जोखिम बढ़ जाती है।
2. **कर संरचना सम्बन्धी जोखिमें :** कर प्रणाली सरकार के राजस्व का प्रमुख स्रोत है। कर संरचना के विभिन्न अंग हैं जैसेः– आय कर, निगम कर, बिक्री कर, सम्पदा शुल्क कर, सीमा कर इत्यादि। सरकार द्वारा कर संरचना में परिवर्तन करना आर्थिक जोखिमें उत्पन्न करता है। कर में छूट जोखिम की मात्रा को कम करती है तथा कर मे वृद्धि जोखिम को बढाती है।
3. **उदारीकरण एवं निजीकरण से उत्पन्न जोखिमें :** उदारीकरण ऐसी आर्थिक पद्धति है जिसके अन्तर्गत नियमों नियंत्रणों और कीमतों को इस प्रकार उदार बनाने का प्रयास किया जाता है कि राष्ट्र आर्थिक प्रगति के लक्ष्य को प्राप्त कर सके। यह आर्थिक क्षेत्र में सकारात्मक परिवर्तन की प्रक्रिया है। इससे व्यापारिक क्षेत्र की जोखिमों में कुछ कमी आती है

लेकिन बाजार की प्रतिस्पर्धा सम्बन्धी जोखिम बढ जाती है।

4. **मौद्रिक नीति सम्बन्धी जोखिमें :** मौद्रिक नीति राष्ट्र की सामान्य आर्थिक नीति का एक प्रमुख अंग है। इसके द्वारा देश में मुद्रा एवं साख की मात्रा एवं बैकिंग क्रियाओं पर नियंत्रण रखा जाता है। मौद्रिक नीति का क्रियान्वयन देश के केन्द्रीय बैंक द्वारा किया जाता है। भारत में यह कार्य रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया करता है। विकासशील देशों में मौद्रिक नीति के द्वारा वित्तीय संस्थाओं का निर्माण तथा विस्तार, समुचित ब्याज दरों का निर्धारण, सार्वजनिक ऋणों का प्रबन्ध आदि उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। मौद्रिक नीति व्यापारिक जोखिमों को अनुकूल एवं प्रतिकूल दोनो ही प्रकार से प्रभावित करती हैं।

5. **आर्थिक प्रवृतियाँ एवं दशाओं से सम्बन्धित जोखिमें :** किसी भी राष्ट्र में प्रचलित आर्थिक दशाओं का स्तर तथा वहाँ की आर्थिक प्रवृतियाँ व्यापारिक जोखिमों को प्रत्यक्षतः प्रभावित करती हैं। इनमें राष्ट्रीय आय, आर्थिक विकास का स्तर, रोजगार की स्थिति, मुद्रा की क्रय शक्ति, व्यापार चक्र आदि प्रमुख घटक सम्मिलित हैं जो जोखिमों पर सीधा प्रभाव डालते हैं ।

गैर आर्थिक जोखिमें : व्यापार एक आर्थिक प्रणाली ही नहीं वरन् सामाजिक एवं मानवीय संगठन भी है। यह सांस्कृतिक मूल्यों, विचार–शैलियों एवं सामाजिक विश्वासों को उत्पन्न करने का माध्यम है । व्यापार को निरन्तर सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में कार्य करना होता है। गैर–आर्थिक जोखिमें निम्नलिखित हैः–

1. **जलवायु एवं स्थूलाकृति सम्बन्धी जोखिमें**:– उचित तापमान, वर्षा, नमी व ठंडक जलवायु के अंग है। इनका असंतुलन व्यापार की जोखिमों को बढ़ा देता है। वर्षा की कमी तापमान में अत्यधिक उतार–चढ़ाव आदि कारणों से व्यापारिक वस्तुओं की मांग व पूर्ति प्रभावित होती है। पहाड़, पठार, मैदान, समुद्र, नदियाँ, नहरें इत्यादि तत्व व्यापार को प्रभावित करतें हैं तथा इन भिन्न भिन्न स्थूलाकृतियों में जोखिम भी भिन्न–भिन्न प्रकृति की होती है।

2. **जनसांख्यिकीय जोखिमें**:– व्यापार जनसंख्या के स्तर पर होने वाले परिवर्तनों से अछूता नहीं रह सकता। जनसंख्या के आकार वृद्धि दर उम्र, लिंग, शैक्षिक स्तर आदि का व्यापारिक क्रियाओं पर सीधा प्रभाव पडता है। उदाहरण के लिये जिस व्यापार में ग्राहकों में जाति, धर्म, भाषा आदि के स्तर पर अधिक विभिन्नता पाई जाती है, उनकी आवश्यकता की पूर्ति करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। इसी प्रकार जनसंख्या की विजातीयता के कारण मांग–प्रारूपों एवं विपणन व्यूह रचनाओं में भी परिवर्तन करना पड़ता है।

3. **पर्यावरण संतुलन संबंधी जोखिमें**:– पर्यावरण समस्त भौतिक एवं जीवीय परिस्थितियों का योग है जो व्यापार को प्रतिक्षण प्रभावित करता है। आज पर्यावरणीय दायित्वों की पूर्ति के संबंध में विभिन्न प्रकार के व्यापारों पर प्रश्न चिह्न लगे हुए है। उद्योग, हवा, पानी, स्थान इत्यादि को अपने उप–उत्पादों की गन्दगी, रासायनिक बहावों, धुए, जहरीली गैसों आदि के द्वारा निरन्तर प्रदूषित कर रहे हैं। प्राकृतिक संसाधन नष्ट हो रहे हैं। मानव के भविष्य एवं सुरक्षा पर एक प्रश्न चिह्न लग गया है। ऐसे मे समस्त व्यापारिक क्रियाएं भी गम्भीर जोखिमों से घिरी हुई हैं।

4. **राजनीतिक अस्थिरता संबंधी जोखिमें**:– राजनैतिक एवं प्रशासकीय क्रियाओं का भी व्यापारिक क्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है। राजनीतिक परिवर्तनों के कारण व्यापार की संरचनाओं में अन्तर आ जाते हैं। राजनीतिक परिवेश उद्योंगो व व्यापार का नियंत्रणकारी घटक होता है। राजनीतिक स्थिरता व्यापारिक समृद्धि का प्राथमिक लक्षण है। यदि राजनीतिक उथल–पुथल अधिक हो या राष्ट्रपति शासन की स्थिति हो तो व्यापारिक क्रियाओं की जोखिमें बढ़ जाती है। राजनीतिक वातावरण ही व्यापार को उचित संरक्षण एवं पोषण प्रदान करता है। नये साहसियों को उपलब्ध करायी जाने वाली प्रेरणायें, सुविधाएं व सहायता से ही व्यापारिक प्रगति की दिशा एवं आयाम निर्धारित होते हैं।

5. **सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरण से संबंधित जोखिमें**:– व्यापार समाज की मान्यताओं, मूल्यों, विश्वासों एवं जीवन–शैलियों की उपेक्षा नहीं कर सकता है। एक ओर उपभोक्तावाद व दूसरी आरे सामाजिक उत्तरदायित्व की अवधारणा ने व्यापार को उपभोक्ता व समाज अभिमुखी बना दिया है। इसी कारण आज व्यापार की जोखिमें व्यापक हो गई है। आज व्यापारी को निरन्तर– मानवीय आशाओं, भय–आकाँक्षाओं, पसन्द, प्राथमिकताओं व विचारों के संसार में रहकर कार्य करना होता है, वह इनकी उपेक्षा नहीं कर सकता, उसे मानव समाज, इसकी संस्कृति इसकी मूल्य प्रणालियो, इसके सामाजिक प्रारूपों का सम्मान करना होता है।

आधुनिक युग में जोखिमों का सामना करने के लिये विभिन्न व्यवस्थित पाठ्यक्रम प्रारम्भ किये गये है जैसे जोखिम प्रबंधन, व्यूह

रचानात्मक प्रबंधन आदि। यद्यपि जोखिमों को रोकना व्यापारी के वश में नहीं है, लेकिन जोखिमों के लिये कुशल प्रबंधन करके जोखिमों के दुष्प्रभाव को कम किया जा सकता है। व्यापार का अस्तित्व बनाये रखा जा सकता है।

व्यापार जोखिम का प्रबन्ध (Risk Management)

जोखिम व्यापार का अभिन्न अंग है। इन जोखिमों का प्रभाव और परिणाम लाभकारी और अलाभकारी दोनों में हो सकता है। व्यापारिक जोखिम का प्रबन्ध करके इसे निर्देशित और नियंत्रित किया जा सकता है ताकि लाभों को बढ़ाया जा सके अथवा लाभों में होने वाली कमी को रोका जा सके।

जोखिम प्रबन्ध में पहला कदम जोखिमों की पहचान करना है। यहां यह निश्चित करना होता है कि व्यापारिक जोखिम का संबंध किससे है– बाजार से, वित्त से, विपणन से, उत्पाद से, प्रौद्योगिकी से, व्यावसायिक वातावरण जैसे राजनीतिक, सामाजिक, पर्यावरणीय, वातावरण से। व्यापारिक जोखिमों की पहचान करने के बाद इनकी गहन जांच की जानी चाहिए। इस दूसरे कदम को जोखिमों का विश्लेषण कहते है। इसके लिए यथासंभव संबंधित पर्याप्त सूचनाएं एकत्र करने की आवश्यकता होती है फिर उन सूचनाओं के आधार पर महत्वपूर्ण बात को रेखांकित किया जाता है। जोखिमों के विश्लेषण के अन्तर्गत उत्पाद जोखिम में यह देखा जाता है कि नये उत्पाद को बनाना तथा उसे बाजार में उतारना कहाँ तक सफल हो सकता है। बाजार जोखिम में प्रतिस्पर्धा, विपणन वाहिकाओं की उपस्थिति, उपभोक्ताओं की स्वीकृति, गुणवत्ता और कीमत पर ध्यान दिया जाता है। तकनीकी जोखिम में तकनीकी उपलब्धता और इसके प्रबन्धन पर ध्यान दिया जाता है। उद्यमीय जोखिम में यह देखा जाता है कि उद्यमी में प्रबधन्कीय कौशल कितना है। वह आशावादी कितना है। जोखिम प्रबन्ध के तीसरे चरण पर जोखिमों का मूल्यांकन किया जाता हैः जैसे किसी नये उत्पाद की अनूठी विशेषताएं कितनी है। विद्यमान उत्पादों की तुलना में इसकी श्रेष्ठता कितनी है। कीमत का स्तर क्या है। बाजार में इसे सबसे पहले कौनसे उपभोक्ता अपना सकते हैं। इसमें जिस धन का निवेश किया गया है उसमें कितना जोखिम हैं। इसमें संभावित बाधाएं क्या है। यदि निवेश के लिए बहुत अधिक वित्त की जरूरत है तो क्या क्रेडिट रेटिंग के मापदडों पर या खरा उतर पायेगा। इन सब के आधार पर मूल्यांकन करके जोखिम को घटाने वाले उपायों का चयन किया जाता है।

इसके बाद अंतिम चरण पर जोखिम उठाने का निर्णय लिया जाता है। यहां ध्यान रहे कि वास्तव में सभी व्यापारिक जोखिमों को समाप्त नहीं किया जा सकता है किन्तु प्राथमिकताओं के आधार पर नियंत्रण उपायों को लागू किया जा सकता है। व्यापार जोखिम के सन्दर्भ में दो बातें और महत्वपूर्ण हैं।

1. साहस पूँजी (Venture Capital)
2. साख निर्धारण (Creadit Rating)

1. **साहस पूँजी (Venture Capital)**– आधुनिक तकनीकी शिक्षा में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के मन में कुछ नया करने के विचाार सृजित होते है किन्तु पूँजी के अभाव में उन विचारों को मूर्त रूप नहीं दे सकते हैं इसलिए सरकार ने नये विचारों एवं तकनिकों को वास्तविक रूप में परिवर्तित करने के लिए आवश्यक पूँजी हेतु साहस पूँजी कोष का निर्माण किया है। वर्तमान में सरकारी एवं निजी बैंक तथा वित्त बाजार की विभिन्न कम्पनियां इस प्रकार के प्रयोगों को प्रोत्साहित करती है एवं उनके व्यापार हेतु पूँजी उपलब्ध करवाती है। साहस पूँजी कोष की कम्पनियॉ पूँजी के अलावा भी व्यापार संचालन, उत्पादन प्रबंध, विपणन एवं विक्रय प्रबंध के काम में भी सहयोग करती है।

2. **साख निर्धारण (Creadit Rating)** – अर्थव्यवस्थाओं का भूमडलीकरण होने से खुली आर्थव्यवस्था में व्यापार जोखिम गहन और विस्तृत हो गयी है। अब व्यापार जोखिम का क्षेत्र बढ़कर मुद्रा, पूँजी और विदेशी विनिमय बाजारों तक जा पहुंचा है । इससे व्यापार में लाभ कमाना जटिल से जटिलतर होता जा रहा है। वहीं जो निवेशक किसी व्यापार के लिए पूँजी उपलब्ध कराते हैं वे इस बात से आश्वस्त होना चाहते है कि उनके द्वारा नई या स्थापित कम्पनियों के प्रतिभूतियों में जो धन लगाया जा रहा है। उस पर कितनी आमदनी होगी? उनका निवेश कहीं डूब तो नहीं जायेगा?इसके लिए साख निर्धारण (क्रेडिट रेंटिग) महत्वपूर्ण है।

साख निर्धारण को ऋणपात्रता निर्धारण या साख की परख भी कहा जाता है। यह जोखिम और आमदनी के बीच एक कड़ी का काम करता है। विकासशील देशों में भारत पहला ऐसा देश है जहां 1988 में साख निर्धारण एजेन्सी की स्थापना हुई। दुनिया में पहली साख निर्धारण एजेन्सी की स्थापना अमेरिका में न्यूयार्क में 1841 में हुई थी। 1970 के दशक से दुनिया के कई देशों मे जैसे मलेशिया, थाईलैंड, कोरिया, आस्ट्रेलिया, इत्यादि में अनेक साख निर्धारण एजेन्सियाँ कार्यशील है।

दुनिया की तीन बड़ी साख निर्धारण एजेन्सी है जो विभिन्न देशों की अर्थव्यवस्थाओं की क्रेडिट रेटिंग के लिए प्रसिद्ध है। इन वैश्विक क्रेडिट रेटिंग एजेन्सियों द्वारा की गई साख निर्धारण के आधार पर दुनिया के बड़े– बड़े निवेशक विभिन्न देशों में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से भारी धन का निवेश करने का निर्णय लेते हैं। ये तीन वैश्विक

साख निर्धारण एजेन्सी हैं – फिचरेटिंग्स, मूडीज इन्वेस्टर्स सर्विस और स्टेन्डर्ड एंड पूअर्स। ये तीनों एजेन्सी अमेरिकीं है।

भारत में कुछ प्रमुख साख निर्धारण एजेन्सी हैः क्रिसील (CRISIL)–क्रेडिट रेटिंग एडं इन्फोरमेशन सर्विस आफ इण्डिया लिमिटेड, इसकी स्थापना 1987 में हुई। आई.सी. आर.ए (ICRA) – इनवेस्टमेंट इनफोरमेशन एडं क्रेडिट एजेन्सी, केयर(CARE) –क्रेडिट एनालिसिस एंड रिचर्स लिमिटेड। भारत में भारतीय प्रतिभूति एवम् विनिमय बोर्ड (सेबी) द्वारा साख निर्धारण एजेन्सियों को नियमन किया जाता है। साख निर्धारण (क्रेडिट रेटिंग) एजेन्सी की राय है कि कोई कम्पनी या संस्था अपने ऋण पत्रों और उस पर ब्याज का भुगतान कर सकने में कितना सक्षम साबित होगी? साख निर्धारण जोखिम और आय के बीच एक कड़ी का काम करता है। इससे निवेशकों को पूर्वानुमान लगाने में सहायता मिलती है कि उसके निवेश में जोखिम कितना है । वह उस क्रेडिट रेटिंग के आधार पर यह तय कर सकता है कि उसके निवेश पर आमदनी का जो प्रस्ताव है, वास्तव में उसे कितना मिल सकता हैं? इसके आधार पर वह किसी कम्पनी में, व्यापार में या किसी अर्थव्यवस्था में निवेश करने का निश्चय करता है। सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार, वित्तीय बाजारों के भूमण्डलीकरण, सरकारी सुरक्षा उपायों की कमी, निजीकरण और ऋणों के प्रतिभूतिकरण के चलते क्रेडिट रेटिंग का महत्व दिनों दिन बढ़ रहा है।

आजकल सिर्फ कम्पनियों द्वारा निर्गमित समता अंशों, पूर्वाधिकारी अंशों, बॉण्ड्स, ऋणपत्रों , वाणिज्यिक पत्रों या सावधिक जमाओं के लिए ही साख का निर्धारण नही होता। देश की अर्थव्यवस्था, भूसम्पति निर्माता व विकास चिट फंड बैंकों की क्रेडिंट रेटिंग भी होती है। यहां तक की एक ही देश में स्थित विभिन्न राज्यों की भी क्रेडिट रेटिंग होती है कि किन राज्यों में निवेश करना ज्यादा लाभकारी है। जैसे क्रिसिल ने हमारे देश के विभिन्न राज्यों – महाराष्ट्र, तमिलनाडु, मध्यप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश और केरल का क्रेडिट रेटिंग किया है।

सारांश :

अनिश्चितताएं जोखिम का कारण है। जोखिम उठाकर ही व्यापार किया जा सकता है। अनेक आर्थिक कारण जैसे मुद्रा एवं पूंजी बाजार की दशा, कर संरचना, उदारीकरण, मौद्रिक नीति, आर्थिक प्रवृतियां व दशायें जोखिमों को प्रत्यक्षतः प्रभावित करते हैं। इनका प्रत्यक्ष प्रभाव लाभ–अर्जन क्षमता पर पड़ता है। गैर आर्थिक कारण जैसे जलवायु एवं स्थूलाकृति, जनसंख्या, पर्यावरण संतुलन, राजनीतिक अस्थिरता, सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण आदि भी व्यापारिक जोखिमों को प्रभावित करते हैं। इन जोखिमों के कारण व्यापार की ख्याति तथा अस्तित्व पर प्रभाव पड़ता है। व्यापार की जोखिम एवं अनिश्चितताओं का अध्ययन व विश्लेषण करते हुए जोखिमों का प्रबंध करने का प्रयास ही किया जा सकता है जिससे व्यापार में न्यूनतम हानि हो। जोखिमों का प्रबन्ध करनें में विशेष ज्ञान एवं अनुभव की आवश्यकता रहती है। इस कार्य में मदद करने के लिए क्रेडिट रेटिंग एजेन्सी भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न :

1. अरबी भाषा में 'जोखिम' शब्द का तात्पर्य है–
   (अ) संभावना (ब) हानि
   (स) पूर्वानुमान (द) जीविका कमाना
2. ''जोखिम एक गणना योग्य अनिश्चितता है'' यह कथन किस विद्वान का है?
   (अ) हेनरी फेयोल (ब) टेलर
   (स) फ्रेंक नाईट (द) बूने एवं कूर्ट्ज
3. परिकल्पी जोखिम से तात्पर्य है।
   (अ) हानि की संभावना (ब) लाभ की संभावना
   (स) हानि व लाभ दोनो की समान संभावना
   (द) न हानि और न लाभ की संभावना
4. मौद्रिक नीति का क्रियान्वयन किस बैंक के द्वारा किया जाता है?
   (अ) RBI (ब) SBI
   (स) HDFC (द) ICICI
5. जोखिम प्रबन्धन प्रक्रिया का दूसरा चरण क्या है?
   (अ) जोखिम की पहचान (ब) जोखिम विश्लेषण
   (स) जोखिम मूल्यांकन
   (द) जोखिम उठाने का निर्णय
6. विश्व में प्रथम साख निर्धारण एजेंसी(Credit Rating Agency) की स्थापना किस देश में हुई?
   (अ) ब्रिटेन (ब) रुस
   (स) भारत (द) अमेरिका
7. "CRISIL" की स्थापना भारत में किस वर्ष हुई?
   (अ) 1991 (ब) 1997
   (स) 1987 (द) 2002

अति लघुत्तरात्मक प्रश्नः

1. 'जोखिम' शब्द का अरबी भाषा में क्या अर्थ है
2. फ्रेंक नाईट ने जोखिम को कैसे परिभाषित किया है?
3. शुद्ध जोखिमों से क्या आशय हैं?
4. देश की मौद्रिक नीति का क्रियान्वयन किसके द्वारा किया जाता है?

लघुत्तरात्मक प्रश्नः

1. बीमा व्यापार की दृष्टि से जोखिमें कितने प्रकार की होती है?
2. 'जोखिम' शब्द का अर्थ बताइये?
3. ऐसी दो जोखिमों को स्पष्ट कीजिये जो आर्थिक जोखिमें मानी जाती है?
4. दौ गैर आर्थिक जोखिमों का वर्णन कीजिये।

निबंधात्मक प्रश्नः

1. जोखिम से क्या आशय है। प्रमुख आर्थिक जोखिमों का वर्णन कीजिये।
2. ''व्यापार जोखिम का खेल है'' समझाइये। कौनसी जोखिमें व्यापार को प्रभावित करती हैं।
3. आर्थिक एंव गैर आर्थिक जोखिमों का वर्णन कीजिये।

उत्तर : 1. द 2. स 3. स 4. अ 5. ब 6. द 7. स

व्यावसायिक पूंजी/वित्त
(Business Capital/Finance)

यह सर्वविदित है कि प्रत्येक व्यापार, व्यवसाय व पेशे को स्थापित करने एवम् चलाने के लिए धन (पूंजी) की आवश्यकता होती है। चाहे यह व्यवसाय छोटा हो या बड़ा, विनिर्माता का हो या क्रय–विक्रय सम्बन्धी व्यापार का या फिर परिवहन व्यवसाय प्रत्येक के लिए धन आवश्यक है। धन (पूंजी) को इसीलिए व्यवसाय का जीवन रक्षक कहा जाता है।

अर्थ (Meaning) – किसी भी व्यावसायिक क्रिया के लिए जो धन चाहिये उसे पूंजी/वित्त कहते है। इसलिए व्यावसायिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक धन एवम् उसके प्राप्त करने के तरीकों को व्यावसायिक वित्त कहते हैं।

आवश्यकता एवं महत्त्व
(Need and Importance)

प्रत्येक व्यवसाय में प्रमुख रूप से निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वित्त/पूंजी की आवश्यकता होती है :–

1. **स्थायी सम्पत्ति का क्रय** – प्रत्येक प्रकार के व्यवसाय में कुछ स्थायी सम्पत्तियाँ जैसे भूमि व भवन, फर्नीचर एवम् मशीन आदि होती है एवम् इनका क्रय करने के लिए बड़ी मात्रा में धनराशि की आवश्यकता होती है।
2. **दैनिक व्यय का भुगतान** – व्यवसाय की स्थापना के बाद दैनिक क्रियाओं जैसे कच्चे माल का क्रय, कर एवम् किराये का भुगतान, टेलीफोन, बिजली बिलों और वेतन व मजदूरी के भुगतान हेतु धन की आवश्यकता होती है।
3. **व्यवसाय का विकास** – व्यवसाय के विकास में वर्तमान व्यवसाय का विस्तार एवम् उसमें नवीन प्रकार के व्यवसायों का समावेश सम्मिलित है, जो पूंजी के अभाव में संभव नहीं। नई प्रौद्योगिकी समय समय पर व्यवसाय के सामयिक विकास की धुरी है अतः प्रौद्योगिकीय विकास हेतु वित्त/धन अत्यावश्यक है।
4. **उत्पादन एवम् बिक्री समय अंतराल की पूर्ति** – उत्पादन पर किये गये व्यय की वसूली उसके विक्रय से होती है और सामान्यतः उत्पादन एवम् विक्रय में समय अन्तराल (Time Gap) होता है। विक्रय एवम् रोकड़ वसूली में समयान्तर होता है। इस समय अन्तराल में निरन्तर व्यय भी होता रहता हैं। इन सभी के लिए वित्त की आवश्यकता होती है।
5. **आकस्मिक व्ययों की पूर्ति** – व्यवसाय में आने वाले उतार–चढ़ाव व कुछ अप्रत्याशित समस्याओं की पूर्ति के लिए धन की आवश्यकता होती है।
6. **व्यावसायिक अवसरों का लाभ** – व्यावसायिक अवसरों जैसे नवाचार निवेश का पुनर्जीवन समायोजन आदि का लाभ उठाने के लिए भी धन की आवश्यकता होती है।

व्यावसायिक वित्त/धन के स्रोतों का वर्गीकरण
(Classification of sources of Business Finance)

चार्ट

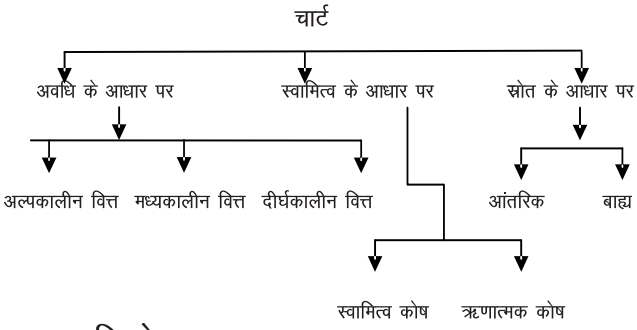

1. **अवधि के आधार पर :**

i. **अल्पकालीन वित्त** – दैनन्दिन के कार्यों की पूर्ति के लिए अल्पकालीन वित्त की आवश्यकता पड़ती है। इसकी अवधि एक वर्ष या इससे कम होती है।

ii. **मध्यकालीन वित्त** – व्यावसाय के आधुनिकीकरण व नवीनीकरण तथा विक्रय संवर्द्धन के लिए मध्यमकालीन वित्त की आवश्यकता पड़ती है। इसकी अवधि एक से तीन वर्ष तक की होती है।

iii. **दीर्घकालीन वित्त** – व्यवसाय में स्थायी सम्पत्ति, भूमि व भवन, मशीनरी, फर्नीचर आदि– क्रय करने के लिए दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता पड़ती है। इसकी अवधि पांच वर्ष या पाँच वर्ष से अधिक होती है।

2. स्वामित्व के आधार पर :

i. **स्वामित्व कोष** – वह कोष जो उद्यम के स्वामियों ने दिया है, स्वामित्व कोष कहलाता है। ये स्वामी एकल व्यापारी / साझेदारी / कम्पनी के अंशधारी हो सकते हैं। पूंजी के अलावा इसमें लाभ का वह भाग जो व्यवसाय में पुनः निवेशित है, वह भी सम्मिलित है। स्वामिगत पूंजी व्यवसाय में दीर्घावधि के लिए लगी होती है एवम् व्यवसाय के लिए जीवन काल में इसको लौटाना नहीं पड़ता है। यह पूंजी स्वामी को प्रबन्ध में नियन्त्रण के अधिकार की प्राप्ति का आधार होती है।

ii. **ऋणगत कोष** – ऋणगत कोष से अभिप्राय ऋण एवम् उधार लेने के माध्यम से कोष एकत्रित करना है। ऋणगत स्रोतों में वाणिज्यिक बैंकों से ऋण, वित्तीय संस्थाओं से ऋण, ऋण पत्रों का निर्गमन, सार्वजनिक ऋण एवम् व्यापारिक साख सम्मिलित है। इन स्रोतों से कोष एक निश्चित अवधि के लिए निर्धारित शर्तों पर प्राप्त किये जाते हैं तथा उन्हें एक निश्चित अवधि के बाद लौटाया जाता है। स्थायी कोष कहलाता है।

3. स्रोतों के आधार पर :

i. **आंतरिक स्रोत** – आंतरिक स्रोत वह है जो संगठन से ही जुटाये जाते है जैसे– अतिरिक्त स्टॉक को बेचने एवम् अपने लाभों का पुनः विनियोग।

ii. **बाह्य स्रोत** – बाह्य स्रोत वह है जो संगठन के बाहर से जुटाये जाते हैं। जैसे– आपूर्तिकर्त्ता, ऋणदाता एवम् निवेशकर्ता। बाह्य स्रोतों से पूंजी जुटाने के लिए अपनी परिसम्पत्तियों को गिरवी रखना पड़ता है। ऋणपत्रों का निर्गमन, वाणिज्यिक बैंकों एवम् वित्तीय संस्थानों से उधार लेना एवम् सार्वजनिक जमा स्वीकार करना इत्यादि शामिल है।

अल्पकालीन वित्त के स्रोत
(Sources of Short term Finance)

एक व्यावसायिक इकाई विभिन्न स्रोतों से पूंजी जुटाती है। प्रत्येक स्रोत की अपनी विशिष्टताएं है, जिन्हें सही रूप में समझना आवश्यक है ताकि कोष जुटाने के सर्वश्रेष्ठ स्रोत की पहचान एवं उसका चयन किया जा सके, एवं उसका चयन (उद्देश्य, लागत व जोखिम आदि के आधार पर) वित्त के विभिन्न स्रोत इस प्रकार है –

1. **व्यापारिक साख (Trade Credit) :** एक व्यापारी द्वारा दूसरे व्यापारी को वस्तु एवम् सेवाओं के क्रय के लिए दी गई साख (उधार) को व्यापारिक साख कहते हैं। सामान्यतः व्यापारी एक डेढ़ माह के लिए माल का उधार क्रय करते हैं बाद में उसका भुगतान किया जाता है। यह आपूर्तिकर्ता द्वारा धन प्रदान करने के समान है।

2. **बैंक साख (Bank Credit)** : वाणिज्यिक बैंकों द्वारा व्यापारिक फर्मों को अल्पकालीन वित्त प्रदान करने को बैंक साख कहते हैं। तय समझौतें के अनुसार बैंक द्वारा तय राशि उसके (ग्राहक के) खाते में जमा कर दी जाती है जिसका उपयोग व्यापारी अपनी आवश्यकतानुसार करता रहता है। बैंक साख के प्रकार निम्न है :

   i. **ऋण एवम् अग्रिम (Loans & Advances) -** बैंक ऋण एक निश्चित राशि निश्चित अवधि की समाप्ति की शर्त पर फर्म की सम्पत्तियों की जमानत पर प्रदान किया जाता है ।

   ii. **नकद साख (Cash Credit)** – यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अंतर्गत बैंक ऋण लेने वाले को एक निश्चित सीमा तक धनराशि निकालने की अनुमति प्रदान करता है जो नकद साख कहलाती है। यह सुविधा माल के स्टॉक, प्रामिसरी नोट या अन्य विक्रय योग्य प्रतिभूतियों तथा सरकारी बॉण्ड की जमानत पर दी जाती है।

   iii. **बैंक अधिविकर्ष (Bank Overdraft)** – चालूखाताधारी के खाते में जमा राशि से अधिक एक निश्चित राशि निकालने की अनुमति को बैंक अधिविकर्ष कहते हैं। खाते में जमा रकम से अधिक निकाली गई राशि पर ही ब्याज लगता है। ब्याज की दर बैंक ऋण एवम् नकद साख की तुलना में कम होती है।

   iv. **प्राप्य विपत्रों को बट्टे पर भुनाना (Discounting of Bills)** – सावधि बिलों की परिपक्वता तिथि से पूर्व, उक्त बिल की जमानत पर दिया गया ऋण बिलों को बट्टे पर भुनाना कहते हैं। बैंक ऐसे बिलों की कटौति (ब्याज) काटकर शेष रकम ग्राहक के खाते में जमा कर देता है एवम् परिपक्वता तिथि पर ग्राहक उक्त बिल की सम्पूर्ण राशि का भुगतान कर देता है।

3. **आढ़ती कार्य (Factoring)** – आढती कार्य के अंतर्गत व्यवसायी एक निश्चित शुल्क देकर देनदारों से प्राप्त होने वाली अदत्त राशि को एकत्रित करने का दायित्व बैंक को स्थानान्तरित कर देता है। यहाँ व्यवसायी भुगतान तिथि की प्रतीक्षा किये बिना बैंक से अग्रिम रूप में धन प्राप्त कर लेता है। यह भी अल्पकालीन वित्त की एक विधि है।

4. **ग्राहकों से अग्रिम (Customers Advances)** : कभी–कभी व्यापारी अपने ग्राहकों से माल के आदेशित मूल्य के बराबर अग्रिम राशि की मांग करता है, ग्राहकों से

अग्रिम कहलाता है। यह मांग उस दिशा में की जाती है जबकि माल का आदेश बड़ा हो अथवा आदेशित माल अधिक मूल्यवान हो या ग्राहक पर कम विश्वास हो या ग्राहक नया–नया हो।

5. **अ–संगिठत क्षेत्रों से ऋण (Loans from Un-organised Sector)** : इस श्रेणी में सेठ–साहूकार, स्वदेशी बैंकर्स, मित्र–परिजन आदि आते है। इस श्रेणी के व्यक्तियों से व्यक्तिगत जमानत या चल–अचल सम्पत्तियों की जमानत पर ऋण लिया जाता है। असंगठित क्षेत्रों से प्राप्त ऋण पर देय ब्याज की दर तुलनात्मक अन्य स्रोतों (बैंक व वित्तीय संस्थाओं) से काफी अधिक होती है।

6. **सार्वजनिक जमा (Public Deposits)** : जब कोई फर्म या व्यवसाय सीधे जनता से धन जमा के रूप में स्वीकार करते है, उसे सार्वजनिक जमा कहते हैं। सार्वजनिक जमा पर साधारणतया बैंक द्वारा दिये जाने वाले ब्याज से ऊँचे दर पर ब्याज दिया जाता है। सार्वजनिक जमाएँ– मध्यम एवम् लघु अवधि दोनों वित्तीय आवश्यकताओं के लिए उपयोगी है।

7. **वाणिज्यिक पत्र (Commercial-Papers)** : वाणिज्यिक पत्र किसी फर्म द्वारा अल्प अवधि के लिए जारी किया जाता है, जो एक माह से एक वर्ष तक हो सकती है। इसे एक फर्म दूसरी फर्म को बीमा कम्पनी को पेंशन कोष एवम् बैंकों को जारी करता है क्योंकि यह पूर्ण असुरक्षित होता है। अच्छी साख वाली फर्में ही 'वाणिज्यिक पत्र' जारी कर सकती है, इसका नियमन रिजर्व बैंक के कार्यक्षेत्र में आता है।

नकद साख एवम् बैंक अधिविकर्ष में अंतर :

1. बैंक ऋण/नकद साख किसी भी व्यक्ति/फर्म/व्यवसाय को दिया जा सकता है , चाहे उसका बैंक में खाता हो या नहीं जबकि बैंक अधिविकर्ष की सुविधा केवल चालू खाता धारी को ही दी जाती है।

2. नकद साख की स्थिति में ऋण की राशि ऋणी का अलग खाता खोलकर दी जाती है जबकि बैंक अधिविकर्ष के लिए अलग से खाता नहीं खोला जाता वरन् उसके खाते में ही प्रदान की जाती है।

3. नकद साख के मामले में ऋण की राशि प्रदत्त प्रतिभूतियों के मूल्य के आधार पर निश्चित की जाती है जबकि बैंक अधिविकर्ष की सीमा ग्राहक के खाते में औसत जमा एवम् लेनदेन के आधार व व्यवहार पर निश्चित की जाती है।

4. नकद साख के लिए मूर्त परिसम्पत्तियों का प्रस्तुतीकरण आवश्यक है। जबकि बैंक अधिविकर्ष बिना किसी प्रतिभूतियों के चल सम्पत्ति के आधार पर स्वीकृत किया जाता है।

5. नकद साख में ब्याज की दर, बैंक अधिविकर्ष की तुलना में ज्यादा होती है।

दीर्घकालीन वित्तीय स्रोत (Long Term Financial Resources) :

छोटे व्यवसायों या संगठनों में दीर्घकालीन वित्त प्रायः उनके स्वामियों द्वारा प्रदान किये जाते हैं। साथ ही सरकारी, गैर सरकारी संगठन/एजेंसी भी बड़े व्यापारिक संगठनों तथा संयुक्त पूंजी वाली कम्पनियों को दीर्घकालीन वित्त प्रदान करते हैं। सामान्यतः दीर्घकालीन वित्तीय स्रोत अग्राकिंत है –

I. अंशों का निर्गमन (Issue of Shares)

II. ऋणपत्रों का निर्गमन (Issue of Debentures)

III. संस्थागत ऋण (Institutional Loans)

IV. संचित कोष (Retention of Funds)

V. पट्टे पर वित्तीयन (Lease Financing)

VI. विदेशी निवेश (Foreign Investment)

I. अंशों का निर्गमन (Issue of Shares)

अंशों के निर्गमन से प्राप्त पूंजी, अंश पूंजी कहलाती है। एक कम्पनी की पूंजी छोटी–छोटी ईकाइयों में विभक्त होती है, प्रत्येक इकाई एक अंश कहलाती है। उदाहरणार्थ – एक कम्पनी 10 रू. वाले 1 करोड अंशों का निर्गमन दस करोड़ रू. की पूंजी के लिए कर सकती है। अंशों के धारक, अंशधारी कहलाते है। प्रायः अंश दो प्रकार के होते हैं – समता अंश व पूर्वाधिकार अंश।

समता अंश (Equity Shares) –समता अंश वे अंश होते हैं जिनको लाभांश के भुगतान या पूंजी के पुनः भुगतान के सम्बन्ध में कोई पूर्वाधिकार प्राप्त नहीं होता है। समता अंशधारकों को लाभांश भुगतान पूर्वाधिकारी अंशधारियों को चुकाने के बाद शेष लाभ में से प्राप्त होता है। समता अंशधारकों के लिए लाभांश की कोई निश्चित दर नहीं होती है। लाभांश की दर उपलब्ध शेष लाभ पर निर्भर करती है।

समता अंश कम्पनी की स्वामीगत पूंजी होती है, इसलिए इन अशों के माध्यम से जुटाई गई पूंजी को स्वामीगत पूंजी/स्वामीगत कोष भी कहते है। इनका दायित्व कम्पनी में उनके द्वारा लगाई गई पूंजी तक सीमित रहता है। इसके साथ ही अपने वोट देने के अधिकार के कारण कम्पनी के प्रबन्ध में भागीदारी का अधिकार प्राप्त होता है।

समता अंश के गुण :

1) समता अशंधारकों को लाभांश का भुगतान अनिवार्य नहीं है।

2) समता पूंजी स्थायी होती है क्योंकि इसको केवल कम्पनी के समापन पर ही लौटाया जाता है।

3) समता पूंजी कम्पनी की साख बनाती है एवम् सम्भावित ऋणदाताओं में विश्वास पैदा करती है।

4) कम्पनियों की सम्पत्तियों पर किसी प्रकार के प्रभार के बिना भी समता अंशों के माध्यम से कोष जुटाए जा सकते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर उधार लेने के लिए कम्पनी की सम्पत्तियों को गिरवी रखा जा सकता है।

5) समता अंशों के मताधिकार के कारण कम्पनी के प्रबन्ध पर प्रजातांत्रिक नियंत्रण रहता है।

6) पूँजी बाजार में समता अंशों को आसानी से बेचा जा सकता है।

समता अंश की कमियाँ / दोष

1) समता अंश धारकों को लाभांश तभी प्राप्त होता है जब कम्पनी पर्याप्त लाभ अर्जित करती है। अतः लाभांश की प्राप्ति व मात्रा अनिश्चित होती है।

2) समता अंशधारकों को अत्यधिक जोखिम उठानी पड़ती है। हानि होने की दशा में उन्हें लाभांश की प्राप्ति नहीं होती।

3) समता अंशों में बहुत अधिक सट्टेबाजी होती है अर्थात् बाजार भाव में तेजी से उतार–चढ़ाव होते हैं।

4) समता अंशों के निर्गमन से पूंजी प्राप्त करने में विलम्ब होता है क्योंकि अनेक कानूनी औपचारिकताएं पूरी करनी होती है।

5) प्रतिकूल परिस्थितियों में कम्पनी के समापन पर अयाचित पूँजी का भुगतान भी करना पड़ सकता है अथवा निवेश की गई पूँजी की हानि भी हो सकती है।

पूर्वाधिकार अंश (Preference Shares)

पूर्वाधिकार अंश वे अंश होते हैं जिनकों लाभांश एवम् पूंजी की वापसी के सम्बन्ध में पूर्वाधिकार प्राप्त होते है। समता अंशों के लाभांश भुगतान से पूर्व पूर्वाधिकार अंशों पर लाभांश का भुगतान करना होता है। कम्पनी समापन की दशा में पूर्वाधिकार अंशधारकों को अपनी पूंजी, समता अंशधारकों से पूर्व वापिस पाने का अधिकार होता है। इन अंशधारकों के पास मताधिकार एवम् प्रबन्ध में भागीदारी का अधिकार नहीं होता । पूर्वाधिकार अंश निम्न प्रकार के हो सकते हैं–

अ. परिवर्तनीय और अपरिवर्तनीय (Convertible & Non-Convertible)

वे पूर्वाधिकार अंश जिनको निर्दिष्ट समायावधि के पश्चात् समता अंशों में परिवर्तित किया जा सकता है। परिवर्तनीय पूर्वाधिकार अंश कहलाते है। अन्यथा इन्हें अपरिवर्तनीय पूर्वाधिकार अंश कहते हैं।

आ. संचयी तथा असंचयी (Cumulative & Non-Cumulative)

संचयी पूर्वाधिकार अंशो का अदत्त लाभांश (अपर्याप्त लाभ की स्थिति में) संचित कर अगले वर्षों में भुगतान के लिए आगे ले जाया जाता है। जबकि असंचयी पूर्वाधिकार अंशों के लाभांश को वर्तमान वर्ष के अपर्याप्त लाभों में से भुगतान न किये जाने की स्थिति में संचित नहीं किया जा सकता।

इ. भागीदार व गैरभागीदार (Participatory & Non Participatory)

भागीदार पूर्वाधिकार अंशों को समता–अंशों को निर्धारित लाभांश भुगतान करने के पश्चात् शेष लाभों में भी हिस्सा लेने का अधिकार होता है। गैर–भागीदार पूर्वाधिकार अंशों को इस प्रकार का कोई अधिकार नहीं होता ।

ई. शोधनीय एवम् अशोधनीय (Redeemable and non-redeemable)

ऐसे पूर्वाधिकार अंश जिनकी भुगतान के लिए परिपक्वता की तिथि निश्चित होती है, शोधनीय पूर्वाधिकार अंश कहते हैं। जिन पूर्वाधिकार अंशों का भुगतान कम्पनी के समापन समय पर ही होगा, उनको अशोधनीय पूर्वाधिकार अंश कहे हैं।

पूर्वाधिकार अंश के गुण (Merits)

i. स्थिर दर से प्रतिफल के कारण नियमित आय होती है तथा निवेश भी सुरक्षित रहता है।

ii पूर्वाधिकार अंश पूंजी का कम्पनी की सम्पत्ति पर किसी प्रकार का प्रभार नहीं होता है। अतः ऋणपत्रों के स्थानापन्न के रूप में अच्छा विकल्प है।

iii. कम्पनी के समापन पर पूर्वाधिकार अंशधारकों को पूंजी वापसी में पूर्वाधिकार होता है।

पूर्वाधिकार अंश की सीमाएं / दोष (Limitations/ De-merits)

i. पूर्वाधिकार अंशों पर लाभांश की दर ऋणपत्रों पर ब्याज की दर से अधिक होता है।

ii. इन अंशों पर उसी स्थिति में लाभांश का भुगतान किया जाता है जब कम्पनी लाभ कमा रही हो, इसलिए निवेशकों का प्रतिफल सुनिश्चित नहीं है। इस कारण निवेशकों का आकर्षण कम होता है।

iii. पूर्वाधिकार अंशधारियों का निश्चित लाभांश होने के कारण अच्छे समय में कम्पनी समता अंशधारियों को ऊंची दर से लाभांश दे सकती है।

iv. लाभांश को व्यय के रूप मे लाभ में से नहीं घटाया जाता। इसलिए कोई कर की बचत कम्पनी को नहीं होती है जैसा कि ऋणों पर ब्याज में होता है।

v. मताधिकार के अभाव में कम्पनी के मामलों में अंशधारी रुचि नहीं लते है।

समता अंश एवम् पूर्वाधिकार अंश में अंतर

1. **निर्गमन** – समता अंशों का निर्गमन अनिवार्य है जबकि पूर्वाधिकार अंशों का निर्गमन अनिवार्य नहीं है।
2. **लाभांश का भुगतान** – समता अंशों पर लाभांश का भुगतान पूर्वाधिकार अंशों पर भुगतान के पश्चात् ही किया जा सकता है।
3. **पूंजी की वापसी** – कम्पनी के समापन की दशा में समता पूंजी की वापसी भी पूर्वाधिकार अंशों पर पूंजी की वापसी के पश्चात् ही होता है।
4. **मताधिकार** – समता अंशधारियों को कम्पनी के मत देने का अधिकार होता है जबकि पूर्वाधिकार अंशधाराकों को मताधिकार नहीं होता है।
5. **लाभांश का संचय** – समता अंशों का लाभांश संचित नहीं किया जा सकता है जबकि पूर्वाधिकार अंशों पर अदत्त लाभांश का संचय कर आगामी वर्षों में ले जाया जा सकता है।

II. ऋण पत्र (Debentures)

ऋणपत्र–दीर्घावधि ऋणगत पूंजी एकत्रित करने का एक महत्वपूर्ण विलेख हैं। ऋणपत्र कम्पनी द्वारा लिये गये एक निश्चित राशि के ऋण की स्वीकृति है जिसको भविष्य में भुगतान का यह वचन देती है। ऋण पत्रधारकों को एक निश्चित ब्याज की राशि एक निश्चित अन्तराल में दी जाती है।

कम्पनी द्वारा ऋणपत्रों के निर्गमन के लिए भारतीय साख, स्तर निर्धारण (Credit Rating) एवम् कम्पनी सम्बन्धी सूचना सेवाएं आदि की जानकारी सार्वजनिक करनी चाहिये।

ऋणपत्र के गुण (Merits)

1. यह कम जोखिम एवम् स्थिर आय के लिए निवेशकों की पहली पसंद है।
2. ऋणपत्र पर स्थिर ब्याज देय होता है एवम् ये कम्पनी के लाभ में भागीदार नहीं होते।
3. ऋणपत्रों का निर्गमन उस स्थिति में उपयुक्त रहता है जब बिक्री एवम् आय स्थिर होती है।
4. ऋणपत्र धारकों को मताधिकार नहीं होता है जिस कारण समता अंशधारकों का प्रबंध पर नियन्त्रण कम नहीं होता है।
5. ऋणपत्र जारी करना तुलनात्मक मितव्ययी होता है।

ऋणपत्र की सीमाएं (Limitations)

1. कम्पनी पर भार स्थायी होता है चाहे कम्पनी घाटे में क्यों न हो।
2. यदि ऋणपत्र शोध्य है तो वित्तीय कठिनाईयों की अवधि के समय भी कम्पनी को निर्धारित तिथि तक उनके भुगतान के लिए प्रावधान करना होता है।
3. प्रत्येक कम्पनी की ऋण लेने की क्षमता सीमित होती है जो कि भावी आवश्यकता को कम कर देती है।
4. अधिकांश कम्पनियाँ सम्पत्तियों के प्रभार पर ऋणपत्र निर्गमित करती हैं, जिससे ऋण प्राप्ति के अन्य स्रोत सीमित हो जाते हैं।

ऋणपत्र के प्रकार

1. शोधनीय एवम् अशोधनीय ऋणपत्र (Redeemable & Non Redeemable Debentures)

ऐसे ऋणपत्र जिनकी धनवापसी एक निश्चित तिथि को होती है, शोधनीय ऋणपत्र कहलाते हैं। अशोधनीय ऋणपत्रों की वापसी सुनिश्चित नहीं होती है। ऐसे ऋणपत्र धारक धनवापसी की मांग नहीं कर सकते जब तक कि कम्पनी ब्याज के भुगतान में कोई चूक नहीं करती है अन्यथा क. के समापन पर ही भुगतान किया जाता है। इसलिए अशोधनीय ऋणपत्रों को स्थायी ऋणपत्र (Perpetual - Debentures) भी कहते हैं।

2. परिवर्तनीय एवम् अपरिवर्तनीय ऋणपत्र (Convertible & Non- Convertible)

ऐसे ऋणपत्र जिसमें परिवर्तनीय ऋणपत्र धारकों को अपने ऋणपत्रों को समता अंशों में परिवर्तित करने का विकल्प दिया जाता है, परिवर्तनीय ऋणपत्र कहते हैं। परन्तु अपरिवर्तनीय ऋणपत्र धारकों को ऐसा विकल्प नहीं दिया जाता है।

3. सुरक्षित एवम् असुरक्षित ऋणपत्र (Secured & Un-Secured)

सुरक्षित ऋणपत्रों का निर्गमन कम्पनी जमानत के रूप में अपनी सम्पत्तियों पर प्रभार के साथ निर्गमित करती है। यह प्रभार निश्चित सम्पत्तियों पर स्थायी हो सकता है या चल (Floating) हो सकता है। सुरक्षित ऋणपत्र को बंधक ऋणपत्र (Mortgage Debentures) भी कहते हैं। कम्पनी की सम्पत्तियों की जमानत के बिना जारी किये गये ऋणपत्रों को असुरक्षित ऋणपत्र कहते हैं।

4. पंजीकृत एवम् वाहक ऋणपत्र (Registered & Beared Debentures)

पंजीकृत ऋणपत्र वे होते हैं जिनका कम्पनी के रजिस्ट्रार के रजिस्टर में लेखा–जोखा होता है। इन्हें केवल नियमित हस्तान्तरण विलेख द्वारा ही हस्तान्तरित किया जा सकता है। इसके विपरीत जिन ऋणपत्रों का सुपुर्दगी मात्र से हस्तान्तरण हो सकता हो, उन्हें वाहक ऋणपत्र कहते हैं।

5. शून्य प्रतिशत ब्याज ऋणपत्र (Zero Percent Interest debentures)

जिन पर कोई ब्याज नहीं दिया जाता है, शून्य ब्याज ऋणपत्र कहते हैं। इसमें ऋणपत्र के अंकित मूल्य एवम् क्रय मूल्य का अन्तर ही निवेशक की आय होती है। इनका निर्गमन अंकित मूल्य से कम पर तथा शोधन अंकित मूल्य पर किया जाता है। हाल के वर्षों में प्रतिष्ठित कम्पनियों द्वारा इनका चलन हुआ है।

अंश एवम् ऋणपत्र में अंतर

1. **स्थिति** – अंशधारी कम्पनी के मालिक होते हैं। वे स्वामित्व पूंजी उपलब्ध कराते हैं, जबकि ऋणपत्र धारी कम्पनी के ऋणदाता होते हैं जिन्हें एक निश्चित अवधि के बाद पुनः भुगतान करना पड़ता है।
2. **निवेश पर आय की प्रकृति** – अंशधारी को लाभांश मिलता है वो भी कम्पनी लाभ के घटने–बढ़ने के साथ घटता–बढ़ता रहता है, जबकि ऋणपत्र धारी को निश्चित दर से ब्याज मिलता है लाभ घटने–बढ़ने का ब्याज पर प्रभाव नहीं पड़ता ।
3. **अधिकार** – अंशधारी कम्पनी का वास्तविक स्वामी है जो मताधिकार व कम्पनी की रीति नीति निर्धारण में निर्णायक होता है, जबकि ऋणपत्र धारी केवल ऋणदाता है। इसे कम्पनी में किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप का अधिकार नहीं है।
4. **जमानत** – अंशों के निर्गमन पर जमानत की आवश्यकता नहीं पड़ती, जबकि ऋणपत्र कम्पनी साधारणतया अपनी सम्पत्तियों की जमानत पर जारी करती है।
5. **पुनर्भुगतान का क्रम** – पुनर्भुगतान की सूची में अंशधारी अंतिम पंक्ति में होता है, जबकि ऋणपत्र धारकों को पुनर्भुगतान में प्राथमिकता दी जाती है।
6. **जोखिम** – अंशधारियों की आय में अनिश्चितता के साथ जोखिम अधिक है, जबकि ऋणपत्र धारक की आय में निश्चितता है इसलिए जोखिम कम होती है।

III संस्थागत ऋण / वित्त (Institutional Debt/ Finance)

व्यापारिक संगठनों को दीर्घकालीन वित्त प्रदान करने हेतु केन्द्रीय व राज्य सरकारों द्वारा कुछ विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं की स्थापना की गई है। ये संस्थाएं नये व्यावसायिक उपक्रमों की स्थापना, विस्तारण एवं आधुनिकीकरण में सहायक सेवाएं भी प्रदान करती है।

इनमें से कुछ महत्वपूर्ण संस्थाएं – भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, भारतीय औद्योगिक विनियोग बैंक, भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, आधारभूत विकास वित्त कम्पनी लि., लघु उद्योग विकास बैंक, राज्य औद्योगिक विकास निगम और राज्य वित्त निगम आदि हैं। चूंकि ये संस्थान विकास कार्य के लिए वित्त उपलब्ध कराते हैं इसलिए इन्हें विकास बैंक या विकास संस्थान भी कहते है।

इन विकास बैंकों के अलावा कुछ अन्य वित्तीय संस्थान भी हैं जो कम्पनियों के लिए दीर्घकालीन वित्त की व्यवस्था तथा उनके अंशों व ऋणपत्रों के लिए अभिदान भी करते हैं। ये संस्थान हैं – भारतीय जीवन बीमा निगम, भारतीय सामान्य बीमा निगम और भारतीय यूनिट ट्रस्ट इत्यादि।

वित्तीय संस्थाओं के मुख्य कार्य :–

1. औद्योगिक संस्थाओं को दीर्घकालीन वित्त प्रदान करना।
2. उन व्यावसायिक उपक्रमों की स्थापना में मदद करना जिन्हें बहुत अधिक मात्रा में पूँजी की आवश्यकता होती है तथा जिनकी कार्यावधि भी बहुत लम्बी है।
3. सामान्य रूप से अर्थव्यवस्था की सम्पूर्ण क्षेत्र एवं विशेष रूप से पिछड़े क्षेत्रों के त्वरित विकास हेतु सहायता प्रदान करना।
4. उद्यमियों को प्रोत्साहन, परियोजना सहायता, तकनीकी सहायता और उनके प्रशिक्षण व विकास हेतु विशिष्ट सेवाए प्रदान करना है।
5. नई परियोजनाओं की पहचान, मूल्यांकन एवं क्रियान्वयन में विशिष्ट व पेशेवर प्रबन्ध सेवाएं प्रदान करना।

विशिष्ट वित्तीय संस्थानों का परिचय :

1. भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation of India)

इसकी स्थापना 1948 में की गई थी। इस निगम का मुख्य उद्देश्य बड़े औद्योगिक उपक्रमों को मध्यम व दीर्घकालीन वित्त प्रदान करना है। यह 25 वर्ष तक की अवधि के ऋण देता है। यह नये औद्योगिक उपक्रमों को स्थापित करने व उनकी क्रियाओं के विस्तार एवं विविधीकरण में वित्तीय सहायता प्रदान करता है। यह पूर्व स्थापित औद्योगिक उपक्रमों के संयंत्रों के नवीनीकरण एवं आधुनिकीकरण में भी सहायता करता है। यह उद्योगों के अंशों व ऋणपत्रों का क्रय कर सकता है, उनका निर्गमन, गारण्टी व अभिगोपन का कार्य भी कर सकता है। जून 1993 से इसे भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लिमिटेड (IFCI) का नाम दे दिया गया है।

2. भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम (Industrial Credit & Investment Corporation of India - ICICI)

इस निगम की स्थापना 1955 मे की गई थी। इसका मुख्य उद्देश्य कम्पनियों को 15 वर्ष तक की अवधि के दीर्घकालीन ऋण – उनके नवीन अंशों तथा ऋणपत्रों के अभिदान करने के लिए हुआ था। एकल स्वामित्व व साझेदारी फर्में भी इस निगम से ऋण प्राप्त करने के लिए अधिकृत हैं। यह संस्थान IFCI की भांति ही कम्पनियों द्वारा अन्य स्रोतों से प्राप्त ऋण की गारन्टी देता है तथा कम्पनियों द्वारा निर्गमित अंशों व ऋणपत्रों का अभिगोपन का भी कार्य करता है।

3 मई, 2002 से ICICI का विलय भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग बैंक लिमिटेड में हो गया है। इस विलय के फलस्वरूप भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम समूह का वित्तीय एवं बैंक संबंधी कार्य एक पूर्ण सेवा प्रदान करने वाली बैंकिंग कम्पनी के रूप में हो गया है।

3. भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (Industrial Development Bank of India)

इस बैंक की स्थापना फरवरी, 1964 में की गई। इस बैंक की स्थापना; रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के सहायक के रूप में सभी औद्योगिक उपक्रमों को बिना किसी प्रतिबंध के सभी प्रकार की वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए हुई थी। यह बैंक अन्य वित्त संस्थाओं द्वारा प्रदान किये गये ऋण की पुनर्वित्त की व्यवस्था भी करता है।

अक्टूबर, 2004 से यह बैंक भी एक वाणिज्य बैंक के रूप में परिवर्तित हो गया है और भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के विलय के बाद इसका नामकरण भारतीय औद्योगिक विकास बैंक लिमिटेड हो गया है।

4. भारतीय औद्योगिक निवेश बैंक (Industrial Investment Bank of India)

इस बैंक की स्थापना; जर्जर या बीमार ईकाइयों के पुनर्वास के लिए प्राथमिक एजेंसी के रूप में की गई थी एवं इसे भारतीय औद्योगिक पुननिर्माण बैंक भी कहते थे।

1985 में इसका पुनर्गठन कर इसका नाम भारतीय औद्योगिक पुनर्गठन बैंक कर दिया गया तथा 1997 में इसका नाम फिर बदलकर भारतीय औद्योगिक निवेश बैंक कर दिया गया।

5. भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (Small Scale Industry Development Bank)

इसकी स्थापना 1990 में लघु उद्योग उपक्रमों के प्रवर्तन, वित्त व्यवस्था एवं विकास हेतु प्रमुख वित्त संस्थान के रूप में की गई। यह बैंक लघु उद्योगों को वित्त प्रदान करने वाली शीर्ष संस्था है। यह बैंक लघु उद्योग के विनिमय पत्रों का पुनर्वित्तीकरण, उनको पुनः बट्टे पर भुनाना तथा उनके लिए बहुत सी सहायक सेवाएं भी प्रदान करता है।

6. राज्य वित्त निगम (State Finance Corporation)

सभी प्रकार के औद्योगिक उपक्रमों (एकल, साझेदारी एवं कम्पनी) को वित्तीय सहायता प्रदान करने हेतु सामान्यतया सभी राज्यों में राज्य वित्त निगम की स्थापना की गई।

भारत सरकार ने राज्य वित्त निगम अधिनियम, 1951 के तहत् राज्यों को राज्य वित्त निगम की स्थापना करने का अधिकार दिया गया है ताकि राज्यों में औद्योगिक विकास में तेजी से वृद्धि हो सके। यह निगम दीर्घकालीन ऋण प्रदान करता है।

राज्य वित्त निगम (संशोधन) अधिनियम, 2000 ने देश के परिवर्तनशील आर्थिक एवं वित्तीय वातावरण के परिपेक्ष्य में निगम की कार्यप्रणाली में अधिक लोच प्रदान की है। राजस्थान में इसी आधार पर राजस्थान वित्त निगम (RFC) की स्थापना की गई है।

7. राज्य औद्योगिक विकास निगम (State Industrial Development Corporation)

इन निगमों की स्थापना सन् 1960 से 1970 के प्रारम्भ में विभिन्न राज्यों द्वारा की गई। इन निगमों की स्थापना का उद्देश्य–मध्यम एवं बड़े पैमाने के उद्योगों के प्रवर्तन, विकास एवं पुर्नत्थान से है। ये निगम केन्द्रीय व राज्य सरकारों की विभिन्न प्रोत्साहन योजनाओं के क्रियान्वयन में भी सहायता प्रदान करते है।

8. भारतीय जीवन बीमा निगम (Life Insurance Corporation of India)

इस निगम की स्थापना 1956 में तत्कालीन बीमा कम्पनियों के राष्ट्रीयकरण के पश्चात् की गई। इसकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य जीवन बीमा व्यवसाय है। किन्तु इसके साथ ही यह निगम राष्ट्रीय आवश्यकता एवं उद्देश्य के अनुसार विभिन्न सरकारी उपक्रमों में धन का निवेश भी करता है। यह निगम मुख्य रूप से अपना धन सरकारी प्रतिभूतियों, कम्पनियों के अंशों, ऋणपत्रों एवं बॉण्ड में निवेश करता है। यह नये अंशों व ऋणपत्रों के अभिगोपन के साथ–साथ सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को ऋण भी प्रदान करता है।

9. भारतीय सामान्य बीमा निगम (General Insurance Corporation of India)

इस निगम की स्थापना 1973 में सामान्य बीमा व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण कर की गई। L.I.C. की भांति यह निगम भी अपने धन का विनियोजन करते समय अर्थव्यवस्था के समाज

परक क्षेत्रों को प्राथमिकता देता है तथा सरकारी प्रतिभूतियों, कम्पनियों के अंशों व ऋणपत्रों में निवेश, अभिगोपन तथा आवधिक ऋण भी देता है।

10. भारतीय यूनिट ट्रस्ट (Unit Trust of India)

इसकी स्थापना 1964 में 5 करोड़ रु. की पूंजी से की गई। इस ट्रस्ट की पूंजी R.B.I., L.I.C.,S.B.I. तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं के द्वारा प्रदान की गई। यह विभिन्न योजनाओं जैसे यू एस 64 एवं मास्टर शेयर के अन्तर्गत सर्वसाधारण / जनता की बचत को गतिशीलता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इसके लिए यह औद्योगिक इकाइयों को प्रत्यक्ष रूप में सहायता करता है, उनके अंशों व ऋणपत्रों में निवेश करता है एवं अन्य वित्तीय संस्थानों के साथ भागीदारी करता है।

11. भारतीय निर्यात–आयात बैंक (Export-Import Bank of India)

इस बैंक की स्थापना जनवरी, 1982 में भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाग के कार्य का अधिग्रहण कर की गई। यह बैंक विदेशी वित्त व्यवस्था के क्षेत्र में शीर्ष संस्था है। इस बैंक के मुख्य कार्य – वस्तु एवं सेवाओं के निर्यात हेतु वित्त प्रदान करना, मध्यम व दीर्घकालीन आवश्यकता हेतु आस्थगित देयमान साख की व्यवस्था करना, विदेशों में संयुक्त उपक्रम के व्यवसाय के अंश पूंजी में योगदान हेतु भारतीय व्यवसायियों को ऋण प्रदान करना, निर्यात साख से सम्बद्ध व्यापारिक बैंकों को पुनर्वित प्रदान करना आदि है। यह निर्यात–आयात व्यवसाय में संलग्न व्यक्तियों / संस्थाओं को परामर्श भी प्रदान करता है।

12. उपक्रम पूंजी संस्थान (Venture Capital Fund Institutions)

उपक्रम पूंजी समता वित्त का एक स्वरूप है जिसको युवा उद्यमियों को अधिक जोखिम तथा उच्चलाभ परियोजनाओं की वित्त व्यवस्था करने हेतु गठित किया गया है। यह संस्थान ऐसे उद्यमियों को उनके शोध एवं विकास परियोजनाओं को वाणिज्यिक उपक्रम में लागू करने के लिए प्रारम्भिक पूंजी व प्रबन्धकीय सहायता प्रदान करता है।

उपक्रम पूंजी अवधारणा का विकास भारत में 1986–87 में हुआ जब भारत सरकार ने उपक्रम कोष (Venture Fund) के निर्माण की घोषणा की। साथ ही यह भी निश्चय किया गया कि इस कोष का संचालन भारतीय औद्योगिक विकास बैंक करेगा। इस घोषणा के क्रियान्वयन का कार्य भारतीय साख व निवेश निगम, भारतीय औद्योगिक विकास निगम एवं भारतीय स्टेट बैंक व केनरा बैंक (राष्ट्रीयकृत बैंक) ने किया।

सन् 1992–93 में भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक ने लघु उद्योग के क्षेत्र में नवीन खोजों को वित्तीय सहायता प्रदान करने हेतु 'उपक्रम पूंजी कोष' की स्थापना की।

IV. संचित आय या लाभ (Retention of Funds)

कम्पनी साधारणतया अपनी पूरी आय को अंशधारियों में लाभांश के रूप में न बांटकर उसके एक भाग को व्यवसाय में भविष्य में उपयोग के लिए संचित कर लेती है। इसे संचित आय / स्वयम् वित्तीयकरण / लाभ का पुनः विनियोग भी कहते हैं। इसे स्वतन्त्रता पूर्वक प्रयोग कर सकते हैं संचय की मात्रा व्यवसाय की मजबूती का घोतक होता है।

V. पट्टा वित्तीयन (Lease Financing) :

पट्टा एक अनुबन्ध होता है। जिसमें एक पक्ष (सम्पत्ति का स्वामी) दूसरे पक्ष (जिसके पक्ष में सम्पत्ति लीज पर दी जा रही है) को सावधिक भुगतान के बदले में सम्पत्ति के प्रयोग का अधिकार देता है। सम्पत्ति का स्वामी पट्टादार (Lessor) कहलाता है, जबकि सम्पत्ति का उपयोगकर्त्ता पट्टाधारी (Lessee) कहलाता है। पट्टे के माध्यम से वित्त फर्म के आधुनिकीकरण एवम् विविधीकरण के लिए महत्वपूर्ण साधन है। इस प्रकार वित्तीयन ऐसी सम्पत्तियों के क्रय करने के लिए अधिक प्रचलित है जो तीव्रता से बदल ले तकनीकी विकास के कारण शीघ्र अप्रचलित हो जाती है, जैसे कम्प्यूटर्स, इलेक्ट्रोनिक उपकरण आदि ।

VI. अन्तर्राट्रीय वित्तीय स्रोत (International Financial Resources)

दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में विदेशी स्रोतों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा हैं। विदेशी स्रोत अग्रांकित हैं :–

i. बाह्य–ऋण (Foreign Loans)

इसके अन्तर्गत वाणिज्यिक ऋण एवं सेवा ऋण आते हैं जो दीर्घकालीन परिपक्वता के साथ रियायती ब्याज दर पर प्राप्त होते हैं। रियायती ऋण के मुख्य स्रोत अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, भारतीय सहायता संघ, एशियन विकास बैंक, विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निमाण एवं विकास बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम है।

विश्व बैंक उच्च प्राथमिकता वाली विशिष्ट औद्योगिक इकाइयों को ऋण सीधे रूप में या सरकारी एजेन्सी के माध्यम से प्रदान करता है।

अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम जो कि विश्व बैंक की सह–सम्बद्ध संस्था है जो औद्योगिक उपक्रमों को 8 से 10 वर्षों की अवधि के लिए ऋण स्वीकृत करती है। ऐसे ऋणों को सरकार की गारन्टी की आवश्यकता नहीं होती।

जहाँ तक बाह्य व्यापारिक ऋणों का प्रश्न है, इनके मुख्य स्रोत निर्यात साख एजेंसियाँ होती हैं जैसे कि – Exim Bank, जापान आयात निर्यात बैंक, यू.के., निर्यात साख एवं गारन्टी निगम और अन्य सरकारी व बहु–आयामी एजेंसियाँ। भारतीय फर्मों के विस्तार हेतु विनियोग के लिए बाह्य वाणिज्यिक ऋण एक महत्वपूर्ण स्रोत है जो भारत सरकार द्वारा अनुमति प्राप्त है।

ii. विदेशी निवेश (Foreign Investment)

भारत में विदेशी निवेश, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के रूप में या विदेशी सहयोग के रूप में पाया जाता है। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश से तात्पर्य विदेशियों द्वारा भारतीय कम्पनियों के अंशों व ऋणपत्रों में भागीदारी से है। इसे पोर्ट फोलियो विनियोग भी कहते हैं और ये अमेरिकन डिपोजिट्री रसीद (ADR/American Deposit Receipts) ग्लोबल डिपोजिट्री रसीद (GDR/Global Deposit Receipts) और विदेशी मुद्रा परिवर्तनीय बॉण्डों (Foreign Currency Convertible Bonds/FCCB) में अभिदान भी करते हैं।

वैकल्पिक रूप में कुछ कम्पनियाँ परिचालन के किसी निश्चित उद्देश्य से भारत में स्थापित की जाती है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भी अपनी सहायक कम्पनी या शाखा भारत में स्थापित कर सकती हैं। ये विदेशी निवेश –तकनीकी भागीदारी, तकनीकी ज्ञान को प्रदान करके या पेटेंट या मशीनरी प्रदान करके की जा सकती है। उदारीकरण के पश्चात् भारत सरकार विदेशी निवेश को आकर्षित करने में अधिक सफल हुई है। यह इसलिए सम्भव हुआ है क्योंकि भारत सरकार ने विदेशी निवेश को 34 उद्योगों में उनकी समता पूंजी में 51% तक की भागीदारी के लिए स्वीकृति प्रदान कर दी है। वे उद्योग जो स्वचालित स्वीकृति के अंदर नहीं आते, उनके मामलों को देखने के लिए एक विशेष बोर्ड (विदेशी निवेश प्रवर्तन बोर्ड) स्थापित किया गया है। विदेशी निवेश का मुख्य लाभ यह है कि सामान्यतया विदेशी निवेशक वित्तीय निवेश के साथ–साथ तकनीकी विशेषज्ञता एवं आधुनिक मशीनें भी लाते हैं। विदेश निवेश का एक मुख्य दोष यह है कि लाभ का बड़ा हिस्सा विदेशी निवेशक को चला जाता है।

iii. अप्रवासी भारतीय (Non Resident Indians)

भारतीय मूल के लोग जो विदेशों में रहते हैं, उन्हें अप्रवासी भारतीय कहते है। ये भारत में दीर्घकालीन वित्त के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इनके द्वारा वित्त के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान – विदेशी मुद्रा अप्रवासी खाता और अप्रवासी (बाह्य) मुद्रा खाता है। विदेशी पूंजी में अप्रवासी जमा का अंश 30% से अधिक हो गया है और इसमें निरन्तर इजाफा हो रहा है।

हालांकि अप्रवासी भारतीयों का वित्त–स्रोत मंहगा स्रोत है। साथ ही भारत सरकार ने उनको अंशपत्रों/ऋणपत्रों को विक्रय करने और अपना धन वापस लेने के लिए छूट (विकल्प) प्रदान कर रखी है।

सारांश :

किसी भी व्यापार को प्रारम्भ करने एवं उसके सुगम संचालन के लिए पर्याप्त धन/पूँजी की आवश्यकता रहती है। प्रत्येक व्यवसाय संचालन हेतु सम्पत्तियों का क्रय तत्पश्चात् दैनिक संचालन हेतु कार्यशील पूँजी व्यवस्था करनी होती हैं। प्रारम्भिक एवं कार्यशील पूँजी की व्यवस्था के लिए आन्तरिक स्रोत अच्छे माने जाते हैं किन्तु बाह्य स्रोत से भी धन की व्यवस्था की जाती है इसके लिए अल्पकालीन वित्त व्यवस्था के विभिन्न विकल्प उपलब्ध है। जैसे–बैंक अधिविकर्ष, विपत्रों को बट्टे पर भुनाना, नकद शाख, आपूर्तिकर्त्ता से उधार आदि। किन्तु व्यवसाय की स्थापना हेतु भूमि–भवन, मशीन–उपकरण, प्रौद्योगिकी एवं पेटेन्ट लाइसेन्स जैसी स्थायी सम्पत्तियों की प्राप्ति एवं निर्माण के लिए बहुत बड़ी पूँजी की आवश्यकता होती है जिसे व्यापार के स्वामी स्वयं की पूँजी–स्वत्व पूँजी से या वित्त बाजार में उपलब्ध दीर्घकालीन ऋण से पूरी करते हैं। बैंक से सावधिक ऋण द्वारा या वित्तीय संस्थाओं से भी ऋण लेकर प्राप्त की जा सकती हैं। आज वैश्विक आर्थिक युग में अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएँ भी दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध करवाते हैं। उक्त सभी वित्त के विकल्पों में से किसी एक या अधिक विकल्प का चयन व्यवसाय के आकार, उद्देश्य एवं कार्यक्षेत्र पर निर्भर करता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न :

1. समता अंशधारी कहलाते है –

   अ. कम्पनी के स्वामी

   ब. कम्पनी के साझेदार

   स. कम्पनी के अधिकारी

   द. कम्पनी के कर्मचारी

2. सार्वजनिक जमा वे जमा हैं, जिनको प्राप्त किया जाता है –

   अ. निवेशकों से

   ब. अंकेक्षकों से

   स. जनता से

   द. स्वामियों से

3. पट्टा करार में पट्टाधारी को निम्न अधिकार प्राप्त है –

   अ. पट्टाकार द्वारा अर्जित लाभ

   ब. परिसम्पत्ति का विशिष्ट अवधि के लिए उपयोग

   स. सम्पत्तियों का विक्रय

   द. संगठन के प्रबन्ध में भाग लेने का अधिकार

4. वाणिज्यिक–पपत्रों की भुगतान अवधि सामान्यत : होती है–

   अ. 20 से 40 दिन

   ब. 60 से 90 दिन

   स. 120 से 365 दिन

   द. 90 से 364 दिन

5. दीर्घकालीन ऋण की अवधि होती है–

   अ. एक वर्ष ब. तीन वर्ष

   स. दो वर्ष द. पाँच या अधिक वर्ष

अति–लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. बिल को बट्टे पर भुनाने का क्या अर्थ है ?
2. पूर्वाधिकार अंशों का अर्थ बताइये
3. पट्टा पर वित्तीयन से क्या आशय है ?
4. बैंक–अधिविकर्ष क्या है ?
5. स्वामित्व कोष का अर्थ बताइये
6. संचित आय क्या है ?
7. उपक्रम कोष क्या है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. नकद साख एवं बैंक अधिविकर्ष में कोई चार अन्तर बतलाइये।
2. समता अंशों एवं पूर्वाधिकार अंशों में अन्तर बतलाइये । (कोई चार)
3. शोधनीय एवं अ–शोधनीय ऋणपत्र क्या है ?
4. अंशों एवं ऋणपत्रों में अन्तर बतलाइये।
5. पोर्टफोलियो विनियोग को समझाइये।

निबंधात्मक प्रश्न –

1. व्यापारिक साख एवं बैंक साख को व्यावसायिक इकाइयों के अल्पावधि वित्त के स्रोत के रूप में विस्तार से समझाइये।
2. आधुनिकीकरण एवं नवीनीकरण के लिए वित्तीयन के लिए बडी औद्योगिक इकाई किन स्रोतों से पूंजी जुटा सकती है ? सविस्तार वर्णन किजिए।
3. दीर्घकालीन वित्तीय स्त्रोतों का सविस्तार वर्णन किजिए।

उत्तर : (1) अ (2) स (3) ब (4) द (5) द

अध्याय–6

कार्यालय
(Office)

व्यवसाय का आधुनिक वातावरण निरंतर जटिल और विकसित होता जा रहा है। व्यावसायिक गतिविधियां जैसे वित्त, विपणन, कर्मचारी प्रबंधन, उत्पादन आदि के संयोजन और समन्वय हेतु एक ऐसे स्थान की आवश्यकता होती है जहां से इन सभी गतिविधियों का संचालन और समन्वय किया जा सके। इस दृष्टि से कार्यालय एक महत्त्वपूर्ण स्थान है जहां से केंद्रीय रूप मे इन क्रियाओं का प्रभावी नियमन होता है।

सरल शब्दों में, कार्यालय एक स्थान है जहां से किसी भी संस्थान के कार्य विशेष की गतिविधियों का संचालन किया जाता है। यह स्थान किसी व्यावसायिक अथवा सार्वजनिक महत्त्व के कार्य से संबन्धित हो सकता है। जैसे कि राजकीय कार्यालय अथवा व्यावसायिक कार्यालय। यह एक स्थान होता है जो विविध कार्यकीय गतिविधियों, इससे संबन्धित कर्मचारियों, सूचनाओं, कागजातों को केंद्रीकृत करता है। यहाँ से संस्थान की प्रशासनिक, लिपिकीय क्रियाओं का संचालन और नियंत्रण होता है। यहाँ संस्थान से संबन्धित अभिलेखों का संधारण होता है। संस्था भले ही व्यावसायिक महत्त्व की हो या सार्वजनिक महत्त्व की, यहाँ से ही उच्च स्तरीय प्रबंधन अपनी सम्पूर्ण गतिविधियों को देखता है।

कार्यालय की विशेषताएँ (Characteristics of Office) :

1. **स्थान (Place)** : कार्यालय का कोई निश्चित स्थान होता है, जहां से सभी कार्य संचालित होते हैं। इस स्थान से सभी व्यावसायिक गतिविधियों का निर्देशन और नियंत्रण होता है। स्थान के चयन हेतु कई कारक निर्भर करते हैं– जैसे क्षेत्रीय कार्यालयों से दूरी, आधारभूत ढांचे की उपलब्धता, कार्मिकों की उपलब्धता आदि।

2. **आवास सुविधाएं (Residential at Facilities)** : किसी स्थान पर कार्यालय के लिए उपयोगी आवास और भवन के साथ ही उपयोगी सुविधाओं का निर्माण करवाया जाता है। ये सुविधाएं व्यवसाय की और वहाँ के कार्मिकों की आवश्यकताओं के अनुरूप तो होती ही है, साथ ही आगंतुकों का भी ध्यान रखना आवश्यक होता है।

3. **विभागीकरण (Departmentation)** : कार्यालय मे विभिन्न विभागों का बंटन होता है, जिनके विभाजन के अनुसार कार्य होते हैं। ये विभाग संख्या और रचना मे व्यवसाय की प्रकृति, आवश्यकता, कार्मिकों की संख्या, क्षेत्रीय कार्यालयों की संख्या आदि पर निर्भर करते हैं। विभागीकरण से ही कार्यालय का कार्यात्मक स्वरूप बनता है।

4. **कार्य दशाएँ (Working Conditions)** : समय, सुविधा, व्यवस्था के माध्यम से कार्य दशाओं का निर्माण होता है। इनमें सम्मिलित है– कार्यालय में कार्य करने का समय, कार्मिकों की उससे संबन्धित उपलब्धता और अन्य दशाएँ। इसमें उपभोक्ताओं और कर्मचारियों की आवश्यकताओं का ध्यान रखना जरूरी है।

5. **लिपिकीय कार्मिक (Clerical Staff)** : अभिलेखों के संकलन, व्यवस्थापन और संरक्षण के लिए लिपिकीय कर्मचारी कार्यालय मे होते हैं। प्रत्येक कार्यालय में लिपिकीय कर्मचारी अवश्य होते हैं। इन कर्मचारियों को कार्यालय का मूलाधार कहा जा सकता है क्योंकि उच्च अधिकारियों मे निर्देशों की पालना से अधिकतर कार्य यही कर्मचारी वर्ग संपादित करता है।

6. **उपकरण (Equipment)** :उपयोगी उपकरणों से कार्यालय को सुसज्जित कर कर्मचारियों की कार्यक्षमता बढाई जाती है। ये उपकरण पारंपरिक भी हो सकते हैं और आधुनिक भी। परंपरागत उपकरण वे हैं जो लंबे समय से काम में लिए जा रहे हैं परंतु कार्यालय मे तकनीकी के विकास के कारण कई नए प्रकार के उपकरण भी आ गए हैं जिनका प्रचलन पिछले 25 वर्षों में हुआ है जैसी कि कम्प्युटर, स्कैनर आदि।

7. **सूचना सेवाएँ (Information Services)** : संस्थान के विस्तृत कार्यक्षेत्र में नियुक्त कर्मचारियों एवं उपभाक्ताओं के लिए कार्यालय, सूचना प्रदान करने का स्थान होता है। कार्यालय को सूचना सेवाएँ प्रदान करने का स्रोत और केंद्र होना चाहिए। जहां से समन्वय की आवश्यकता, नियंत्रण और प्रति पुष्टि होती है।

8. **संगठन(Organisation)**: उपर्युक्त विशेषताओं के समुचित संगठन से ही कार्यालय की संपूर्णता होती है। ये संगठन रचनाएँ कई प्रकार की हो सकती हैं। जैसे स्टाफ, रेखा, समिति, क्रियात्मक इत्यादि। इनकी रचना भी व्यवसाय की प्रकृति और आवश्यकता पर निर्भर करती है।

कार्यालय का महत्त्व (Importance of office)

1. **कार्यालय व्यवसाय की पहचान होता है।** यही वह स्थान होता है जहां से कंपनी को जाना और पहचाना जाता है। किसी कंपनी की अवस्थिति का प्रमाण इसका कार्यालय होता है। कंपनी एक्ट मे पंजीकरण हेतु भी कार्यालय होना अनिवार्य है।

2. **अभिलेखों की उत्पत्ति और संरक्षण हेतु कार्यालय महत्त्वपूर्ण है।** व्यवसाय से संबन्धित जो भी घटनाएँ घटित हैं– चाहे उनका लेखाशास्त्रीय महत्त्व हो या विपणन और कर्मचारी संबंधी, कार्यालय मे इनके अभिलेखों का व्यवस्थित संधारण और संरक्षण किया जाता है। इन कार्यों के लिए अलग अलग कर्मचारी होते हैं जो स्वयं से संबन्धित अभिलेखीय कार्य करते हैं।

3. **प्रबंधन के कार्यों के सफल निष्पादन के लिए कार्यालय एक केंद्रीय रचना है।** नेतृत्व, समन्वय, सम्प्रेषण, नियंत्रण, मूल्यांकन जैसे मूलभूत कार्य कार्यालय से ही किए जाते हैं। कार्यालय में प्रबन्धक बैठते तो हैं ही, क्षेत्रीय इकाइयों मे कार्यरत प्रबन्धक भी कार्यालय से निर्दिष्ट गतिविधियों के अनुसार ही कार्य करते हैं।

4. **यह रोजगार प्रदान करता है।** व्यवसाय रोजगार प्रदान करने का आयाम है। कार्यालय मे भी विविध कार्यों के लिए भिन्न–भिन्न कर्मचारी होते हैं, जिनसे योग्य और अनुभवी लोगों को रोजगार मिलता है। यह कार्यालय का सामाजिक उत्तरदायित्व सम्पादन भी है।

5. **यह व्यवसाय का पूरक है।** पूरक का अर्थ है– सहायक और पूर्ण करने वाला। व्यवसाय मे अनेक गतिविधियां होती हैं, जिनके पूरक के रूप मे कार्यालय काम करता है।

6. **कार्यालय कार्य करना कला और विज्ञान है।** कार्यालय में विज्ञान के सिद्धांतों की भांति व्यवस्थित नियमों पर तो कार्य होता ही है, साथ में अपनी बेहतर शैली, रोचकता और आकर्षण के प्रयासों से किसी कार्यालय को व्यावसायिक कला की भी आवश्यकता होती है।

8. **कार्यालय कार्य से व्यावसायिक अनुशासन का निर्माण होता है।** अनुशासन हेतु कार्यालय से नियमों और योजनाओं के प्रेक्षण का सतत कार्य चलता रहता है। जिससे संगठन तय नीति और विधानों पर चलता है।

कार्यालय के प्रमुख कार्य: (Functions of office)

अ. प्राथमिक कार्य (Primary Function):

1 **सूचनाएँ प्राप्त करना.** विभिन्न स्थानीय, क्षेत्रीय कर्मचारियों, प्रभागों और प्रबन्धकों से सूचनाएँ एकत्र करना कार्यालय का प्रमुख कार्य है।

2 **सूचनाओं को व्यवस्थित करना.** एकत्र सूचनाओं को भौतिक या डिजिटल प्रारूप मे व्यवस्थित किया जाता है। प्रत्येक कार्यानुसार पृथक फाइल बनायी जाती है।

3 **सूचनाओं का विश्लेषण और सम्पादन.** एकत्र और व्यवस्थित सूचनाओं का व्यवसाय की दीर्घकालिक और तात्कालिक आवश्यकताओं के लिए विश्लेषण और सम्पादन किया जाता है। इन कार्यों के लिए अलग अलग कर्मचारी भी हो सकते हैं यदि कार्य अधिक हो तो और कम कार्य की स्थिति मे एक कर्मचारी भी विश्लेषण और सम्पादन करता है।

4 **व्यवसाय की सम्पत्तियों का परिरक्षण.** व्यवसाय की विभिन्न भौतिक और अभौतिक संपत्तियाँ होती हैं, जिनके परिरक्षण का केंद्रीकृत कार्य कार्यालय द्वारा होता है। इन सम्पत्तियों के अर्जन, ह्रास, विक्रय आदि से संबन्धित सूचनाएँ कार्यालय में रखी जाती है।

5 **वित्त का व्यवस्थापन.** चूंकि कंपनी के मुख्य नियंत्रक कार्यालय में ही बैठते हैं अतः वित्तीय कार्यों और वित्त व्यवस्थापन की जिम्मेवारी कार्यालय और इसके कर्मचारियों के कार्य क्षेत्र में आती है।

ब. द्वितीयक कार्य (Secondary function)

1 **सम्प्रेषण.** कार्यालय से अधिकारी अपने अधीनस्थों को संदेश प्रेषित करते हैं। कार्यालय के भीतर भी सम्प्रेषण होता है– विभिन्न कर्मचारियों और अधिकारियों, विभागों के मध्य।

2 **गणनात्मक एवं सांख्यिकी कार्य.** कार्यालय से वांछित गणनात्मक और सांख्यिकी कार्य किए जाते हैं जो लेखा, उत्पादन प्रबंधन, कर्मचारी वेतन आदि से संबन्धित हो सकते हैं।

3 **नियोजन एवं सूचीकरण.** कंपनी की दैनिक, साप्ताहिक मासिक आदि नियोजन गतिविधियों का सम्पादन और उनका सूचीकरण कार्यालय से होता है।

4 **समन्वय एवं निर्देशन.** समन्वय और निर्देशन मुख्यतः प्रबन्धकों के कार्य हैं। स्पष्ट है कि कार्यालय में प्रबन्धकों के माध्यम से ही ये कार्य संपादित किए जाते हैं।

5 **पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण.** व्यावसायिक गतिविधियों के सफल

मूल्यांकन, प्रतिपुष्टि, सुधार आदि से ही व्यवसाय की उद्देश्यपूर्ति होती है। इस दृष्टि से कार्यालय से पर्यवेक्षण और नियंत्रण के कार्य किए जाते हैं।

कार्यालय के प्रकार (Types of office)

1. **कार्यों के आधार पर:** कार्यालय पर किए गए कार्यों के आधार पर कार्यालय को दो भागों मे विभाजित कर सकते हैं– 1 मुख्य कार्यालय 2 शाखा कार्यालय।

   मुख्य कार्यालय एक होता है। शाखा कार्यालय अनेक हो सकते हैं। मुख्य कार्यालय से शाखा कार्यालयों का नियंत्रण होता है। शीर्ष अधिकारी मुख्य कार्यालय मे बैठते हैं।

2. **अवस्थिति के आधार पर:** अवस्थिति के आधार पर कार्यालय के दो प्रकार संभव है– 1 क्षेत्रीय कार्यालय 2 स्थानीय कार्यालय। किसी कार्यालय के उपकार्यालय क्षेत्रों और स्थानों के अनुसार बांटे जाते हैं। क्षेत्रीय कार्यालयों के उपकार्यालय स्थानीय कार्यालय होते हैं।

3. **विधिक स्थिति के आधार पर** : व्यवसाय वैधता पंजीकरण के आधार पर प्रकार हैं– 1 पंजीकृत कार्यालय 2 अन्य कार्यालय। कंपनी एक्ट या किसी संबन्धित विधान मे व्यवसाय अपने कार्यालय का पंजीकरण जिस स्थान और कार्यालय के नाम से करवाता है वह पंजीकृत कार्यालय कहलाता है। कंपनी के अन्य कार्यालय अपंजीकृत शाखा कार्यालय होते हैं।

4. **विस्तार आकार के आधार पर:** आकार के आधार पर कार्यालय के विभाजन हो सकते हैं– 1 वृहद 2 मध्यम 3 लघु इनकी रचना मे कार्यालय की भौतिक आकार और आकृति तो आती ही है साथ ही कर्मचारियों और सुविधाओं की संख्या भी आधार बनते हैं।

5. **संगठनात्मक संरचना के आधार पर:** यह कार्यालय के विभाजन का सबसे महत्त्वपूर्ण आधार है। संगठन की संरचना के आधार निम्न हो सकते हैं–

   1 रेखा

   2 रेखीय एवं स्टाफ (कर्मचारी)

   3 समिति

   4 क्रियात्मक

1 रेखा संगठन : रेखा संगठन दो प्रकार के होते हैं– 1 शुद्ध रेखा संगठन 2 विभागीय रेखा संगठन।

शुद्ध रेखा संगठन का तात्पर्य एक ऐसे संगठन से है जिसमें एक स्तर पर कार्य करने वाले व्यक्तियों की क्रियाएँ समान होती है और सुविधाजनक नियंत्रण के लिए क्रियाओं का वर्गीकरण किया जाता है। इस प्रकार के संगठन की मान्यता है कि एक स्तर पर कार्य करने वाले व्यक्तियों की निष्ठाएँ एक सी होती हैं। लेकिन व्यवहार मे यह मान्यता केवल उच्च स्तरीय प्रबंध पर ही लागू होती है, निम्न स्तरीय प्रबंध पर नहीं।

विभागीय रेखा संगठन में संस्थान की विभिन्न क्रियाओं को कई विभागों जैसे –उत्पादन, वित्त सेविवर्गीय आदि मे विभाजित कर दिया जाता है। सभी विभाग अपने अपने विभागाध्यक्ष के अधीन कार्य करते हैं और विभाग का प्रत्येक कर्मचारी उसी के अधीन कार्य करता है, विभागाध्यक्ष उन्हें आदेश निर्देश देता है तथा कर्मचारी उनके प्रति उत्तरदायी होते हैं।

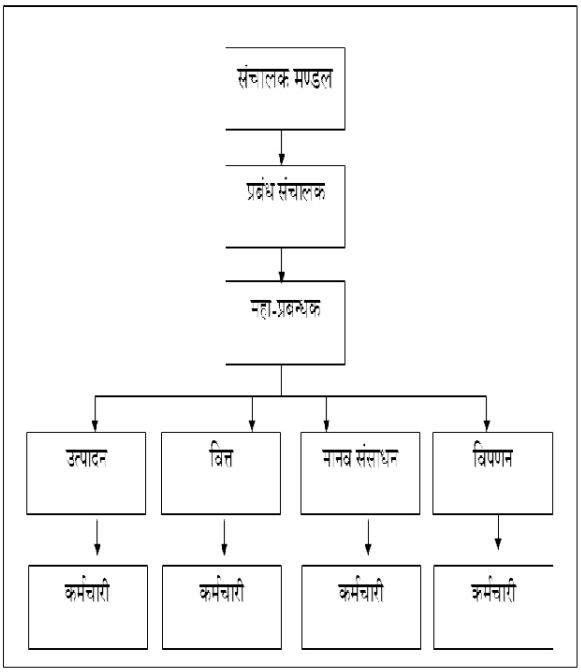

रेखा संगठन की विशेषताएँ–

1 अधिकार सत्ता एक सीधी रेखा में ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित होती है।

2 इसमें अधिकारियों एवं अधीनस्थों के मध्य प्रत्यक्ष सम्बन्ध लम्बवत रूप में होते हैं।

3 सभी आदेश निर्देश केवल एक ही व्यक्ति द्वारा जारी किए जाते हैं।

4 प्रत्येक अधिकारी या अधीनस्थ अपने निकटतम अधिकारी से आदेश प्राप्त करता है।

2 रेखीय एवं स्टाफ (कर्मचारी) संगठन : कर्मचारी संगठनात्मक कार्यालय मे रेखा प्रबन्धकों की सहायता के लिए कर्मचारी प्रबन्धकों की नियुक्ति परामर्शदाताओं के रूप मे की जाती है, इस प्रारूप मे विशेषज्ञ संबन्धित समस्या पर विचार करके रेखाधिकारी को परामर्श देते हैं। इस संरचना में रेखाधिकारी समस्त आदेशात्मक एवं निर्देशात्मक कार्य करते हैं और विशेषज्ञ संबन्धित समस्या पर विचार कर रेखाधिकारी को परामर्श देते हैं। जिसे वे स्वीकार या अस्वीकार करने के लिए स्वतंत्र होते हैं। अतः वह स्टाफ कर्मचारी सोचने एवं परामर्श से संबंध रखते हैं और रेखा अधिकारी कार्य करने और करवाने से संबंध रखते हैं। रेखाधिकारियों को अपने अधीनस्थों को आदेश देने का पूर्णाधिकार होता है।

रेखीय व कर्मचारी संगठन की विशेषताएँ–

1 इसमें सोचने और कार्य करने का काम अलग अलग व्यक्तियों का होता है।

2 अधिकार ऊपर से नीचे की ओर सीधी रेखा मे प्रवाहित होते हैं।

3 रेखा–प्रमुख अधिकारी, जबकि स्टाफ कर्मचारी विशेषज्ञ होते हैं।

4 दायित्व नीचे से ऊपर की ओर सीधी रेखा में प्रवाहित होता है।

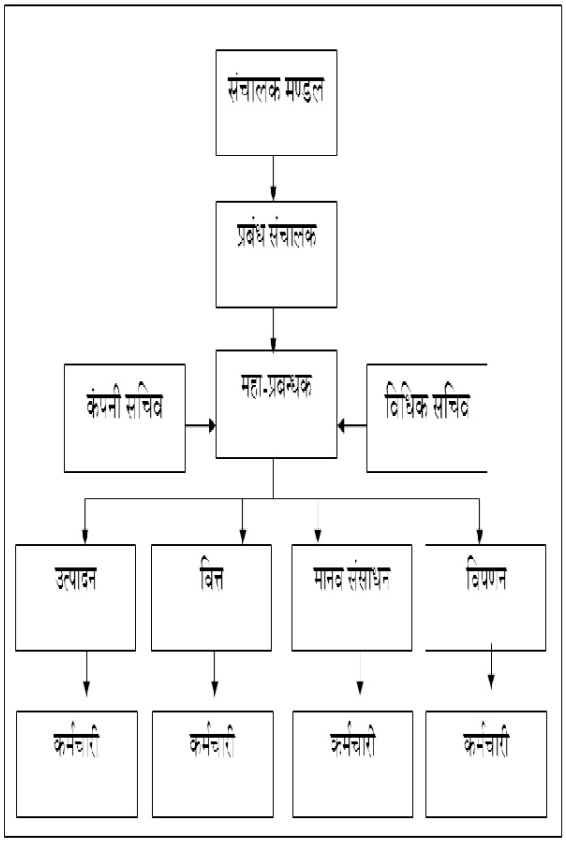

3 क्रियात्मक संगठन कार्यालय : इस प्रारूप में क्रियाओं के विभिन्न समूहों के लिए विशेषज्ञों की नियुक्ति की जाती है और विशेषज्ञों को अपने अपने विशिष्ट कार्यों के संबंध में कर्मचारियों को आदेश देने हेतु रेखा अधिकार सत्ता प्रदान की जाती है। इस संगठन संरचना में अधिकार सत्ता की रेखाएँ कई क्रियात्मक विशेषज्ञों के मध्य होती हुई प्रत्येक कर्मचारी तक पहुँचती है। इसे क्रियात्मक फोरमैनशिप भी कहते हैं। इसमें अधिकारियों को विभागों की बजाय कार्यों के आधार पर बांटा जाता है और जिसे भी विभिन्न छोटे–छोटे कार्यों में विभाजित करते हैं एवं विशेषज्ञ को सौंपते हैं ताकि विशिष्टीकरण के लाभ उठाए जा सकें।

क्रियात्मक संगठन की विशेषताएँ–

1 यह प्रारूप श्रम विभाजन के सिद्धान्त पर आधारित है।

2 इसमें कार्यों को प्रत्येक क्षेत्र संबन्धित या विशिष्ट क्रियाओं के आधार पर विभाजित किया जाता है।

3 इसमें विशेषज्ञों द्वारा कार्यों का निष्पादन किया जाता है।

4 इसमें नियोजन एवं क्रियान्वयन में पृथकता होती है।

4 समिति संगठन कार्यालय : सामान्य शब्दों मे समिति व्यक्तियों का समूह होता है जिन्हें इस शर्त पर कुछ कार्य सौंपे जाते हैं कि वे उन कार्यों को मिलकर अथवा सम्मिलित रूप से करें। दूसरे शब्दों में कार्यालय में ऐसी समितियों का निर्माण किया जा सकता है जो स्वतंत्र रूप से किसी कार्य विशेष के सम्पादन के लिए बनती हैं। यह कर्मचारियों की एक अनौपचारिक समिति है जिसमें तीन या इससे अधिक व्यक्ति होते हैं, जो नियुक्त या चुने हुए होते हैं, यह सौंपे गए मामलों तथा अपने सामने आने वाली समस्याओं पर विचार विमर्श करने के लिए आपस में मिलते हैं।

समिति संगठन की विशेषताएँ–

1 यह प्रबंधकीय कर्मचारियों की एक अनौपचारिक समिति है।

2 समिति– चयन पर नियुक्त किए गए व्यक्तियों का एक समूह है।

3 समिति के सदस्यों में स्वतंत्र समूहिक विचार विमर्श होते हैं, इसके पश्चात निर्णय लिए जाते हैं।

4 समिति के सदस्यों की संयुक्त जिम्मेदारी होती है।

सारांश :

किसी भी संगठन की स्थापना, संचालन एवं विस्तार हेतु एक ऐसे कार्यस्थल की आवश्यकता रहती है जो संगठन के शीर्ष अधिकारियों या नेतृत्व को आधारभूत सहयोग कर सके व उनको सुविधायुक्त वातावरण दे सकें। कार्यालय संगठन की धुरी या केन्द्र बिन्दु होता है, जहाँ सभी सूचनाएँ, व्यक्ति एवं पक्षकार एकत्र होते हैं। आवश्यकतानुरूप संयोजन, नियन्त्रण एवं प्रबन्धन कर, पुनः

संगठन के अनुरूप तैयार कर, यथोचित स्थान पर स्थापित व प्रेषित करने का कार्य किया जाता है।

कार्यालय का स्वरूप व अभिन्यास संगठन की प्रकृति एवं उद्देश्य पर आधारित होता है। संगठन की संरचना ही सम्प्रेषण की विधि/मॉडल निर्धारित करता है यह सम्प्रेषण स्वरूप व संगठन के उद्देश्य ही कार्यालय की संरचना एवं उपकरणों के प्रयोग को निर्धारित करता है। कार्यालय में कार्यरत कर्मचारी शीर्ष नेतृत्व के निर्देशानुसार कार्य करते हैं किन्तु कार्य प्रणाली कर्मचारियों की योग्यता, उपकरणों के प्रयोग की दक्षता एवं उनके अनुभव प्रबन्धन दर्शन से बनती है व विकसित होती है।

कार्यालय कर्मचारियों की कुशलता कार्यालय की कार्यदशाएँ, प्रबन्धक एवं शीर्ष प्रबन्ध की कार्यशैली तथा प्रौद्योगिकी वातावरण से प्रभावित होती हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न :

1. जिस स्थान से प्रशासनिक व प्रबन्धकीय कार्य का संचालन होता है वह कहलाता है–
   (अ) कारखाना (ब) कार्यालय
   (स) शोध विभाग (द) कम्प्यूटर केन्द्र
2. संस्थान या व्यापार से सम्बन्धित बाह्य पक्षकारों से संवाद व मेल–जोल का यथोचित स्थान है–
   (अ) रेस्टोरेन्ट (ब) पार्क
   (स) कार्यालय (द) सभागार
3. व्यवसाय या संस्थान के कुशल संचालन की पृष्ठभूमि में समग्र सहायता करने वाला विभाग है–
   (अ) वित्त विभाग (ब) विक्रय विभाग
   (स) उत्पादन विभाग (द) कार्यालय विभाग
4. व्यापार या संस्था सम्बन्धी योजना निर्माण, व्यूहरचना निर्माण कानुनी प्रक्रिया, प्रलेख निर्माण, रिपोर्ट निर्माण आदि कार्य किस विभाग में सम्पादित होते हैं–
   (अ) कारखाना विभाग (ब) कार्मिक व वित्त विभाग
   (स) शोध व अनुसंधान विभाग (द) कार्यालय विभाग
5. 'कार्यालय' किस कार्य हेतु संस्था/व्यापार में खोला जाता है–
   (अ) सूचनाओं के संग्रहण व प्रेषण के लिए
   (ब) कर्मचारियों की भर्ती व केरियर संबंधी कार्य के लिए
   (स) अन्य विभागों के सहयोग व समन्वय के लिए
   (द) उक्त सभी कार्यों के लिए
6. कार्यालय के लिए उपयुक्त स्थान होता है.
   (अ) औद्योगिक क्षेत्र (ब) सुदुर वन क्षेत्र
   (स) सुविधायुक्त आवासीय क्षेत्र
   (द) उपरोक्त में से कोई नहीं
7. कार्यालय के उपकरणों व मशीनों का प्रयोग होता है–
   (अ) उत्पादन के लिए (ब) विक्रय वृद्धि के लिए
   (स) कुशलता व क्षमता वृद्धि के लिए
   (द) शोध व अनुसंधान के लिए
8. कार्यालय संगठन का ढांचा किस पर निर्भर करता है–
   (अ) भौगोलिक स्थिति पर
   (ब) संयन्त्र अभिन्यास पर
   (स) विक्रय की मात्रा पर
   (द) प्रबन्धकीय सम्प्रेषण की दिशा व दशा पर

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. कार्यालय किसे कहते हैं?
2. कार्यालय में कौन व्यक्ति कार्य करते हैं?
3. कार्यालय में कौन– कौनसे उपकरण होते हैं?
4. कार्यालय मे स्थान का क्या महत्त्व है?
5. लिपिकीय कार्मिक किसे कहते हैं?
6. कार्यालय मे कौन–कौनसे विभाग हो सकते हैं?
7. कार्यालय मे कौनसी सुविधाएं होनी चाहिए?
8. कार्य दशाओं से आप क्या समझते हैं?
9. मुख्य कार्यालय किसे कहते हैं?
10. शाखा कार्यालय किसे कहते हैं?
11. क्षेत्रीय कार्यालय किसे कहते हैं?
12. पंजीकृत कार्यालय किसे कहते हैं?
13 .कार्यालय अभिलेख किसे कहते हैं?
14. वृहद कार्यालय और लघु कार्यालय मे क्या अंतर है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. कार्यालय की स्थापना के लिए किन बातों का होना आवश्यक

है?

2. कार्यालय से सूचनाएँ कैसे प्रदान की जाती हैं?
3. कार्यालय के प्राथमिक कार्य कौन–कौनसे हैं?
4. कार्यालय के द्वितीयक कार्य कौन–कौनसे हैं?
5. कार्यों के आधार पर कार्यालय के कौन–कौनसे प्रकार होते हैं?
6. अवस्थिति के आधार पर कार्यालय के कौन–कौनसे प्रकार होते हैं?
7. विधिक स्थिति के आधार पर कार्यालय के कौन–कौनसे प्रकार होते हैं?
8. विस्तार के आधार पर कार्यालय के कौन–कौनसे प्रकार होते हैं?
9. संगठनात्मक संरचना के आधार पर कार्यालय के कौन–कौनसे प्रकार होते हैं?
10. रेखा कार्यालय किसे कहते हैं?
11. स्टाफ कार्यालय रचना किसे कहते हैं?
12. समिति कार्यालय रचना किसे कहते हैं?
13. क्रियात्मक कार्यालय रचना किसे कहते हैं?
14. रेखा और स्टाफ कार्यालय मे क्या अंतर है?
15. समिति और क्रियात्मक कार्यालय मे क्या अंतर है?

निबंधात्मक प्रश्न–

1. कार्यालय किसे कहते हैं? व्यवसाय मे कार्यालय का क्या महत्त्व है?
2. कार्यालय के लिए आवश्यक घटकों का वर्णन कीजिये।
3. कार्यालय मे किए जाने वाले प्राथमिक और द्वितीयक कार्यों का वर्णन कीजिये।
4. संगठन संरचना के आधार पर कार्यालय के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिये।

उत्तर – 1. (ब) 2. (स) 3. (द) 4. (द) 5. (द) 6. (स) 7. (स) 8. (द)

अध्याय– 7

कार्यालय प्रबंध
(Office Management)

प्रबंधन के मूलभूत सिद्धांतों और व्यावहारिक आयामों का कार्यालय के व्यवस्थापन मे उपयोग करना कार्यालय प्रबंधन है। कार्यालय मे प्रबंधन के लिए प्रबंधकीय कार्य कुशलता की आवश्यकता होती है क्योंकि कार्यालय व्यवसाय का केंद्रीय स्थान होता है। व्यवस्थित कार्यालय से व्यवसाय की व्यवस्थित क्रियाओं का जन्म होता है जिससे व्यवसाय के लक्ष्यों की पूर्ति होती है।

कार्यालय मे उपलब्ध व्यक्ति, उपकरण, वित्त और अन्य संसाधनों के बेहतर समायोजन से कार्यालय की वांछित गतिविधियों का उपयुक्त संचालन जिससे निर्धारित कार्यालय लक्ष्य प्राप्त किए जा सकें, कार्यालय प्रबंध कहलाता है। इसमें न्यूनतम लागत और न्यूनतम समय मे अधिकतम परिणाम प्राप्त करना भी सम्मिलित है।

कार्यालय प्रबंध की व्यापकता :

1. **कार्यालय नियोजन और अभिविन्यास**– कार्यालय के संस्थापन में सबसे पहले स्थान का निर्धारण, वहाँ कार्यालय की स्थापना, उपयुक्त सुविधाओं के अनुसार विभाजन, व्यवस्थित रचना की जाती है। इस हेतु कार्यालय के स्थापना संबंधी लक्ष्यों का विवेचन करके निर्णय लिए जाते हैं।

2. **कार्यालय संगठन**– संगठन से तात्पर्य यहाँ विभागीय और कर्मचारी ढांचे से है। जैसे– स्टाफ, लाइन, परियोजना आदि। कार्यालय विन्यास के निर्माण के बाद इस संगठन ढांचे की स्थापना की जाती है। इसमें कार्यालय के कर्मचारियों का विभागीयकरण भी सम्मिलित है।

3. **कार्यालय फर्नीचर और उपकरण**– कार्यालय में आवश्यकताओं के अनुरूप फर्नीचर और उपकरणों की स्थापना की जाती है। फर्नीचर में विभिन्न प्रकार की अलमारियाँ, टेबल–कुर्सियाँ, कम्प्युटर टेबल और उपकरणों में पारंपरिक और गैर–पारंपरिक प्रकार के उपकरण जैसे कम्प्युटर, स्कैनर आदि आते हैं।

4. **कार्यालय संबंधी संचार, सम्प्रेषण और पत्र व्यवहार**– कार्यालय अन्य कार्यालयों और क्षेत्र में कार्यरत कर्मियों, उपभोक्ताओं, विक्रेताओं आदि से संपर्क का केंद्र होता है। अतः यहीं से अन्यान्य संबन्धित लोगों से संपर्क, सम्प्रेषण और पत्र–व्यवहार होता है। अतः इससे संबन्धित सभी संप्रेषणीय कार्यों का प्रबंधन भी कार्यालय प्रबंध के अंतर्गत आता है।

5. **अभिलेख प्रबंधन**– कार्यालय में विक्रय, क्रय, कर्मचारी, वित्त, उत्पादन आदि से संबन्धित सभी अभिलेखों का संधारण और प्रबंधन किया जाता है। यह अभिलेख प्रबंधन का केंद्र होता है।

6. **कार्यालय के कर्मचारियों का प्रशासन**– कर्मचारी चाहे कार्यालय में कार्यरत हो या कंपनी की अन्य उत्पादन इकाइयों या क्षेत्र में, कार्यालय इन सबके प्रशासन, प्रबंधन, नियंत्रण और पर्यवेक्षण का आगार होता है। यहाँ से ही कर्मचारियों के वेतन, नियुक्ति, स्थानांतरण आदि क्रियाओं का प्रशासन होता है।

7. **कार्यालय कार्य व्यवस्था और प्रक्रियाएं** – कार्यालय में नियमित अनेकानेक प्रकार के कार्य होते हैं, इनसे संबन्धित प्रक्रियाएं होती हैं। इन सबका प्रबंधन कार्यालय से होता है। कार्यालय प्रबंधन में कार्यालय की प्रक्रियाओं का नियमन, नियोजन, नियंत्रण, प्रशासन किया जाता है।

8. **कार्यालय नियंत्रण**– नियंत्रण से तात्पर्य है वांछित और निष्पादित के अंतर को पूर्ण करने की प्रक्रिया। कार्यालय की प्रक्रियाओं में वांछित प्रक्रियाओं की प्राप्ति हेतु कार्यालय प्रबंधन में नियंत्रण की तकनीकों का प्रयोग होता है।

प्रभावी कार्यालय प्रबंध के चरण (Steps of Effective Office Management) :

1. **कार्यालय के उद्देश्यों का निर्धारण**– कार्यालय प्रबंध का पहला चरण है उद्देश्यों का निर्धारण। किस उद्देश्य से कार्यालय की स्थापना की गयी है, यह ध्यान में रखकर कार्यालय प्रबंधन किया जाता है। लक्ष्यों की ओर जाने का प्रयास कार्यालय प्रबंध का पहला चरण है।

2. **कार्यालय के लिए उपयुक्त विभिन्न प्रारूपों और प्रक्रियाओं का विश्लेषण**– कार्यालय के विभिन्न प्रारूप होते हैं, जो व्यवसाय और कार्यालय के लक्ष्यों और आवश्यकताओं के अनुसार चयनित किए जाते हैं। जैसे मुख्य और क्षेत्रीय, प्रधान और शाखा, विपणन और वित्त आदि। इस दृष्टि से लक्ष्यों के अनुसार प्रारूप और प्रक्रियाओं का निर्धारण किया जाता है। प्रक्रियाओं में कार्यालय में होने वाली गतिविधियों की समयानुसार व्यवस्था और संरचना आती है।

3. **कार्यालय के लिए उपयुक्त विकल्प का चयन**– लक्ष्यों और आवश्यकताओं के निर्धारण और विभिन्न प्रक्रियागत और संरचनागत कार्यालयों के विश्लेषण के पश्चात कंपनी के प्रबंधन कार्यालय के लिए उपयुक्त विकल्प का चयन करते हैं। यह विकल्प ही कार्यालय की रचना का स्थायी संबल होता है।

4. **उपयुक्त विकल्प हेतु कार्य निष्पादन**– विकल्प चयन के पश्चात विकल्प पर कार्य किया जाता है, अर्थात विकल्प को क्रियान्वित किया जाता है। इसमें कार्यालय प्रबंधन की उस विधि को लागू किया जाता है जो लक्ष्य विश्लेषण और संबन्धित विकल्प चयन के बाद कंपनी द्वारा निर्धारित की गयी है।

5. **प्रतिपुष्टि एवं जांच**– कार्यालय प्रबंध की गतिविधियों पर कार्य के बाद उनसे प्राप्त परिणाम का अवलोकन किया जाता है। उस परिणाम को व्यवस्थित रूप में सामने लाकर उसकी रिपोर्ट तैयार की जाती है और प्रतिपुष्टि की जाती है। इससे आगे की नियंत्रण की क्रिया संभव होती है।

6. **नियंत्रण**– कंपनी द्वारा कार्यालय प्रबंध के लक्ष्यों के अनुरूप प्रबंधन का कार्य हुआ है अथवा नहीं यह जांच के द्वारा तय किया जाता है। नियंत्रण में वास्तविक और वांछित के मध्य अंतराल को कम करने के लिए तकनीकों का प्रयोग किया जाता है ताकि आगे होने वाले कार्य निष्पादन में वंचित लक्ष्यों को पूर्णतः प्राप्त किया जा सके।

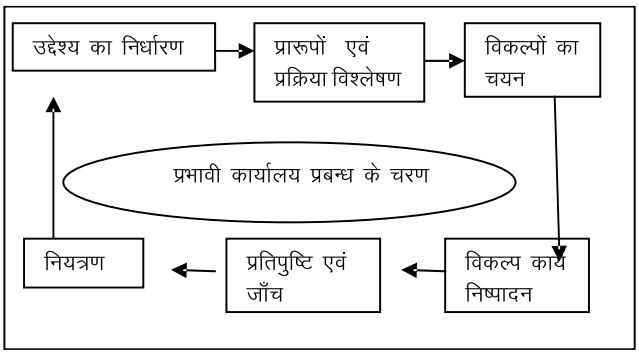

स्वागत (Reception)

आधुनिक कार्यालयों मे स्वागत कक्ष एक प्रमुख व्यवस्था है। कोई भी उपभोक्ता या अन्य व्यक्ति जब कार्यालय मे प्रवेश करता है तो उसे सर्वप्रथम स्वागत कक्ष में प्रविष्ट करवाया जाता है, जहां से संबन्धित व्यक्ति को अपनी वांछित कार्यालय गतिविधि के संबंध में स्थान, व्यक्ति आदि के बारे मे जानकारी मिलती है। इस स्थान पर कोई स्वागतकर्ता कर्मचारी कार्यालय समय में उपलब्ध रहता है जिसका कार्य आगत व्यक्ति की सेवा या उसकी समस्या के निराकरण का होता है। स्वागत कक्ष में हवा, पानी, बैठने का स्थान और अन्य सुविधाएं भी होती हैं ताकि बाहर से आए व्यक्ति को कार्यालय मे संतोषजनक वातावरण उपलब्ध करवाया जा सके। इस दृष्टि से स्वागत कक्ष का उपभोक्ता या अन्य रुचि रखने वाले व्यक्ति के दिमाग मे संगठन की छवि बनाने की दृष्टि से प्रमुख योगदान है।

डाक का वितरण (Distribution of Post)

कार्यालय में प्राप्त डाक और बाहर जाने वाली डाक हेतु प्राप्ति एवं प्रेषिति स्थान होता है। कई बार दोनों कार्य करने हेतु एक ही कार्मिक और कई बार अलग–अलग कार्मिक होते हैं। इनकी नियुक्ति संस्था के आकार आदि के आधार पर की जाती है। इस कार्य हेतु लिपिक वर्गीय कर्मचारी नियुक्त किए जाते हैं। प्राप्ति और प्रेषिति हेतु पृथक–पृथक पंजिका की व्यवस्था रहती है जिसमें दिनांक, विवरण और डाक विवरण के साथ प्रतिदिन आने वाली और जाने वाली डाक का लेखा किया जाता है।

कार्यालय प्रबन्धक (Office Manager)

आधुनिक कार्यालयों में उच्च स्तरीय प्रबंधन और निम्न स्तरीय कार्मिक वर्ग के मध्य कडी के रूप में कार्यालय प्रबन्धक कार्यरत होता है। इसका काम होता है उच्च प्रबंधन की आशाओं और अपेक्षाओं के अनुरूप संस्थागत लक्ष्यों को नीचे के कर्मचारियों तक पहुंचाना, कर्मचारियों से काम करवाना और कार्यालय के विभिन्न कार्यो के समन्वयक और नियंत्रक की भूमिका निभाना। कार्यालय प्रबन्धक सलाह, मार्गदर्शन, नेतृत्व, अभिप्रेरण और समन्वय जैसे प्रबंधकीय कार्य करके कार्यालय की गरिमा को उच्च स्तर पर पहुँचाता है।

कार्यालय प्रबन्धक के गुण (Traits of Manager)

1. **नेतृत्व कौशल**– कार्यालय प्रबन्धक कार्यालय का नेता होता है। अतः उसमें नेतृत्व का मूलभूत गुण होना चाहिए। नेतृत्व का पहला घटक है लोगों को प्रभावित करके उनसे वांछित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु कार्य करवाना।

2. **मजबूत निर्णयकर्ता**– कार्यालय प्रबन्धक एक प्रभावी निर्णयकर्ता होना चाहिए। निर्णय में असमंजस, ढील और अक्षमता कंपनी को नुकसान पहुँचाती है और कार्यालय के उद्देश्यों में व्यवधान पैदा करती है।

3. **निष्पक्षता**– कार्यालय प्रबन्धक तटस्थ और निष्पक्ष होना चाहिए ताकि उसकी न्यायिकता और प्रामाणिकता का कार्यालय के निर्णयों पर सकारात्मक प्रभाव पडे और कर्मचारी उसके प्रति निष्ठावान हों।

4. **चतुराई**– कार्यालय प्रबन्धक में चतुराई का गुण होना चाहिये क्योंकि उसे अनेकानेक परिस्थितियों और लोगों से सामना करना होता है। यहाँ उसकी तीव्र बुद्धि त्वरित प्रतिक्रिया देने हेतु तैयार होनी चाहिए।

5. **उद्यमिता और साहस**– उद्यमिता से तात्पर्य है कुछ साहसी होना। उद्यमी व्यक्ति आगे बढकर नयी परिस्थितियों से जूझने के लिए तैयार होता है। व्यवसाय में कार्य करने वाले लोगों का उद्यमी होना आवश्यक है। कार्यालय प्रबंधन की उद्यमिता उसके कार्यालय में नवीनताओं और उत्साह का संचार करती है।

6. **स्व–व्यवस्थित**– कार्यालय प्रबन्धक पूरे कार्यालय को व्यवस्थित करता है अतः वह स्वयं व्यवस्थित होना जरूरी है। इसमें समय, अनुशासन और नैतिक आचरण सम्मिलित है।

7. **चरित्रवान**– चरित्र का अर्थ है नैतिक और मूल्यपरक स्वभाव। इसमें शालीनता, विनम्रता, सत्यनिष्ठा, पारदर्शिता जैसे मूलगुण आते हैं जो व्यक्ति को सुशील बनाते हैं। इससे कार्यालय में कार्यालय प्रबन्धक को प्रतिष्ठा और सम्मान मिलता है।

8. **दूरदर्शी**– कार्यालय की प्रक्रियाओं, लोगों, क्रियाविधियों आदि मे प्रबन्धक दूरदर्शी होना चाहिए। उसे आगामी स्थितियों और घटनाओं का सामना करने और उनके अनुरूप तत्काल निर्णय लेने की क्षमता से भरा होना चाहिए जिससे चुनौतियों का सामना किया जा सके और अवसरों का लाभ उठाया जा सके।

9. **पेशेवर**– कार्यालय अपने पेशे के प्रति समर्पित होना चाहिए और इसके लिए उसे अपने पेशेवर जीवन को अत्यधिक महत्त्व देना चाहिए।

कार्यालय प्रबन्धक के प्रमुख कार्य व कर्तव्य (Functions & Duties of office manager)

1. शीर्ष प्रबंधन के प्रति कर्तव्य : शीर्ष प्रबंधन की नीति को नीचे तक पहुंचाना, संस्था के व्यावसायिक लक्ष्यों की पूर्ति का प्रयास, संस्थान मे अनुशासन की स्थापना, संस्था के कार्य वातावरण को शीर्ष प्रबंधन द्वारा वांछित स्थिति मे पहुंचाना।

2. कार्यालय कार्य के प्रति कर्तव्यः कार्य को निर्धारित अवधि मे पूर्ण करना, कार्य की गुणवत्ता का ध्यान रखना, कार्य को कम लागत और कम समय मे पूरा करना, उपकरणों का रख–रखाव, अभिलेखीय कार्यों का उपयुक्त निष्पादन आदि।

3. सहयोगियों के प्रति कर्तव्य : सहकर्मियों के साथ उचित सलाह–मशविरा, चर्चा आदि के माध्यम से उनमें सहभागिता की भावना का विकास और बेहतर माहौल।

4. अधीनस्थ कर्मियों के प्रति कर्तव्य : अधीनस्थ कर्मचारियों को अभिप्रेरित करना, मार्गदर्शन देना, उनकी समस्याओं के निराकरण का प्रयास, उच्च स्तरीय प्रबंध के सामने अधीनस्थों का प्रतिनिधित्व, बेहतर कार्य दशाओं का निर्माण आदि।

अभिलेख संधारण (Record Maintenance)

व्यावसायिक कार्यालय मे विभिन्न प्रकार के अभिलेख होते हैं जैसे– पत्र, रिपोर्ट, चालान, अनुबंध , वाउचर, परिपत्र, बैठक के सुक्ष्म (मिनट्स), सूचना, कर संबन्धी रिकॉर्ड , सांख्यिकीय रिकॉर्ड, कीमत सूचियाँ, कैटलाग आदि। कुशल कार्यालय प्रबंध मे इन सभी अभिलेखों का इस व्यवस्थित ढंग से संधारण और वर्गीकरण किया जाता है कि आवश्यकता पड़ने पर इनमें से किसी भी अभिलेख का उपयोग किया जा सके।

अभिलेख संधारण और प्रबंधन का महत्त्वः

1. **प्रभावी परिणामः** कम समय में कम लागत पर अभिलेखों का संधारण व प्रयोग।
2. **त्वरित संदर्भ** : त्वरित संदर्भ के रूप मे अभिलेखों का उपयोग
3. **नियोजन** : नियोजन मे उपयोग
4. **प्रभावी नियंत्रण** : नियंत्रण के लिए वांछित सूचनाओं की प्राप्ति
5. **संरक्षण** : संरक्षित अभिलेखों से व्यावसायिक उद्देश्यों की पूर्ति
6. **प्रमाण** : विधिक और अन्य मामलों मे सबूत के तौर पर उपयोग
7. **जांच व प्रतिपुष्टि** : जांच व प्रतिपुष्टि हेतु उपयोग

8. **संस्थान की साख वृद्धि** : प्रभावी अभिलेख प्रबंधन से संस्थान की साख बढती है।

9. **विधिक प्रावधान** : विभिन्न कानून या अधिनियम के अनुसार किसी भी प्रकार के संगठन को अपना अभिलेख (रिकॉर्ड) कुछ वर्षों तक (3 वर्ष से 8 वर्ष) सम्भाल कर रखना अनिवार्य होता है; उचित देखभाल से किया गया संधारण ही प्रबन्धन की कुशलता है।

अभिलेख संधारण के चरण (Steps of Record Maintenance)

1. **सूची बनाना**– सबसे पहले प्राप्त और एकत्र अभिलेखों की सूची बनाई जाती है। यह सूची रजिस्टर में भी हो सकती और सॉफ्ट कॉपी में भी।

2. **समयानुसार वर्गीकरण**– सूचीबद्ध अभिलेखों का समयानुसार वर्गीकरण किया जाता है। इसमें वर्ष, माह, सप्ताह, दिनांक आदि को ध्यान में रखा जाता है।

3. **आवश्यक संग्रहण स्थान का चयन**– अभिलेखों के सम्पूर्ण रूप में या विभाजित रूप में रखने हेतु स्थान का चयन किया जाता है। यह स्थान आवश्यक खाली जगह के अनुरूप होता है, जहां से अभिलेखों की सुरक्षा का भी ध्यान रखा जाता है।

4. **अभिलेख संधारण विभाग का निर्माण**– कार्यालय में अभिलेख संधारण विभाग या अभिलेखागार का निर्माण किया जाता है। यह विभाग अभिलेख प्रबंधन हेतु उत्तरदायी होता है।

5. **वांछित उपकरणों का संयोजन**– अभिलेख के हार्ड या सॉफ्ट कॉपी में संरक्षण, संसाधन और प्रबंधन हेतु वांछित उपकरणों को अभिलेखागार में संयोजित किया जाता है।

6. **कर्मचारियों की नियुक्ति और प्रशिक्षण**– अभिलेख विभाग हेतु पृथक से योग्यता प्राप्त कर्मचारियों को नियुक्त किया जाता है। कंपनी की जरूरतों के अनुसार इनको प्रशिक्षण की भी व्यवस्था की जाती है।

7. **अभिलेख वर्गीकरण और संरक्षण**– कर्मचारियों की नियुक्ति और प्रशिक्षण के उपरांत वे नियमित अभिलेख वर्गीकरण, संरक्षा और संसाधन करते हैं और कंपनी की जरूरतों मे अनुसार आवश्यक अभिलेखों की प्रतिलिपियाँ और मूल अभिलेख प्रबन्धकों को प्रदान करते हैं।

8. **जांच व नियंत्रण**– अभिलेख विभाग के कार्यों से संबन्धित जांच और नियंत्रण की गतिविधि नियमित अंतराल पर होती रहती है ताकि प्रभावी अभिलेख प्रबंधन हो सके।

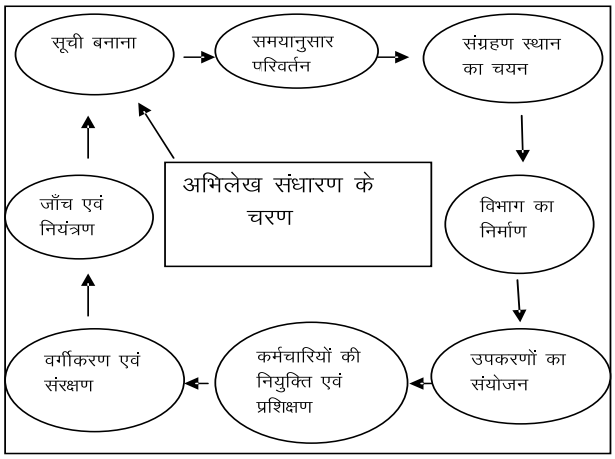

कार्यालय उपकरण (Office Equipments)

कार्यालय मे कार्य सम्पादन हेतु विविध प्रकार के परंपरागत और आधुनिक उपकरण, मशीनें आदि काम में लिए जाते हैं। ये कार्यालय प्रक्रिया हेतु बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। इनका योगदान समय और संसाधनों की बचत की दृष्टि से प्रमुख होता है।

कार्यालय उपकरणों के उद्देश्य : (Objectives)

1. **मानव श्रम की बचत**– उपकरण मानव के सहयोगी के रूप में कार्य करते हैं और इनसे श्रम की बचत होती है।

2. **समय की बचत**– समय बचता है क्योंकि कई उपकरण मानव द्वारा लगने वाले समय से कहीं कम समय में कार्य कर देते हैं।

3. **शुद्धता**– मानव से भूल होना स्वाभाविक है परंतु ये उपकरण समान्यतया अपने लक्ष्यों को पूरा करते हैं और कोई भूल नहीं करते।

4. **गलतियों की संभावना कम करना**– मानव के सहयोगी के रूप में मानव द्वारा किए कार्यों को पुनः उपकरण द्वारा मिलाया जा सकता और गलतियों की संभावना से बचा जा सकता है।

5. **कार्मिकों को सुविधा और सहयोग**– कार्यालय में स्थित उपकरण कर्मचारियों के सहयोगी के रूप में कार्य करते हैं, उनके काम को सरल करते हैं और सुविधा प्रदान करते हैं।

कार्यालय उपकरणों के लाभ :

1. कार्य की गुणवत्ता मे वृद्धि होती है।
2. संचालन लागत कम आती है।
3. प्रभावशीलता मे वृद्धि होती है।
4. नियंत्रण के लिए सहायता मिलती है।

5. उच्च कोटि की शुद्धता रहती है।
6. एकरसता भंग होती है और कर्मचारी कार्य मे रुचि लेते हैं।
7. कार्यों का मानकीकरण संभव होता है।

विभिन्न कार्यालय उपकरण:

1. कम्प्युटर
2. टाइप राइटर
3. प्रिंटर
4. फोटो कॉपी मशीन
5. स्कैनर
6. फैक्स मशीन
7. टेलीफोन
8. मॉडम
9. पंचिंग मशीन, कैल्कुलेटर व अन्य
10. फाइलर या रैक या ई–अलमारी

सारांश :

किसी भी संगठन की सफलता का आधार उसके पृष्ठभूमि में कार्यरत कार्यालय, कार्यालय व्यवस्था, उपकरण एवं प्रबन्धक की कुशलता व प्रशासनिक दक्षता होती है।

संगठन के स्वरूप, आकार, कार्यक्षेत्र, महत्वता, उपयोगिता, उद्देश्य एवं व्यूह रचना के अनुरूप कार्यालय स्थान, अभिन्यास, कर्मचारी, सुरक्षा एवं उपकरणों का चयन एवं प्रयोग किया जाता है। कार्यालय की उपादेयता उससे संबंन्धित सभी पक्षकारों को लक्ष्यानुरूप सहयोग करने एवं अभिलेखों को व्यवस्थित व सुरक्षित रखने में है।

कार्यालय प्रबन्धक की प्रशासनिक व प्रबन्धीय कुशलता ही कार्यालय को प्रमुख एवं प्रासंगिक बनाता है। कुशलता एवं दक्षता के प्रयोग व वृद्धि में कार्यालय उपकरण का प्रयोग भी मुख्य होता है। बदलती प्रौद्योगिकी के साथ नवीन तकनीक के उपकरणों का प्रयोग भी कार्यालय प्रबन्ध व अभिलेख संधारण को सहज व सक्षम बनाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न –

1. कार्यालय संचालन के लिए उपयुक्त व्यक्ति है–

   (अ) प्रबन्धक (ब) तकनीशियन

   (स) सलाहकार (द) विधिवेत्ता

2. कार्यालय में प्राप्त व प्रेषित डाक का इन्द्राज किया जाता है–

   (अ) स्टॉक रजिस्टर में (ब) आवक–जावक पंजिका में

   (स) कम्प्यूटर में (द) आगन्तुक रजिस्टर में

3. कार्यालय में प्राप्त पत्रों को छंटनी पश्चात व्यवस्थित एवं सन्दर्भ के लिए सुलभ उपलब्धता हेतु उन्हें रखा जाता है–

   (अ) फाइल में

   (ब) विशेष प्रकार के पैकिंग सामग्री में

   (स) अलमारी में (द) दराज में

4. कार्यालय के स्वागत कक्ष का प्रयोग है–

   (अ) अतिथि को ठहराने के लिए

   (ब) विभिन्न व्यक्तियों की बैठक के लिए

   (स) अतिथि को वांछित सूचना व सत्कार करने के लिए

   (द) चाय–नाश्ते व अखबार पढ़ने के लिए

5. कार्यालय की कार्यक्षमता व कुशलता में वृद्धि होती है–

   (अ) अच्छे सलाहकारो की नियुक्ति से

   (ब) वातानुकूलित मशीनें लगाने से

   (स) आधुनिक प्रौद्योगिकी के कार्यालय उपकरण लगाने से

   (द) आउट सोर्स एजेन्सियों की नियुक्ति से

6. संस्था के लेखों को न्यूनतम कितने वर्षों तक संरक्षित रखा जाना चाहिए–

   (अ) 3 वर्ष (ब) 8 वर्ष

   (स) 8 वर्ष (द) 10 वर्ष

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. कार्यालय प्रबंध क्या है?
2. कार्यालय के मुखिया व्यवस्थापक को क्या कहते हैं?
3. कार्यालय अभिलेख किसे कहते हैं?
4. कार्यालय मे डाक से संबन्धित कौनसे विभाग होते हैं?
5. कार्यालय मे स्वागत कक्ष क्या होता है?
6. कम्प्युटर क्या है?
7. प्रिंटर से कार्यालय मे क्या कार्य किया जाता है?
8. कार्यालय प्रबन्धक किसे कहते हैं?
9. कार्यालय की सामान्य गणनाओं के लिए किस लघु मशीन को काम मे लेते हैं?

10. स्कैनर क्या करता है?
11. स्वागत कक्ष के संचालक को क्या कहते हैं?
12. डाक प्राप्ति लिपिक क्या करता है?
13. डाक प्रेषिति लिपिक क्या करता है?
14. कार्यालय में काम में आने वाले दो आधुनिक उपकरणों के नाम बताइये।
15. प्रतिलिपि प्राप्त करने के लिए कौनसी मशीन काम में आती है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. स्वागत कक्ष को समझाइए।
2. कार्यालय प्रबंध मे क्या किया जाता है?
3. कार्यालय मे डाक व्यवस्था से आपका क्या आशय है?
4. अभिलेख संधारण किसे कहते हैं?
5. कार्यालय में कौन–कौनसे पारंपरिक उपकरण काम में आते हैं?
6. कार्यालय में कौन–कौनसे आधुनिक उपकरण काम में आते हैं?
7. कार्यालय प्रबन्धक के लिए अपने कार्य में निपुणता क्यों आवश्यक है?
8. कार्यालय प्रबन्धक के शीर्ष प्रबन्धक के प्रति क्या दायित्व हैं?
9. कार्यालय प्रबन्धक के सहयोगी कर्मचारियों के प्रति क्या दायित्व हैं?
10. कार्यालय प्रबन्धक के अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के प्रति क्या दायित्व हैं?
11. कार्यालय प्रबन्धक के कार्यालय के प्रति क्या–क्या दायित्व होते हैं?
12. कार्यालय में कौन–कौनसे अभिलेख संधारित किए जाते हैं?
13. अभिलेख संधारण के क्या लाभ हैं?
14. डाक की सुचारु व्यवस्था के क्या लाभ हैं?
15. स्वागत कक्ष व्यवस्था का क्या महत्त्व है?

निबंधात्मक प्रश्न–

1. कार्यालय प्रबंधन को परिभाषित कीजिये। कार्यालय प्रबंध के अंतर्गत आने वाले कार्यों का वर्णन कीजिये।प्रभावी कार्यालय प्रबंध के चरणों का वर्णन कीजिये।
2. कार्यालय प्रबन्धक किन–किन कार्यों को संपादित करता है? इन कार्यों को करने के लिए कार्यालय प्रबन्धक में कौन–कौनसे गुण होने चाहिए?
3. कार्यालय मे कौन–कौनसे उपकरण काम में लिए जाते हैं? इन उपकरणों का कार्यालय के सुचारु संचालन मे क्या महत्त्व है?
4. अभिलेख संधारण के चरण समझाइए। कार्यालय प्रबंध मे अभिलेख संधारण और अभिलेख प्रबंध के लाभ समझाइए।
5. कार्यालय उपकरण की श्रेणियां बनाते हुए नवीन आविष्कृत उपकरणों का वर्णन कीजिए।

उत्तर– 1. (अ) 2. (ब) 3. (अ) 4. (स) 5. (स) 6. (अ)

कार्यालय सम्प्रेषण
(Office Communication)

कार्यालय सम्प्रेषण प्रबन्ध का आधार है। इसके बिना कोई भी संगठन अपने उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर सकता है। सम्प्रेषण ने व्यवसाय को बहुत गतिशील बना दिया है। कार्यालय सम्प्रेषण प्रबन्धकों के लिए संगठनात्मक लक्ष्यों की पूर्ति करने वाला एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। यह संस्था में सभी व्यक्तियों को एक सूत्र में बांधे रखता है। कार्यालय की सफलता सम्प्रेषण की सफलता पर निर्भर करती है। सम्प्रेषण नियोजन, संगठन, समन्वय, अभिप्रेरण एवं नियंत्रण के लिए आधार प्रदान करता है।

अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definition)

सम्प्रेषण एक प्रक्रिया है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य विचारों, भावनाओं, तथ्यों, अनुमानों, संवेगों, सूचनाओं तथा अर्थों का पारस्परिक आदान–प्रदान किया जाता है। सम्प्रेषण तभी पूर्ण होता है जबकि व्यक्ति एक दूसरे के विचारों को आपस में सही अर्थों में समझें।

सम्प्रेषण की प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं :

न्यूमैन एवं समर (Newman and Summer) के अनुसार, ''सम्प्रेषण दो या दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य तथ्यों, विचारों, सम्मतियों अथवा भावनाओं का विनिमय है।''

लुईस ए. ऐलन (Loius A. Allen) के अनुसार, ''सम्प्रेषण में वे सभी चीजें शामिल है जिनके माध्यम से एक व्यक्ति अपनी बात दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क में डालता है। यह अर्थ का पुल है। इसके अन्तर्गत कहने, सुनने और समझने की व्यवस्थित तथा निरन्तर प्रक्रिया सम्मिलित होती है।''

कीथ डेविस (Keith Davis) के अनुसार, ''सम्प्रेषण प्रक्रिया है जिसमें सन्देश एवं समझ को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाया जाता है।''

लियोन मैगिनसन (Leon Megginson) के अनुसार, ''सम्प्रेषण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को विचारों अथवा सूचना के रूप में 'अर्थ' प्रेषित करने की प्रक्रिया है।''

इस प्रकार स्पष्ट है कि सम्प्रेषण एक सतत एवं गतिशील प्रक्रिया है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति व्यवस्थित रूप से सूचनाओं, विचारों व तथ्यों का आदान–प्रदान करते हैं। सम्प्रेषण की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि प्रेषक एवं प्रेषिति (प्रापक) दोनों संदेश को समान अर्थ में समझें। इस प्रक्रिया में सन्देशों का आदान–प्रदान मौखिक, लिखित, व्यवहार, संकेतों, ध्वनि, दृश्य–श्रव्य आदि साधनों से किया जाता है। सम्प्रेषण को संचार अथवा सन्देशवाहन भी कहते हैं।

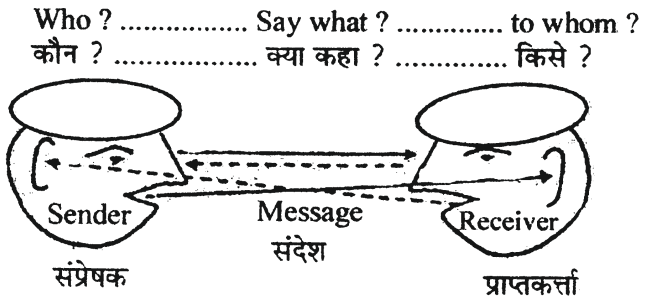

सम्प्रेषण की प्रकृति अथवा विशेषताएँ (Nature and Characteristics of Communication)

सम्प्रेषण की प्रकृति अथवा विशेषताएँ निम्नानुसार हैं :

1. सम्प्रेषण एक सतत एवं व्यवस्थित प्रक्रिया है।
2. सम्प्रेषण द्वि–मार्गीय प्रक्रिया है।
3. यह एक गतिशील प्रक्रिया है।
4. सम्प्रेषण के सिद्धान्त एवं विचारधाराएँ सार्वभौमिक प्रकृति की होती है।
5. सम्प्रेषण एक मानवीय क्रिया है। इसमें दो या अधिक व्यक्तियों के मध्य विचारों, भावनाओं एवं आपसी समझ का आदान–प्रदान किया जाता है।
6. सम्प्रेषण प्रक्रिया में सन्देशों का आदान–प्रदान मौखिक, लिखित, सांकेतिक, दृश्य–श्रव्य साधनों से किया जा सकता है।

7. सम्प्रेषण प्रेषक एवं प्रेषिति के पारस्परिक विश्वास एवं सद्भावना पर आधारित है।
8. सम्प्रेषण उद्देश्योन्मुखी होता है। उद्देश्यों को ध्यान में रखकर ही एक व्यक्ति अपनी बात दूसरे व्यक्ति को कहता है।
9. सम्प्रेषण बहु–आयामी होता है।
10. सम्प्रेषण प्रबन्धकीय कार्यों का आधार है। कार्यालय में मूल रूप से सम्प्रेषण का कार्य ही होता है।

सम्प्रेषण के प्रकार (Types of Communication)

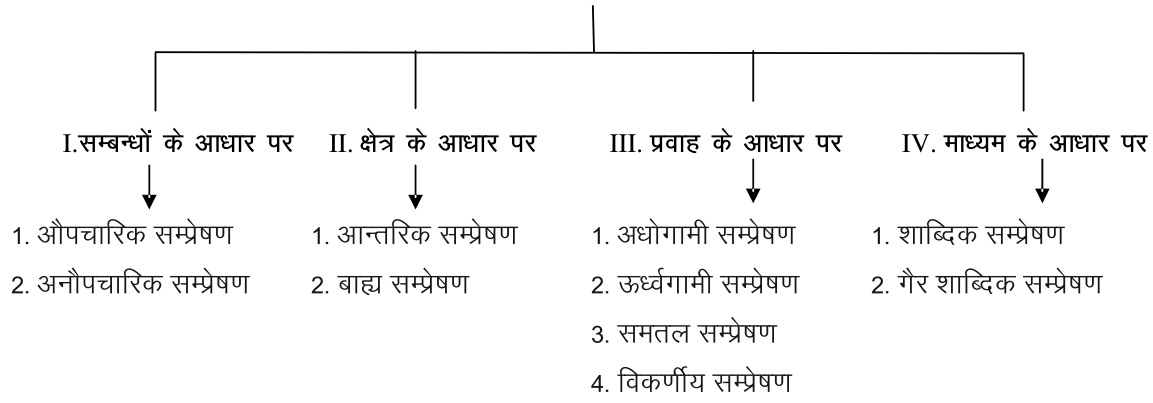

I. सम्बन्धों के आधार पर (On the Basis of Relationship)

1. **औपचारिक सम्प्रेषण (Formal Communication)** : औपचारिक सम्प्रेषण में सन्देशों का प्रवाह पूर्व निर्धारित मार्ग द्वारा प्रवाहित होता है। प्रेषक और प्रेषिति के मध्य औपचारिक सम्बन्ध विद्यमान होते है। निरकुंश संगठन में सम्प्रेषण एकल मार्गीय होता था किन्तु अब वर्तमान समय में औपचारिक सम्प्रेषण ने द्विमार्गीय सम्प्रेषण का रूप ले लिया है। अतः औपचारिक सम्प्रेषण का प्रवाह अधोगामी, ऊर्ध्वगामी, समतल या विकर्णीय हो सकता है। इस सम्प्रेषण में आदेश व निर्देश ऊपर से नीचे की ओर तथा सुझाव व शिकायतें नीचे से ऊपर की ओर प्रेषित होती है। सम्प्रेषण करते समय पदानुक्रम व्यवस्था को ध्यान में रखा जाता है। प्रेषक और प्रेषिति के बीच औपचारिक सम्बन्धों का निर्माण संगठन चार्ट द्वारा होता है।

लाभ : औपचारिक सम्प्रेषण के निम्नलिखित लाभ हैं –

(i) यह सम्प्रेषण व्यवस्था विश्वसनीय एवं प्रभावी मानी जाती है।

(ii) प्रायः सन्देश लिखित में होने से भविष्य के लिए प्रमाण का कार्य करते हैं।

(iii) पारस्परिक मतभेद उत्पन्न नहीं होते हैं।

(iv) संदेशों का आदान–प्रदान पूर्व निर्धारित मार्गों से होता है।

(v) इसमें सूचना के स्रोत की जानकारी होने से सन्देश के लिए सम्बन्धित व्यक्ति को आसानी से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

(vi) सूचनाओं में निरन्तरता एवं क्रमबद्धता बनी रहती है।

(vii) प्रबन्धकों को सन्तुष्टि प्राप्त होती है।

(vii) सन्देशों के विकृत होने की संभावना कम हो जाती है ।

दोष : औपचारिक सम्प्रेषण के दोष इस प्रकार हैं –

(i) सन्देश पूर्व निर्धारित मार्गों से होकर गुजरता है अतः सामान्य प्रवाह में बाधा होती है।

(ii) इसमें विलम्ब होने की सम्भावना रहती है।

(iii) सन्देश लिखित में होने से यह प्रक्रिया खर्चीली है।

(iv) इसमें उच्चाधिकारियों के कार्यभार में वृद्धि हो जाती है।

(v) प्रेषक एवं प्रेषिति के मध्य स्थिति सम्बन्धी अवरोध उत्पन्न होने से सन्देश का सही अर्थ में पहुँचना कठिन हो जाता है।

2. **अनौपचारिक सम्प्रेषण (Informal Communication)**– अनौपचारिक सम्प्रेषण से आशय ऐसे सम्प्रेषण से है जिसमें सन्देशों के आदान–प्रदान का कोई पूर्व निश्चित मार्ग नहीं होता है तथा व्यक्ति सन्देशों का प्रवाह व्यक्तिगत एवं सामाजिक सम्बन्धों के कारण करते हैं। इसमें संगठन चार्ट का कोई महत्त्व नही होता है तथा ये निश्चित विधि व नियम के अधीन नही होते हैं।

अनौपचारिक सम्प्रेषण को अंगूरीलता (Grapevine) या जन प्रवाद के नाम से भी जाना जाता है। इस प्रकार की सम्प्रेषण

व्यवस्था में सूचनाएँ त्वरित गति से फैलती है तथा साथ ही प्रतिक्रिया की जानकारी भी हो जाती है। कई बार सूचनाओं का कोई आधार नहीं होने व उनके अपूर्ण होने के कारण गलतफहमियाँ फैल जाती है। इस प्रकार के सम्प्रेषण सत्यता पर आधारित हो यह आवश्यक नहीं है। संगठन के भीतर सदस्यों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं के कारण इनकी उत्पत्ति होती है। अंगूरीलता सम्प्रेषण तात्कालिक होता है तथा शीघ्रता से पूरे संगठन में प्रसारित हो जाता है। इस प्रकार के सन्देश अनाधिकृत प्रकृति के होते हैं। इनका आदान–प्रदान जलपान, दोपहर के भोजन एवं सामाजिक समारोह के दौरान होता है।

लाभ – अनौपचारिक सम्प्रेषण के निम्नलिखित लाभ हैं:

(i) इसमें सन्देश तीव्र गति से सभी जगह पहुँच जाते हैं।

(ii) इसमें विचारों की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति को प्रोत्साहन मिलता है।

(iii) अधीनस्थ कर्मचारियों की प्रतिक्रिया की जानकारी आसानी से हो जाती है।

(iv) संस्था में कार्यरत व्यक्तियों को मानसिक सन्तुष्टि प्राप्त होती है तथा उनमें एकता की भावना का विकास होता है।

(v) आपसी एवं वैयक्तिक समस्याओं के हल ढूँढने में सहायता मिलती है।

(vi) संगठनात्मक बाधाओं को दूर करने मे सहायता मिलती है जिससे संस्था की कार्य करने की क्षमता में वृद्धि होती है।

(vii) अधीनस्थों की भागीदारी व सहयोग से अच्छे निर्णय लिये जा सकते हैं।

दोष : अनौपचारिक सम्प्रेषण के दोष इस प्रकार हैं :

(i) इस प्रकार के सम्प्रेषण पर नियन्त्रण करना बहुत कठिन है।

(ii) इनकी प्रकृति मौखिक होने के कारण कोई प्रमाण नहीं होता है। जिसके कारण यह सम्प्रेषण व्यवस्था कम विश्वसनीय मानी जाती है।

(iii) सूचनाएँ प्रायः पूर्ण नहीं होती है जिससे भ्रम व सन्देह उत्पन्न होते हैं तथा प्रबन्धकीय कार्यकुशलता पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(iv) इसमें कर्मचारी उत्तरादायित्व से बचने का प्रयास करते हैं।

(iv) इसमें सन्देशों में क्रमबद्वता नहीं होती है।

II. क्षेत्र के आधार पर
(on the Basis of Scope)

1. **आन्तरिक सम्प्रेषण (Internal Communication)**– आन्तरिक सम्प्रेषण का आशय संस्था के मध्य व्यक्तियों, समूहों, विभागों एवं शाखाओं के बीच संदशों, सूचनाओं, भावनाओं तथा तथ्यों के आदान प्रदान से है। आन्तरिक सम्प्रेषण में आदेश–निर्देश, सूचनाएँ, नियम, कार्य रिपोर्ट, संगठन चार्ट, आपत्तियाँ एवं सुझाव इत्यादि शामिल है। इसमें उच्चाधिकारी अपने अधीनस्थ व्यक्तियों को आदेश एवं निर्देश प्रदान करते हैं तथा अधीनस्थ व्यक्ति अपने कार्य की रिपोर्ट, परिवेदनाएँ एवं सुझाव उच्चाधिकारियों को प्रस्तुत करते हैं।

   संस्था के सफल संचालन में आन्तरिक सम्प्रेषण की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यह संस्था के भीतर अधोगामी, ऊर्ध्वगामी, समतल एवं विकर्णीय रूप में होता है।

   आन्तरिक सम्प्रेषण कार्य एवं अधीनस्थ व्यक्तियों पर प्रभावी नियन्त्रण स्थापित करता है तथा संगठन में अच्छे वातावरण का निर्माण करता है।

2. **बाह्य सम्प्रेषण (External Communication)** – संस्था व बाह्य पक्षकारों जैसे ग्राहकों, अंशधारियों, प्रतियोगी फर्मों, ऋणदाताओं, मध्यस्थों, सरकार, स्थानीय समुदाय, बैंक, बीमा एवं अन्य संगठनों के बीच सूचनाओं के आदान–प्रदान की प्रक्रिया को बाह्य सम्प्रेषण कहा जाता है। बाह्य सम्प्रेषण व्यवस्था जितनी प्रभावी एवं कुशल होगी वह संस्था उतनी ही उन्नति की ओर अग्रसर होती है।

   प्रत्येक उपक्रम को इस प्रतिस्पर्धी युग में ग्राहकों की अभिरूचि, विनियोजकों की प्रवृत्तियाँ, स्थानीय समुदाय की समस्याओं, सरकारी नीतियों, व्यावसायिक सुअवसरों की खोज, श्रम संघों की मांगों इत्यादि की सम्पूर्ण जानकारी रखना अति–आवश्यक है। अतः व्यावसायिक उपक्रम की प्रगति और विकास के लिए संस्था और बाहरी पक्षकारों के बीच प्रभावशाली सम्प्रेषण का होना आवश्यक है।

III. प्रवाह के आधार पर
(On the Basis of Flow of Messages)

1. **अधोगामी सम्प्रेषण (Downward Communication)** – अधोगामी सम्प्रेषण में सन्देश का प्रवाह उच्चाधिकारियों से अधीनस्थों की ओर किया जाता है। इसमें आदेश की शृंखला को क्रम के आधार पर व्यवस्थित किया जाता है जिसमें सन्देशों का सम्प्रेषण नीचे की ओर होता है। इसे आदेशात्मक अथवा कर्मचारी सम्प्रेषण भी कहते हैं। अधोगामी सम्प्रेषण प्राय औपचारिक प्रकृति के होते हैं किसी उपक्रम में अधोगामी

सम्प्रेषण की स्थिति इस प्रकार की होती है –

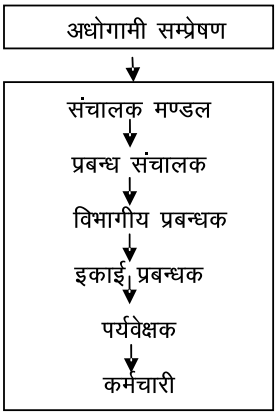

यह मौखिक, लिखित एवं सांकेतिक किसी भी रूप में हो सकता है। वैयक्तिक निर्देश, परामर्श, टेलीफोन, घण्टी बजाकर, वार्षिक रिपोर्ट, पत्र, स्मरण पत्र, सूचना पट्ट, मेमो, बुलेटिन इत्यादि के द्वारा ये सन्देश प्रेषित किये जाते हैं।

इनमें कार्य के सम्बन्ध में आदेश व निर्देश देना, नीतियों, नियमों, लक्ष्यों आदि की सूचना देना, कार्य निष्पादन के बारे में प्रतिपुष्टि, प्रशंसा, आलोचना एवं संगठन की प्रगति की सूचना देना इत्यादि प्रकार के सन्देश शामिल होते हैं।

लाभ – अधोगामी सम्प्रेषण के निम्नलिखित लाभ हैं –

(i) अधीनस्थों द्वारा पर्याप्त महत्त्व दिया जाता है।

(ii) उच्चाधिकारी अपने विवेक से निर्णय ले सकते हैं।

(iii) इसमें सम्प्रेषण की प्रभावशीलता बढ़ जाती है जिससे अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं।

(iv) कार्यों का निष्पादन शीघ्र हो जाता है।

(v) इसमें उच्चाधिकारियों को ही आदेश देने का अधिकार होता है। कर्मचारी शीघ्र उनके आदेशों की पालना करते हैं।

दोष – अधोगामी सम्प्रेषण के निम्नलिखित दोष हैं –

(i) सन्देश विभिन्न स्तरों से होता हुआ अधीनस्थ कर्मचारी तक पहुँचता है जिससे विलम्ब होने की संभावना रहती है।

(ii) प्रबन्धकों व कर्मचारियों में मधुर–सम्बन्धों का अभाव होता हैं क्योंकि इसमें कर्मचारियों से कोई सलाह नहीं ली जाती है।

(iii) सन्देश का मार्ग में परिवर्तित होकर विकृत होने का भय रहता है।

(iv) कर्मचारियों के मनोबल व कार्य करने की क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

2. **ऊर्ध्वगामी सम्प्रेषण (Upward Communication)** जब सन्देश का प्रेषण अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा उच्च अधिकारियों को किया जाता है तो इसे ऊर्ध्वगामी सम्प्रेषण कहा जाता है। इसमें सम्प्रेषण का प्रवाह नीचे से ऊपर की ओर होता है। इसमें कार्य प्रतिवेदन, कार्य समस्याएँ, शिकायतें, सुझाव, भावनाएँ, विचार एवं आपत्तियाँ इत्यादि प्रकार के सन्देश हो सकते हैं। ऊर्ध्वगामी सम्प्रेषण को सफल बनाने के लिए मीटिंग करना, खुला द्वार नीति, सुझाव पेटी, रिपोर्ट, पत्र व्यवहार, सहभागिता, संयुक्त प्रबन्ध समिति आदि की व्यवस्था की जाती है। किसी उपक्रम में ऊर्ध्वगामी सम्प्रेषण की स्थिति इस प्रकार की होती है –

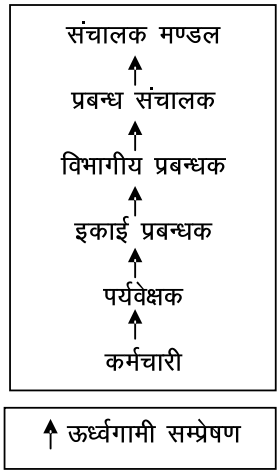

लाभ – ऊर्ध्वगामी सम्प्रेषण के निम्नलिखित लाभ हैं –

(i) कर्मचारियों के मनोबल व कार्य करने की क्षमता में वृद्धि होती है।

(ii) कर्मचारियों के विचारों, भावनाओं एवं समस्याओं की जानकारी हो जाती है।

(iii) संस्था की प्रगति एवं विस्तार संभव हो जाता है।

(iv) संस्था में प्रजातान्त्रिक वातावरण का निर्माण किया जा सकता है।

(v) कर्मचारियों के सुझावों का लाभ उठाया जा सकता है।

(vi) कर्मचारियों के अभिप्रेरित होने से परिवर्तनों व नई–नई योजनाओं को सरलता से लागू किया जा सकता है।

दोष – ऊर्ध्वगामी सम्प्रेषण के निम्नलिखित दोष हैं –

(i) प्रबन्धकों द्वारा कर्मचारियों के सुझावों को महत्त्व नहीं दिया जाता है जिससे उनमें हीन भावना आ जाती है।

(ii) कर्मचारी उच्चाधिकारियों के सामने अपनी बात कहने से डरते हैं।

(iii) सन्देश को सही ढंग से नहीं भेजने पर उसका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है।

(iv) उच्चाधिकारियों में अपने प्रतिकूल बात सुनने की क्षमता नहीं होती। इसलिए सम्प्रेषण अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो पाते हैं।

3. **समतल सम्प्रेषण (Horizontal Communication)** – जब संगठन के समान स्तर के कर्मचारियों, अधिकारियों या विभागाध्यक्षों के मध्य सूचना अथवा सन्देशों का आदान–प्रदान होता है तो इसे समतल सम्प्रेषण कहते हैं। समतल सम्प्रेषण को क्षैतिज या पार्श्विक सम्प्रेषण के नाम से भी जाना जाता है। यह औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों प्रकार का हो सकता है। इस प्रकार का सम्प्रेषण संगठन के विभिन्न कार्यों एवं विभागों के मध्य उचित समन्वय स्थापित करता है। समतल सम्प्रेषण में अन्तर विभागीय सम्प्रेषण शामिल है। इसे निम्न चित्र से स्पष्ट किया जा सकता है –

लाभ – समतल सम्प्रेषण के निम्नलिखित लाभ है –

(i) समतल सम्प्रेषण द्वारा संगठन में मधुर मानवीय सम्बन्धों का निर्माण होता है।

(ii) विभिन्न विभागों एवं कार्यों में समन्वय स्थापित करने में सरलता रहती है।

(iii) इसमें कार्यों को शीघ्रता से पूरा किया जा सकता है।

(iv) इसमें भ्रम एवं सन्देहों का शीघ्र निवारण हो जाता है।

(v) इसमें समान स्तर के अधिकारी एवं अधीनस्थ समस्याओं का शीघ्र निवारण करने में सफल होते है।

दोष – समतल सम्प्रेषण का दोष हैं कि –

(i) विभिन्न विभागों की कार्यप्रणाली एवं दृष्टिकोण में अन्तर होने से संगठन की कार्यक्षमता पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है।

(ii) उच्चाधिकारियों द्वारा अनावश्यक हस्तक्षेप के कारण सम्प्रेषण में बाधा उपस्थित होती है।

(iii) संगठन संरचना के निचले स्तर पर इस सम्प्रेषण का अभाव रहता है।

4. **विकर्णीय सम्प्रेषण (Diagonal Communication)** – जब सूचनाओं एवं आदेशों का आदान–प्रदान विभिन्न स्तरों पर कार्यरत व्यक्तियों के बीच होता है तथा सम्प्रेषण में सन्देश प्रवाह का कोई क्रम निर्धारित नहीं होता है तो इसे विकर्णीय सम्प्रेषण कहते हैं। विकर्णीय सम्प्रेषण को आड़ा, तिरछा अथवा बेड़ा सम्प्रेषण भी कहते हैं।

विकर्णीय सम्प्रेषण की स्थिति इस प्रकार की होती हैं –

लाभ – विकर्णीय सम्प्रेषण के निम्नलिखित लाभ हैं –

(i) इसमें संदेशों का शीघ्र प्रवाह होता है।

(ii) इसमें कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि होती है।

(iii) इसमें संगठन में सभी स्तरों पर समन्वय बना रहता है।

(iv) जटिल संगठनों में भी यह सम्प्रेषण उपयोगी होता है।

(v) विभागों की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।

दोष – विकर्णीय सम्प्रेषण के दोष इस प्रकार हैं –

(i) संगठन में औपचारिक सम्बन्धों पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(ii) उत्तरदायित्व का निर्धारण करनें में कठिनाई आती है।

(iii) संगठन में आन्तरिक अव्यवस्था उत्पन्न हो सकती है।

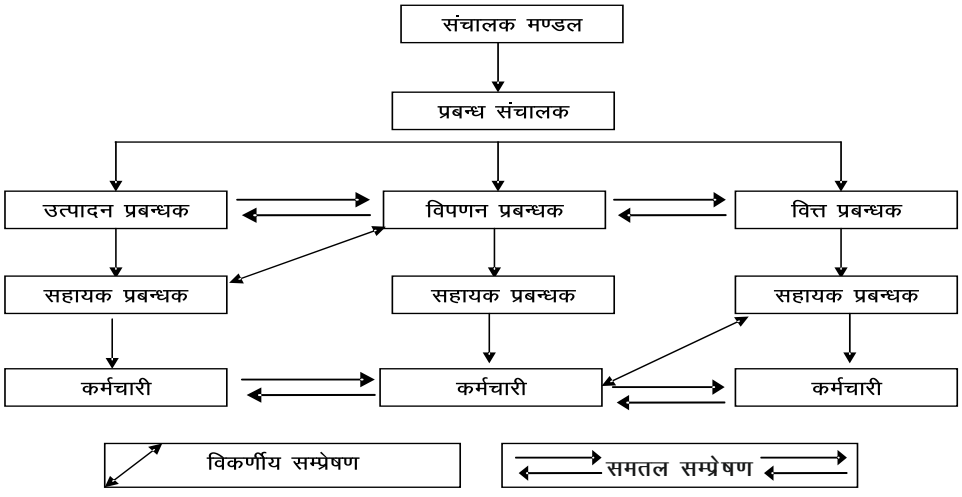

IV माध्यमों के आधार पर (on the Basis of Methods)

(A) शाब्दिक सम्प्रेषण (Verbal Communication)

शाब्दिक सम्प्रेषण को निम्नलिखित दो भागों में विभक्त किया जा सकता हैं : (1) मौखिक सम्प्रेषण तथा (2) लिखित सम्प्रेषण

1. **मौखिक सम्प्रेषण (Oral Communication)** – मौखिक सम्प्रेषण में सन्देश प्रेषक एवं प्रेषिति दोनों आमने – सामने होते हैं। इसमें शब्दों का उच्चारण करके सन्देशों का आदान– प्रदान किया जाता है। मौखिक सम्प्रेषण में साक्षात्कार, संगोष्ठी, सभा, भाषण, सामूहिक विचार–विमर्श, रेड़ियो, एफ.एम., टेलीफोन, सम्मेलन एवं प्रशिक्षण इत्यादि साधनों का प्रयोग किया जाता है। मौखिक सम्प्रेषण सन्देशों के आदान–प्रदान का प्रभावशाली साधन है।

   लाभ – मौखिक सम्प्रेषण के निम्नलिखित लाभ हैं –

   (i) इसमें समय, श्रम व धन की बचत होती है।

   (ii) अच्छा नेतृत्व प्रदान करने में मौखिक सम्प्रेषण प्रभावशाली सिद्ध होता है।

   (iii) भ्रम व अस्पष्टता का निवारण तत्काल हो जाता है।

   (iv) सन्देश की गोपनीयता बनी रहती है।

   (v) शब्दों के साथ–साथ संकेतों, चित्रों एवं चार्टों का प्रयोग भी किया जा सकता है। अतः यह प्रभावशाली होता है।

   (vi) इसमें प्रेषक एवं प्रेषिति के बीच प्रत्यक्ष सम्पर्क बना रहता है।

   (vii) मौखिक सम्प्रेषण नियन्त्रण का प्रभावी व शक्तिशाली साधन है।

   (viii) कर्मचारियों का विश्वास बना रहता है जिससे उनके मनोबल में वृद्धि होती है।

   (ix) प्रेषिति की प्रतिक्रिया की जानकारी तुरन्त हो जाती है।

   (x) मौखिक सम्प्रेषण में आवश्यकता होने पर परिवर्तन किया जा सकता है।

   दोष – मौखिक सम्प्रेषण के निम्नलिखित दोष हैं –

   (i) शब्दों का उच्चारण सही नहीं होने पर अस्पष्टता का भय बना रहता है।

   (ii) अभिलेख रखना संभव नहीं होने के कारण भविष्य के लिए लिखित साक्ष्य नहीं होता है।

   (iii) लम्बे व जटिल सन्देशों के लिए यह उपयुक्त नहीं है।

   (iv) प्रेषक एवं प्रेषिति दोनों की उपस्थिति आवश्यक होती है।

   (v) इसमें उत्तरदायित्व का निर्धारण करना कठिन होता है।

   (vi) सोचने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिल पाता है।

   (vii) सभी बातों को सुनना व उसी के अनुरूप समझना कठिन होता है।

   (viii) मौखिक सन्देशों को दीर्घकाल तक याद नहीं रखा जा सकता।

2. **लिखित सम्प्रेषण (Written Coummunication)** – लिखित सम्प्रेषण का आशय ऐसे सम्प्रेषण से है जिसमें प्रेषक द्वारा सन्देश को लिखित रूप में प्रेषित किया जाता है। लिखित सम्प्रेषण के लिए पत्र, पत्रिकाएँ, प्रतिवेदन, बुलेटिन, कार्यवाही विवरण, कार्यक्रम प्रपत्र, सुझाव पुस्तिकाएँ, ग्राफ, चित्र, डायरियाँ, गृह पत्रिकाएँ, फैक्स, इन्टरनेट व एस.एम.एस. आदि का प्रयोग किया जाता है। लिखित सम्प्रेषण का व्यवसाय के क्षेत्र में सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है। इसे तैयार करते समय पूर्ण सावधानी रखनी चाहिए व जटिल शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

   लाभ – लिखित सम्प्रेषण के निम्नलिखित लाभ हैं –

   (i) लिखित सम्प्रेषण प्रमाण के रूप में हमेशा उपलब्ध रहता है।

   (iii) इसमें शुद्धता व यथार्थता का गुण पाया जाता है।

   (iv) इसमें उत्तरदायित्व निर्धारण करने में सरलता रहती है।

   (v) मुख्य कार्यालय व शाखाओं के मध्य लिखित सम्प्रेषण उपयुक्त रहता है।

   (vi) विस्तृत एवं जटिल सन्देश देने के लिए यह सम्प्रेषण उपयुक्त होता है।

   (vii) सन्देश अधिक स्पष्ट होते हैं। अतः उनका एक समान अर्थ लगाया जा सकता है।

   (viii) कई व्यक्तियों को एक साथ सूचना दी जा सकती है।

   (ix) इसमें भाषा एवं भावनात्मक बाधाओं पर सरलता से नियन्त्रण किया जा सकता है।

   (x) इसमें दोनों पक्षों की उपस्थिति आवश्यक नहीं है।

दोष–लिखित सम्प्रेषण के प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं–

(i) इसमें गोपनीयता का अभाव होता है।

(ii) औपचारिकताओं का पालन करने में समय अधिक लगता है।

(iii) शंकाओं व संदेहों का शीघ्र हल संभव नहीं है।

(iv) प्रतिक्रिया व प्रभाव का तुरन्त पता नहीं लगाया जा सकता है।

(v) संदेश को तैयार करने व भेजने में समय अधिक लगता है।

(vi) संदेश को लिखने के पश्चात् संशोधन या परिवर्तन में कठिनाई आती है।

(vii) इसमें समय, श्रम व धन अधिक लगता है।

(B) गैर–शाब्दिक सम्प्रेषण (Non-Verbal Communication)

गैर शाब्दिक सम्प्रेषण में सन्देशों का आदान–प्रदान करने के लिए शाब्दिक भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता है। इस प्रकार के सम्प्रेषण को सांकेतिक, मूक, अमौखिक अथवा अशाब्दिक सम्प्रेषण भी कहा जाता है। इस प्रकार के सम्प्रेषण में बोलना और लिखना नहीं पड़ता है। सांकेतिक भाषा द्वारा सन्देशों का आदान–प्रदान होता है। गैर शाब्दिक भाषा कई प्रकार की होती है जैसे शरीर की भाषा, पराभाषा, स्पर्श भाषा, कलात्मक भाषा, मौन भाषा एवं समय भाषा इत्यादि। गैर शाब्दिक सम्प्रेषण में प्रति – पुष्टि केवल हाव–भाव या आचरण द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है।

इस प्रकार के सम्प्रेषण में चेहरे के हाव–भाव, शारीरिक प्रदर्शन, आँखों का मिलान, सिर का हिलाना, कन्धों का उचकाना, उच्चारण में उतार–चढ़ाव, पीठ थपथपाना, मुस्कुराना, हाथ मिलाना, मुँह बनाना, पीठ फेर लेना, इशारे करना इत्यादि शामिल हैं। गैर शाब्दिक सम्प्रेषण में शारीरिक भाषा की सबसे अधिक मान्यता है। प्रभावी सम्प्रेषण में गैर शाब्दिक सम्प्रेषण की काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

प्रभावी सम्प्रेषण के तत्त्व (Elements of Effective Communication)

वर्तमान समय में व्यवसाय की सफलता कुशल सम्प्रेषण पर निर्भर करती है। कोई भी व्यवसाय अच्छे सम्प्रेषण के बिना उन्नति नहीं कर सकता है। प्रभावी सम्प्रेषण के लिए आवश्यक तत्त्व इस प्रकार हैं :–

1. **स्पष्टता (Clarity)** – सन्देश की सभी बातें स्पष्ट होनी चाहिए जिससे प्राप्तकर्त्ता उसको उसी अर्थ एवं भाव से समझ सके, जिस अर्थ व भाव से वह सन्देश दिया जाता है।
2. **पूर्णता (Completeness)** – प्रेषित की जाने वाली सूचनाऐं व सन्देश पूर्ण होने चाहिए। अपूर्ण सम्प्रेषण उद्देश्य पूर्ति में असफल रहते हैं। अतः सन्देश इतने पूर्ण होने चाहिए कि

सम्प्रेषण के तत्व एवं प्रक्रिया

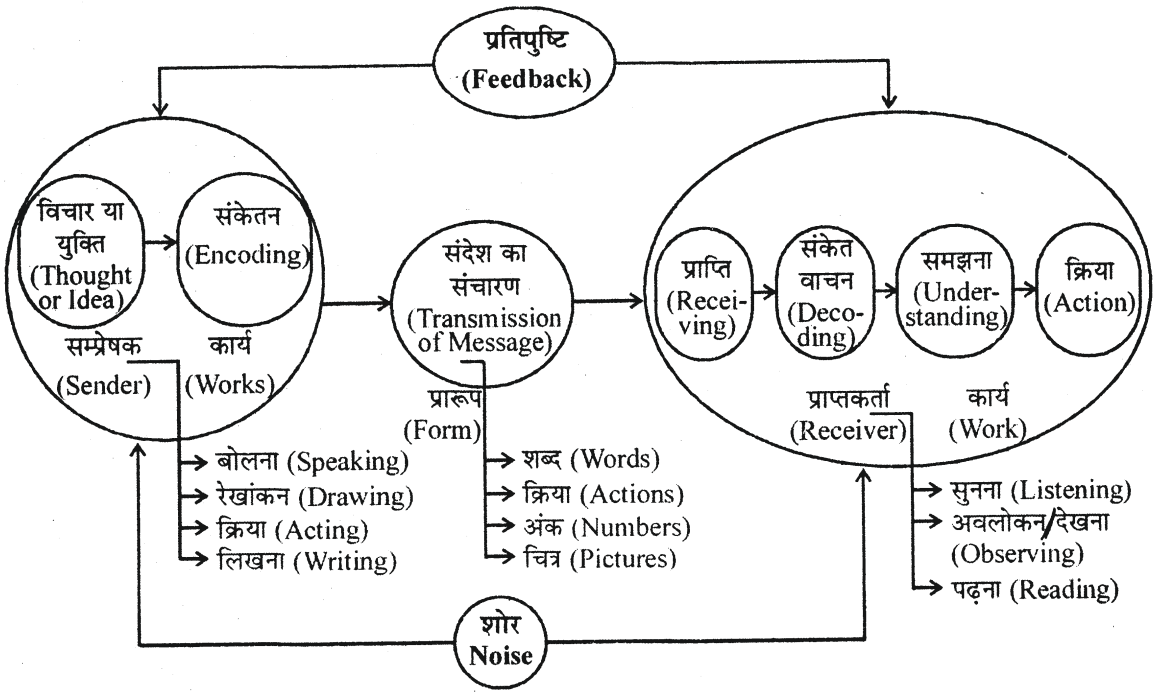

उनको प्राप्त करने वाले को कोई सन्देह नहीं रहे तथा वह उसका सही अर्थ निकाले।

3. **संक्षिप्तता (Conciseness)** – सम्प्रेषण में लम्बी एवं अनावश्यक बातों को शामिल नहीं करना चाहिए। छोटे सन्देश में सभी आवश्यक बातों को शामिल करना चाहिए। पूर्णता के साथ संक्षिप्तता का भी ध्यान रखना चाहिए। सरल व छोटे वाक्यों का उपयोग करके सन्देश तैयार करना चाहिए।

4. **समयानुकूलता (Timeliness)** – सही समय पर प्रेषित सन्देश का अपना अलग ही महत्त्व होता है। सन्देश के प्रेषण में विलम्ब नहीं करना चाहिए। निर्धारित समय के बाद सन्देश भेजने से समय, धन एवं श्रम का दुरूपयोग होता है।

5. **परामर्श (Consultation)** – प्रभावी सम्प्रेषण के लिए यह आवश्यक है कि उससे सम्बन्धित सभी पक्षकारों से विचार–विमर्श किया जावे। उनके विचारों एवं सुझावों को भी ध्यान में रखना चाहिए।

6. **सही तथ्य (Correct Facts)** – सन्देश में दी गई बातें एवं तथ्य सही होने चाहिए। मिथ्या व अनावश्यक बातें सन्देश में शामिल नहीं करनी चाहिए। जब तक इनकी सत्यता के बारे में प्रेषक सन्तुष्ट न हो, तब तक इनका प्रसारण नहीं करना चाहिए।

7. **नम्रता (Courtesy)** – सन्देश की भाषा नम्र होनी चाहिए। कठोर शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। शिष्ट भाषा सन्देश प्राप्तकर्त्ता को अनुकूल रूप से प्रभावित करती है।

8. **लोचता (Flexibility)** – सम्प्रेषण व्यवस्था में लोचशीलता का गुण भी होना चाहिए। यह परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तनों का समायोजन करने में सक्षम होनी चाहिए।

9. **न्यूनतम मध्यस्थ (Minimum Intermediatries)** – सम्प्रेषण प्रक्रिया में मध्यस्थों की संख्या अधिक नहीं होनी चाहिए। मध्यस्थों की संख्या अधिक होने से प्रेषण में अनावश्यक विलम्ब होने व सन्देश के विकृत होने ही संभावना बढ़ जाती है।

10. **भावनात्मक अपील (Emotional Appeal)** – भावनात्मक अपील भी सम्प्रेषण की सफलता को निर्धारित करती है। अतः सन्देश में भावनात्मक प्रभाव प्रकट होना चाहिए।

11. **अभिरूचि (Interest)** – सम्प्रेषण इस प्रकार का होना चाहिए कि उसको प्राप्त करने वाला सन्देश को स्वीकार करके उसमें रूचि लेकर उसके अनुकूल कार्य करे। अतः सम्प्रेषण प्रक्रिया प्रेषक एवं प्रेषिति में अभिरूचि उत्पन्न करने वाली होनी चाहिए।

12. **अच्छा श्रवण (Good Listening)** – सम्प्रेषण की सफलता के लिए प्रेषक एवं प्रेषिति दोनों अच्छे श्रोता होने चाहिए। ध्यानपूर्वक सन्देश सुनने से आपसी समझ उत्पन्न होती है और अनुकूल परिणाम प्राप्त होते हैं।

13. **प्रतिपुष्टि (Feedback)** – सन्देश प्रेषित करनें के पश्चात् उस सन्देश पर प्रेषिति की प्रतिक्रियाओं को भी जानना चाहिए। यदि वह सन्देश को सही रूप में समझ लेता है तो उद्देश्यों को प्राप्त करना सरल हो जाता है।

सम्प्रेषण की बाधाएँ (Barriers of Communication)

सन्देश को सही अर्थ में नहीं समझने तथा प्रेषक एवं प्रेषिति के उद्देश्यों तथा दृष्टिकोणों में विरोधाभासों के कारण सम्प्रेषण के मार्ग में बाधाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। कई बार सन्देश को सही ढंग से नहीं भेजे जाने पर भी भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जो व्यावसायिक संगठन के लिए हानिकारक सिद्ध होती है।

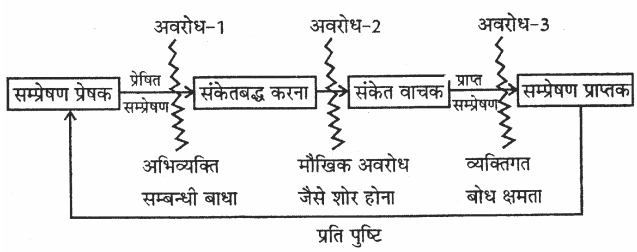

सम्प्रेषण की प्रमुख बाधाएँ इस प्रकार हैं :

1. **भाषा व अर्थ की बाधाएँ (Language and Semantic Barriers)** – सन्देश भेजने वाला जिस अर्थ में सन्देश भेजता है, प्राप्तकर्त्ता यदि उसे अन्य अर्थ में समझ लेता है तो भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। भाषा की अस्पष्टता व कठिन शब्दों का प्रयोग करने के कारण सन्देश को सही अर्थों में समझने में कठिनाई होती है। कभी–कभी भिन्न–भिन्न स्तर के व्यक्ति शब्दों का अलग–अलग अर्थ लगा लेते हैं जिससे भी सन्देश प्रभावहीन हो जाता है। अतः सन्देश प्रेषित करने वाला व्यक्ति यदि सन्देश प्रेषित करने में असावधानी करता है तो सन्देश प्राप्तकर्त्ता उसको सही अर्थों में नहीं समझ पाता और यह बाधा उपस्थित हो जाती है।

2. **शोर बाधाएँ (Noise Barriers)** – शोर सम्प्रेषण की प्रमुख बाधा है। शोर के कारण सूचनाओं को प्राप्त करने में

कठिनाइयाँ आती हैं। शोर के कारण जब प्रेषक एवं प्रेषिति सन्देश को ठीक प्रकार से सुन व समझ नहीं पाते हैं तो वे उसका त्रुटिपूर्ण ढंग से अर्थ निकाल कर सन्देश को अर्थहीन बना देते हैं। आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के शोर सम्प्रेषण प्रक्रिया में बाधा उपस्थित करते हैं जिससे वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं हो पाती हैं।

3. **संचार अतिभार (Communication Overload)** – जब संचार का भार अधिक होता है तो सूचनाओं का प्रसारण करना जटिल हो जाता है तथा त्रुटियों की संभावना बढ़ जाती है। संदेश भेजने वाला सही ढंग से अपना कार्य नहीं कर पाता है जिससे सम्प्रेषण में अनावश्यक विलम्ब होता है।

4. **सांस्कृतिक बाधाएँ (Cultural Barriers)** – दुनिया भर में भिन्न–भिन्न सांस्कृतिक मूल्यों, परम्पराओं, रहन–सहन, रीति–रिवाज व खान–पान वाले लोग निवास करते हैं। सम्प्रेषण का अर्थ प्रेषक एवं प्रेषिति की इन भिन्नताओं से भी प्रभावित होता है। अतः सम्प्रेषण करते समय इन सबका ध्यान रखना भी अति आवश्यक है। यदि सम्प्रेषण प्रक्रिया में इन घटकों को ध्यान में नहीं रखा जाता है तो सम्प्रेषण की प्रभावशीलता में बाधा उपस्थित हो जाती है।

5. **मनोभाव (Emotions)** – मनोभावों का सन्देश प्रक्रिया पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। कई बार प्रेषक एवं प्रेषिति विपरीत भावनात्मक दृष्टिकोण के कारण एक–दूसरे की बात को समझना ही नहीं चाहते। ऋणात्मक भावनाएँ सम्प्रेषण के मार्ग में बाधा उत्पन्न कर उसे अप्रभावी बना देती है।

6. **छानना (Filtering)** – कई बार अधीनस्थ व्यक्ति अपने उच्चाधिकारियों को केवल वे ही सूचनाएँ एवं सन्देश प्रेषित करना चाहते है जो उनको अच्छे लगते हैं। सन्देश को वास्तविक एवं यथार्थ रूप में नहीं भेजा जाता है। सूचना पूर्ण रूप से नहीं भेजी जाकर अधूरी भेजी जाती है। अतः वास्तविक सन्देश उच्चाधिकारियों तक नहीं पहुँचने के कारण सम्प्रेषण प्रभावहीन हो जाता है।

7. **संगठन संरचना की बाधाएँ (Barriers due to Organisation Structure)** – संगठन संरचना सम्प्रेषण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सम्प्रेषण जितने अधिक स्तरों से गुजरेगा उसमें उतनी ही अधिक बाधायें आती है। अधिक स्तर होने से प्रेषक एवं प्रेषिति के बीच दूरी बढ़ जाती है जिसके कारण उनके मध्य सम्पर्क नहीं हो पाता है। इससे भी सम्प्रेषण के मार्ग में कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं

8. **परिवर्तन का विरोध (Resistance to Change)** – संगठन में कार्यरत कर्मचारी परिवर्तनों का विरोध करते है। उन्हें वर्तमान परिस्थितियों में ही कार्य करना अच्छा लगता है। परिवर्तन लाने पर वे स्वयं को असुरक्षित महसूस करते है। अतः नवीन पद्धतियों, तरीकों एवं विचारों को स्वीकार नहीं करते हैं। जिसके कारण परिवर्तन से सम्बन्धित सम्प्रेषण के प्रवाह में बाधा उत्पन्न हो जाती है।

9. **श्रवण सम्बन्धी बाधाएँ (Barriers Regarding Listening)** – जब प्रेषक या प्रेषिति सन्देश को पूरा या ठीक प्रकार से सुन व समझ नहीं पाते है तो सम्प्रेषण निरर्थक हो जाता है। कई बार कुछ व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की बातों को सुनना पसन्द नहीं करते हैं तथा वे अपनी ही बातें करते रहते हैं, इस प्रकार की आदत के कारण भी प्रभावी सम्प्रेषण में बाधा उत्पन्न होती है।

10. **दोषपूर्ण उद्देश्य सम्बन्धी बाधाएँ (Barriers Regarding Defective Objectives)** – संस्था के उद्देश्य स्पष्ट होने चाहिए। अस्पष्ट उद्देश्यों के आधार पर वांछित परिणाम प्राप्त नहीं होंगे। कई बार जो संदेश प्रेषित किये जाते हैं उनके उद्देश्य भी स्पष्ट नहीं होते हैं तथा विभिन्न विभागों के उद्देश्यों को लेकर भी कई मतभेद उत्पन्न हो जाते हैं जिसके कारण सम्प्रेषण असफल हो जाता है।

11. **अल्प स्मरण की बाधाएँ (Barriers due to Poor Retention)** – अल्प स्मृति के कारण व्यक्ति सन्देशों को याद नहीं रख पाते हैं तथा वे उन्हें भूल जाते हैं। ऐसी स्थिति में यदि संदेश को सुरक्षित नहीं रखा गया है तो उन्हें पुनः स्मरण करवाना पड़ता है।

12. **पद या स्तर की बाधाएँ (Barriers due to Status)** – जब संगठन में कार्यरत व्यक्तियों में पद या स्तर का विचार आता है तो वह सन्देश सम्प्रेषण के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करता है। उच्चाधिकारी वर्ग अधिक शक्ति का अनुभव करते है तथा अधीनस्थों को आवश्यक सूचनायें नहीं देते हैं। अधीनस्थ कर्मचारी अपने उच्चाधिकारियों को सुझाव एवं शिकायतें प्रस्तुत करने से भय खाते हैं। वे केवल उन्हीं सूचनाओं को प्रेषित करते है जिनसे उच्चाधिकारी प्रसन्न होते हैं। अतः पद व स्तर के कारण सम्प्रेषण में बाधा उत्पन्न होती है।

13. **मानवीय सम्बन्धों के अभाव की बाधाएँ (Barriers due to Lack of Human Relations)** – प्रबन्धक आदेश व निर्देश प्रदान करने में विश्वास रखते हैं। वे कर्मचारियों की समस्याओं की ओर कोई ध्यान नहीं देते हैं। मधुर मानवीय सम्बन्धों के अभाव में आपस में संघर्ष, मतभेद एवं असहयोग

उत्पन्न होता है जिसके कारण सम्प्रेषण के मार्ग में बाधा उपस्थित होती है।

14. **कमजोर नेतृत्व (Weak Leadership)** – अच्छा नेतृत्व कुशल सम्प्रेषण प्रदान करता है जिसके कारण प्रबन्धकों एवं कर्मचारियों में अच्छे सम्बन्धों का निर्माण होता है। यदि कमजोर नेतृत्व है तो प्रबन्धक अधीनस्थों को आवश्यक निर्देश प्रदान नहीं कर पाते हैं जिससे सम्प्रेषण के मार्ग में कई प्रकार की बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं।

सम्प्रेषण की बाधाओं को दूर करने हेतु सुझाव (Suggestions for Removing Barriers of Communication)

सम्प्रेषण की बाधाओं को दूर करने हेतु निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत हैं :–

1. **सरल भाषा (Easy Language)** – सम्प्रेषण में सरल एवं समझने योग्य भाषा होनी चाहिए। तकनीकी, भ्रामक व द्वि–अर्थी शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

2. **प्रत्यक्ष सम्प्रेषण (Direct Communication)** – जहाँ तक सम्भव हो सम्प्रेषण प्रत्यक्ष होना चाहिए। इससे सन्देश सही समय व सही अर्थों में प्रेषिति के पास पहुँच जाता है।

3. **उद्देश्यों की स्पष्टता (Clarity of Objectives)** – सम्प्रेषण के उद्देश्य स्पष्ट होने चाहिए। इससे असमंजस की स्थिति उत्पन्न नहीं होती है तथा वांछित लक्ष्य प्राप्त करने में सरलता रहती है।

4. **सम्प्रेषण नियोजन (Communication Planning)** – सम्प्रेषण नियोजित होना चाहिए। योजनाबद्ध सम्प्रेषण से प्रत्येक कार्य व्यवस्थित रूप से पूर्ण होता है। योजनाबद्ध सम्प्रेषण होने से अधीनस्थ अपने समय का सदुपयोग करते हैं तथा सभी कार्य व्यवस्थित रूप से पूर्ण करते हैं।

5. **आपसी विश्वास (Mutual Trust)** – उच्चाधिकारियों एवं अधीनस्थों के बीच आपसी विश्वास की भावना होनी चाहिए जिससे कार्य निष्पादन कुशलतापूर्वक होता है। अधीनस्थ द्वारा प्रस्तुत सुझावों को महत्त्व देना चाहिए। उच्चाधिकारियों को संस्था में अनुकूल वातावरण का निर्माण करना चाहिए।

6. **उचित माध्यम (Proper Media)** – सम्प्रेषण के माध्यम का चुनाव सावधानी पूर्वक करना चाहिए। अवसर की उपयुक्तता को ध्यान में रखकर माध्यम का चयन करना चाहिए।

7. **समयानुकूलता (Timeliness)** – संदेश का प्रसारण उचित समय पर किया जाना चाहिए। उचित समय पर भेजे गये सन्देश अधिक प्रभावी सिद्ध होते हैं। यदि उच्च समय पर सन्देश नहीं दिये जाते हैं तो उनका कोई महत्त्व नहीं होता है।

8. **व्यवस्थित सम्प्रेषण (Systematic Communication)** – सम्प्रेषण व्यवस्था सुव्यवस्थित होनी चाहिए। सम्प्रेषण की विषय–वस्तु , समय व उद्देश्य पूर्व निर्धारित होने चाहिए।

9. **अच्छा श्रवण (Good Listening)** – प्रेषक एवं प्रेषिति दोनों को अच्छा श्रोता होना चाहिए। दोनों को एक – दूसरे की बात विश्वास एवं धैर्य के साथ सुननी चाहिए जिससे आपसी समझ उत्पन्न होती है।

10. **संगठन स्तरों में कमी (Minimum Organisation Levels)** – संगठन में जितने अधिक स्तर होंगे, सम्प्रेषण के मार्ग में भी उतनी ही अधिक बाधा उपस्थित होती है अतः प्रभावी सम्प्रेषण के लिए संगठन स्तर न्यूनतम होने चाहिए जिससे सन्देश शीघ्र एवं सही समय पर पहुँच जाता है।

11. **अच्छे मानवीय सम्बन्धों का विकास (Developing Good Human Relations)** – अच्छे मानवीय सम्बन्धों का विकास करके कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। यदि कर्मचारियों के साथ अच्छा व्यवहार किया जाये तो वे प्रबन्ध के प्रति अनुकूल धारणा बनाकर उनके आदेशों की पालना करते हैं। अतः मानवीय सम्बन्धों सम्बन्धी बाधाओं को दूर करने के लिए संगठन में अच्छा वातावरण तैयार करना चाहिए।

12. **प्रभावी नेतृत्व (Effective Leadership)** – प्रबन्धक अच्छा पर्यवेक्षण एवं नेतृत्व प्रदान करके सम्प्रेषण को प्रभावशाली बना सकते है। संस्था द्वारा बनाई गई नीतियों एवं नियमों का सभी अधिकारियों द्वारा पालन करना चाहिए जिससे अधीनस्थों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

13. **पूर्व धारणाओं का परित्याग (Removal of Presumptions)** – प्रेषक एवं प्रेषिति को पहले से ही कोई धारणा नहीं बनानी चाहिए। बिना किसी पूर्वाग्रह के अच्छे वातावरण का निर्माण करके सम्प्रेषण करना चाहिए। यदि पहले से ही सम्प्रेषण के बारे में कोई मान्यता बना ली जाए तो सम्प्रेषण अपने उद्देश्य प्राप्ति में सफल नहीं होगा।

14. **वैयक्तिक भिन्नताओं पर ध्यान (Consideration of Individual Differences)** – उच्चाधिकारियों को अधीनस्थ कर्मचारियों की योग्यता व स्थिति को ध्यान में रखकर ही सूचनाओं का प्रेषण करना चाहिए। यदि सम्प्रेषण के दौरान प्रेषक ,प्रेषिति की वैयक्तिक भिन्नताओं को ध्यान में रखकर सन्देश प्रेषित करता है तो सम्प्रेषण के मार्ग में आने

वाली बाधाओं को रोका जा सकता है।

15. **अनौपचारिक सम्प्रेषण का प्रयोग (Use of Informal Communication)** – प्रबन्धक को औपचारिक सम्प्रेषण के साथ–साथ अनौपचारिक सम्प्रेषण को भी महत्त्व देना चाहिए। इनके उपयोग से भ्रम व शंकाओं को दूर करने में सहायता मिलती है।

16. **पदोन्नति के निश्चित नियम (Determining Clear-cut Rules of Promotion)** – पदोन्नति की आशा में कर्मचारी अपने उच्चाधिकारियों के सामने सही बात एवं सुझाव प्रस्तुत नहीं कर पाते हैं। अतः सम्प्रेषण की इस बाधा को दूर करने हेतु संगठन में पदोन्नति के आधार व नियम पूर्व निश्चित होने चाहिए तथा उनका पूर्ण रूप से पालन होना चाहिए।

17. **अनुगमन एवं प्रतिपुष्टि (Follow-up and Feedback)** – सम्प्रेषण की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि सन्देश प्राप्तकर्त्ता उसको उसी अर्थ में समझे, जिस अर्थ में प्रेषक ने भेजा है। अतः सन्देश को प्रेषित करने के बाद उस पर प्रेषिति की प्रतिक्रिया को भी ज्ञात करना चाहिए एवं उसके भ्रम, शंकाओं एवं समस्याओं को शीघ्र दूर करना चाहिए। प्रभावी सम्प्रेषण के लिए अनुगमन एवं प्रतिपुष्टि आवश्यक है।

व्यावसायिक पत्र (Business Letters)

व्यापारिक कार्यों के सम्बन्ध में दो पक्षों के बीच में जो लिखित में पत्र व्यवहार होता है उसे व्यावसायिक पत्र व्यवहार कहते हैं। पत्र व्यवहार व्यवसाय का अभिन्न अंग है। व्यवसाय के विकास के साथ–साथ पत्र व्यवहार के महत्त्व को भी स्वीकार किया गया। व्यावसायिक पत्र व्यवसाय के विकास में सहायक होते हैं तथा विवाद की दशा में लिखित प्रमाण होते हैं।

प्रभावी व्यावसायिक पत्र की विशेषताएँ (Characteristics of an Effective Business Letter)

अच्छे व्यावसायिक पत्रों में निम्नलिखित विशेषताओं अथवा गुणों का होना आवश्यक है –

1. **स्पष्टता (Clearness)** – अच्छा पत्र वह माना जाता है जो एक बार पढ़ने मात्र से ही लेखक के पत्र लिखने के उद्देश्य को स्पष्ट कर दे। द्वि–अर्थी एवं व्यंग्यात्मक शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। सरल भाषा एवं युक्ति संगत शब्दों का प्रयोग करना चाहिए जिससे वह पाठक को शीघ्र समझ में आ जाए।

2. **पूर्णता (Completeness)** – पत्र में विषय से सम्बन्धित सभी बातों का समावेश होना चाहिए। कोई महत्त्वपूर्ण बात छूटनी नहीं चाहिए। यदि लिखा गया पत्र किसी भी प्रकार से अपूर्ण होगा तो अनावश्यक पुनः पत्र व्यवहार करना पड़ेगा जिससे समय, श्रम व धन की बर्बादी होगी।

3. **नम्रता (Courtesy)** – पत्र लिखते समय शिष्ट और मधुर भाषा का प्रयोग करना चाहिए। पत्र पढ़ने वाला आवेश में आ जाये ऐसे अप्रिय शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। अशिष्ट भाषा वाले पत्र संस्था की ख्याति पर बुरा प्रभाव डालते हैं।

4. **सत्यता और ईमानदारी (Accuracy and Honesty)** – पत्र में लिखी गई प्रत्येक बात, तथ्य व सूचनाएँ सत्य और विश्वसनीय होनी चाहिए। ग्राहकों को धोखे में डालने हेतु कोई कार्य नहीं करना चाहिए। व्यापारी को सदैव अपने कार्य के प्रति ईमानदार होना चाहिए। बेईमानी करने से व्यापार की प्रतिष्ठा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। व्यापार की उन्नति ईमानदारी से कार्य करने से ही होती है।

5. **प्रभावशीलता (Effectiveness)** – पत्र रोचक, सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण होना चाहिए। व्यापारिक पत्र में ग्राहक में माल क्रय की लालसा उत्पन्न करने व नये ग्राहक जोड़ने की शक्ति होनी चाहिए। पत्र ग्राहकों में प्रेरणा उत्पन्न करने वाला होना चाहिए। एक अच्छा पत्र वही माना जाता है जो कि अपने वांछित उद्देश्य की प्राप्ति में सफल हो जावे।

6. **स्वच्छता (Neatness)** – एक अच्छे व्यावसायिक पत्र में स्वच्छता का गुण भी होना चाहिए। यदि पत्र हाथ से लिखे हुए हों तो अक्षरों की लिखावट समझ में आने वाली होनी चाहिए। पत्र में अशुद्धियाँ नहीं होनी चाहिए। पत्र की विषय वस्तु के अनुरूप ही कागज का आकार होना चाहिए। लिफाफे पर पता ठीक व सुन्दर ढंग से लिखा जाना चाहिए।

7. **संक्षिप्तता (Conciseness)** – पत्र लिखते समय पूर्णता के साथ संक्षिप्तता को अपनाना चाहिए। समय अमूल्य होता है, प्रत्येक व्यवसायी अपने कार्यों में व्यस्त रहता है। अतः अधिक बड़े पत्र पढ़ते हेतु उसके पास समय नहीं होता है और वह उसे रद्दी में डाल देता है। अतः पत्र उतने ही बड़े लिखने चाहिए, जितनी आवश्यकता है। छोटे पत्र को पढ़ने में समय कम लगता है।

8. **प्रासंगिकता (Relativity)** – पत्र में विषय से सम्बन्धित बातें ही लिखनी चाहिए। अनावश्यक एवं विषय से हटकर बातें लिखने से पत्र अप्रभावी हो जाता है। पत्र प्रासंगिक होना चाहिए।

9. **सन्तुष्टि (Satisfaction)** – पत्र में लिखी जाने वाली प्रत्येक बात तर्क–युक्त होनी चाहिए। व्यक्ति उसका अध्ययन करने के बाद पूर्ण रूप से सन्तुष्ट होना चाहिए। वस्तु की श्रेष्ठता की गारन्टी देकर ग्राहक को क्रय हेतु आकर्षित एवं

सन्तुष्ट किया जा सकता है।

10. **शृंखलाबद्धता (Unity)** – पत्र में प्रत्येक बात तर्क एवं कारण सहित लिखनी चाहिए। सन्देश की प्रत्येक बात क्रमबद्ध होनी चाहिए जिससे पत्र में तारतम्यता बनी रहती है।

11. **समयानुकूलता (Timeliness)** – पत्र लिखते समय उचित समय का भी ध्यान रखना चाहिए। यदि पत्र लिखने में अनावश्यक देरी की जाती है तो ग्राहक में असन्तोष की भावना उत्पन्न हो सकती है।

12. **आकर्षण (Attraction)** – पत्र इस प्रकार का होना चाहिए कि पढ़ने वाला स्वाभाविक रूप से उस पत्र के प्रति आकर्षित हो। अच्छे कागज पर साफ व सुन्दर अक्षरों में लिखा गया पत्र ग्राहकों पर अनुकूल प्रभाव डालता है।

13. **मौलिकता (Originality)** – पत्र में कृत्रिम शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। उसका विषय मौलिक होना चाहिए। मौलिकता ग्राहकों को आकर्षित करने में सफल होती है।

व्यावसायिक पत्रों के प्रकार (Types of Business Letters)

1. **पूछताछ सम्बन्धी पत्र (Letters of Enquiry)** – माल क्रय करने से पूर्व व्यापारी विक्रय की शर्तों की जानकारी, मूल्य पूछने अथवा नमूने मंगवाने हेतु जो पत्र लिखता है, उन्हें पूछताछ के पत्र कहते हैं। क्रेता को जिन वस्तुओं के बारे में पूछताछ करनी है, उनके पूर्ण नाम तथा अन्य बातें जो वह जानना चाहता है, स्पष्ट रूप से लिखनी चाहिए।

2. **उद्धरण पत्र (Letters of Quotation)** – इस प्रकार के पत्र पूछताछ के पत्रों का उत्तर देने के लिए लिखे जाते हैं। पत्र प्राप्त होने पर व्यापारी उत्तर में अपनी शर्तें, भाव, प्रकार, मूल्य, दी जाने वाली छूट आदि का उल्लेख करता है। ऐसे पत्र की भाषा विनम्र होनी चाहिए तथा इनका शीघ्र उत्तर देना चाहिए।

3. **आदेश पत्र (Letters of Orders)** – जब विभिन्न विक्रेताओं से क्रेता को इच्छित सूचनायें एवं जानकारी प्राप्त हो जाती है तो वह क्रय हेतु आदेश देने का निर्णय करता है। आदेश पत्र तैयार करते समय पूर्ण सावधानी रखनी चाहिए। आदेश की मात्रा, किस्म, रंग, रूप, आकार, प्रकार एवं अन्य विवरण इत्यादि का स्पष्ट उल्लेख करना चाहिए।

4. **माल प्रेषण सूचना पत्र (Letters of Goods Consignment)** – जब विक्रेता द्वारा क्रेता के आदेशानुसार माल भिजवा दिया जाता है तो इस प्रकार का पत्र लिखा जाता है। इस पत्र में इस बात का उल्लेख किया जाता है कि माल कब तथा किस माध्यम द्वारा भेजा गया है। बिल्टी या बीजक भी इसी पत्र के साथ भेज दिया जाता है।

5. **गश्ती पत्र या परिपत्र (Circular Letters)** – जब एक ही विषय पर अनेक व्यक्तियों को सूचना भेजी जाती है तब गश्ती पत्र लिखा जाता है। इसमें सूचनाएँ समान प्रकार की होती हैं किन्तु प्राप्तकर्त्ता व्यक्ति भिन्न–भिन्न होते हैं। इस प्रकार के पत्र कार्यालय के नाम में परिवर्तन, माल के विज्ञापन, नये साझेदार के प्रवेश, पुराने साझेदार के अलग होने पर, नवीन कार्यालय की स्थापना, बचे हुए स्टॉक को कम मूल्य पर बेचने या अन्य कोई आवश्यक जानकारी देने हेतु लिखे जाते हैं। इस प्रकार के पत्रों का आवश्यक विवरण लिख लिया जाता है तथा उसकी आवश्यकतानुसार प्रतियाँ तैयार करवा ली जाती हैं, केवल पाने वाले का पता लिखने हेतु स्थान खाली रखा जाता है।

6. **तकादे का पत्र (Dunning Letters)** – जब व्यापारी द्वारा माल उधार पर बेचा जाता है तथा ग्राहक समय पर ऋण का भुगतान नही कर पाते है तो उन्हें याद दिलाने के लिए तकादे के पत्र लिखे जाते हैं। इस प्रकार के पत्र कई बार लिखे जा सकते हैं। प्रारम्भ में पत्र केवल ऋण की याद दिलाने के उद्देश्य से लिखा जाता है जबकि बाद में पत्रों में कठोर भाषा का प्रयोग किया जा सकता है।

7. **संदर्भ पत्र (Letters of Reference)** – यदि माल का विक्रय उधार पर किया जाता है तो ग्राहक की आर्थिक स्थिति एवं साख की जानकारी करने हेतु जो पत्र लिखे जाते हैं, उन्हें सन्दर्भ पत्र के नाम से जाना जाता है। नये ग्राहक जो उधार माल क्रय करना चाहते हैं, उन्हें विक्रेता कुछ व्यापारियों अथवा बैंकों के नाम बताने को कहता है जो उसके सम्बन्ध में पूरी जानकारी रखते हों। इस सूचना के प्राप्त होने पर व्यापारी इन संदर्भित व्यक्तियों से ग्राहक की आर्थिक स्थिति के बारे में पता लगाकर माल उधार देने या नहीं देने का निर्णय लेता है। इन पत्रों को सन्दर्भ मांगने का पत्र, सन्दर्भ देने का पत्र, आर्थिक स्थिति एवं व्यापारिक व्यवहार की पूछताछ का पत्र, अनुकूल या प्रतिकूल उत्तर देने का पत्र अथवा सूचना देने की असमर्थता दिखाने का पत्र इत्यादि कई भागों में विभाजित कर सकते हैं।

8. **शिकायती पत्र (Letters of Complaint)** – माल भेजने में विलम्ब होने पर माल के कम होने, आदेशानुसार नहीं होने, घटिया किस्म का होने, व्यापारी द्वारा असावधानी से भेजने या रेलवे अथवा डाकखाने की असावधानी से चोरी या टूट–फूट हो जाने पर इस प्रकार के पत्र लिखे जाते हैं। इस प्रकार के पत्र लिखते समय सावधानी और संयम से काम लेना चाहिए।

शिकायत का पूर्ण विवरण लिखकर सहयोग व क्षतिपूर्ति प्रदान करने हेतु आग्रह करना चाहिए।

9. **साख पत्र (Letters of Credit)** – साख पत्र एक व्यक्ति के नाम अथवा एक से अधिक व्यक्तियों के नाम लिखे जा सकते हैं। इन पत्रों का उद्देश्य निश्चित व्यक्ति को विभिन्न स्थानों पर आवश्यकतानुसार धनराशि प्राप्त करने का अधिकार देना है। बैंक या व्यापारी अपने एजेन्ट या अधिकृत व्यक्ति को इस प्रकार के निर्देश देता है कि वे एक निश्चित धनराशि उस व्यक्ति को देवें जिसका नाम उस पत्र में लिखा हुआ है।

10. **बैंक सम्बन्धी पत्र (Letters Regarding Bank)** –वर्तमान समय में व्यापारी एवं बैंक के बीच कई महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए पत्र व्यवहार होता है। चैक के अनादरित होने, चैक खोने की सूचना बैंक को देने, अधिविकर्ष की सुविधा देने, साख का प्रमाण–पत्र देने एवं नया खाता खोलने आदि कार्यों के लिए विविध प्रकार के बैंक पत्र लिखे जाते हैं।

11. **एजेन्सी सम्बन्धी पत्र (Letters Regarding Agency)** – इस प्रकार के पत्र व्यक्ति द्वारा एजेन्सी लेने हेतु, व्यापारी द्वारा एजेन्सी देने हेतु अथवा एजेन्सी समाप्ति हेतु लिखे जाते है।

12. **बीमा सम्बन्धी पत्र (Letters of Insurance)**– व्यापारिक कार्यों में अनेक प्रकार की जोखिम होती है। इन अनिश्चिताओं का सामना करने के लिए व्यापारी बीमा करवाते है। बीमा करवाते समय और क्षतिपूर्ति के दावे की राशि प्राप्त करने हेतु व्यापारियों को बीमा कम्पनियों को पत्र लिखने पड़ते है।

व्यावसायिक पत्र का स्वरूप (Form of Business Letter)

व्यावसायिक पत्रों के निम्नलिखित मुख्य भाग अथवा अंग होते हैं –

1. **शीर्षक (Heading)**– व्यावसायिक पत्र के शीर्ष पर संस्था का नाम, पता, टेलीफोन नम्बर, फैक्स नम्बर, ई–मेल, वेबसाइट आदि का उल्लेख होता है। शीर्षक सुन्दर व आकर्षक होना चाहिए। यह प्रायः मुद्रित होता है।

2. **पत्र संख्या (Letter Number)**– प्राप्त पत्रों या भेजे गये पत्रों का संदर्भ देने के लिए इनका प्रयोग किया जाता है। पत्र क्रमांक के माध्यम से पत्र प्राप्तकर्त्ता फाइल किये गये पत्र को भविष्य में देखकर शीघ्र ही जानकारी प्राप्त कर सकता है। पत्र संख्या इस प्रकार दी जा सकती है।

जे.ए.कं./30/2015

3. **दिनांक (Date)**–किसी भी पत्र में दिनांक का बहुत महत्त्व होता है। इसका स्थान कार्यालय के पते के साथ नीचे दाहिनी ओर होता है। यदि व्यापार के पते के साथ दिनांक भी जोड़ दी जाती है तो उसका प्रारूप निम्नानुसार होगा।

15,
त्रिपोलिया बाजार,
जयपुर
30 नवम्बर,
2015

4. **अन्दर का पता (Inside Address)** –व्यावसायिक पत्रों के शीर्ष के नीचे बायीं तरफ प्राप्त करने वाले का नाम व पता लिखा जाता है। यह पता तीन पक्तियों में लिखा जाता है। प्रथम पंक्ति में पत्र प्राप्तकर्ता का नाम, दूसरी पंक्ति में गली, मोहल्ला या बाजार का नाम तथा तीसरी पंक्ति में शहर या प्रदेश का नाम लिखा जाता है। भीतरी पता लिखने की अमेरिकी व अंग्रेजी दो विधियों का प्रचलन है। इन दोनों विधियों से पता इस प्रकार लिखा जाता है:

अमेरिकी रीति से	अंग्रेजी रीति से
सर्व श्री दिनेश एण्ड कम्पनी	सर्व श्री दिनेश एण्ड कम्पनी
10, त्रिपोलिया बाजार	10, त्रिपोलिया बाजार
जयपुर।	जयपुर।

प्राप्तकर्त्ता का पता लिखते समय आदर सूचक शब्द भी लगाना चाहिए। पुरूषों के नाम के पहले श्री या श्रीयुत, विवाहित महिलाओं के लिए श्रीमती तथा अविवाहित महिलाओं के लिए कुमारी अथवा सुश्री आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। कभी–कभी नाम के अन्त में 'जी' शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। यदि किसी व्यक्ति ने विशेष उपाधि प्राप्त कर रखी है तो नाम से पूर्व उस उपाधि का प्रयोग भी करते हैं। साझेदारी फर्म के लिए मैसर्स शब्द का प्रयोग किया जाता है।

5. **विषय (Subject)** – पत्र व्यवहार को शीघ्र समझने के लिए विषय शीर्षक या विषय पंक्ति का प्रयोग किया जाता है। इस शीर्षक को पढ़ते ही यह पता चल जाता है कि पत्र किस बात से सम्बन्धित है। जैसे – विषय : बकाया भुगतान के सम्बन्ध में

सन्दर्भ : आपके पत्र क्रमांक 786 दिनांक 15.10.2015 के सन्दर्भ में।

विषय शीर्षक सम्बोधन के पश्चात् या पहले किसी भी तरह लिखा जा सकता है।

6. **संबोधन (Address)** – पत्र पाने वाले को सम्मान देने के लिए संबोधन का प्रयोग किया जाता है। व्यापारिक पत्रों में संबोधन हेतु श्रीमान्, प्रिय महोदय, माननीय महोदय, प्रिय महोदया या माननीय महोदया आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। प्रणाम या नमस्कार के साथ अभिवादन भी किया जा सकता है।

7. **पत्र का मुख्य भाग (Body of the Letter)** –यह भाग पत्र का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग होता है जो तीन खण्डों में विभक्त हो सकता हैं – 1. प्रारम्भिक भाग 2. मुख्य भाग 3. सारांश प्रेषिति को धन्यवाद, शुभ कामनाओं सहित, आदर सहित या अन्य रूप से सद्भावना प्रकट की जा सकती है।

8. **औपचारिक अन्त (Formal Close)** – अन्त में कुछ आदर सूचक शब्द लिखकर पत्र को समाप्त किया जाता हे। जैसे व्यावसायिक पत्रों में भवदीय, प्रार्थी, विनीत, कृपाभिलाषी एवं आपका विश्वास पात्र इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

9. **हस्ताक्षर व पद नाम (Signature and Designation)** – हस्ताक्षर करने के पश्चात् उसके नीचे अपना पद, विभाग व कम्पनी का नाम आदि लिखना चाहिए।

10. **संलग्न (Enclosures)** – कई बार व्यावसाहिक पत्रों के साथ महत्त्वपूर्ण दस्तावेज जैसे मूल्य सूचियाँ, बीजक, बैंक ड्राफ्ट इत्यादि संलग्न होते हैं। पत्रों की संख्या का उल्लेख करते हुए पत्र के बायीं और सबसे नीचे इनका उल्लेख करना चाहिए।

11. **लिपिक के हस्ताक्षर (Signature of Clark)** – पत्र के लेखन के लिए उत्तरदायी ठहराने के लिए संलग्न के नीचे पत्र को लिखने या टाइप करने वाले व्यक्ति के लघु हस्ताक्षर भी करवाये जाते हैं।

12. **पुनश्च (Post Script)** –यदि पत्र समाप्त करने के बाद यह पता लगता है कि कोई महत्त्वपूर्ण बात लिखने से रह गई है तो ऐसी स्थिति में 'पुनश्च' शब्द लिखकर उस बात को और लिखने के उपरान्त लेखक पुनः हस्ताक्षर करता है।

13. **अन्य निर्देश (Other Direction)** – पत्र को भेजने के सम्बन्ध में आवश्यक निर्देश जैसे 'गोपनीय' 'अति–आवश्यक' या 'स्पीड पोस्ट' से भेजा जावे इत्यादि निर्देश दिये जा सकते हैं। इन निर्देशों को पत्र के शीर्षक के ऊपर लाल स्याही से लिखना चाहिए।

सारांश

कार्यालय सम्प्रेषण प्रबन्धकों के लिए संगठनात्मक लक्ष्यों की पूर्ति का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। सम्प्रेषण एक गतिशील प्रक्रिया है। यह दो या दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य विचारों, तथ्यों, अनुमानों एवं संवेगों का पारस्परिक विनिमय है।

सम्प्रेषण की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि प्रेषक एवं प्रेषिति दोनों सम्प्रेषण को एक ही अर्थ में समझे। सम्प्रेषण सभी प्रबन्धकीय कार्यों का आधार है। कार्यालय में मूलरूप से सम्प्रेषण का कार्य ही सम्पन्न होता है।

सम्प्रेषण के प्रकारों का सम्बन्ध, क्षेत्र, प्रवाह एवं माध्यम के आधार पर वर्गीकरण किया जा सकता है। इनको सम्बन्धों के आधार पर – औपचारिक एवं अनौपचारिक सम्प्रेषण, क्षेत्र के आधार पर – आन्तरिक एवं बाह्य सम्प्रेषण, प्रवाह के आधार पर – अधोगामी, ऊर्ध्वगामी, समतल एवं विकर्णीय सम्प्रेषण तथा माध्यम के आधार पर शाब्दिक एवं गैर शाब्दिक सम्प्रेषण इत्यादि प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है।

वर्तमान समय में व्यवसाय की सफलता कुशल सम्प्रेषण पर निर्भर करती है। प्रभावी सम्प्रेषण के लिए उसमें सभी आवश्यक तत्त्व होने चाहियें।

सम्प्रेषण के मार्ग में बाधाएँ उत्पन्न होने पर भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जो संगठन के लिए हानिकारक सिद्ध होती हैं। सम्प्रेषण की बाधाओं में भाषा व अर्थ, शोर, संचार अतिभार, सांस्कृतिक, मनोभाव, छानना, संगठन संरचना, परिवर्तन का विरोध, श्रवण सम्बन्धी, अल्प स्मरण की पद या स्तर की मानवीय सम्बन्धों के अभाव एवं कमजोर नेतृत्व की बाधाएँ इत्यादि प्रमुख है।

सम्प्रेषण की बाधाओं को दूर करने हेतु सरल भाषा, प्रत्यक्ष सम्प्रेषण, उद्देश्यों की स्पष्टता, सम्प्रेषण नियोजन, आपसी विश्वास, उचित माध्यम, समयानुकूलता, व्यवस्थित सम्प्रेषण, अच्छा श्रवण, संगठन स्तरों में कमी, अच्छे मानवीय सम्बन्धों का विकास, प्रभावी नेतृत्व, पूर्व धारणाओं का परित्याग, वैयक्तिक भिन्नताओं पर ध्यान, अनौपचारिक सम्प्रेषण का प्रयोग, पदोन्नति के निश्चित नियम एवं अनुगमन एवं प्रतिपुष्टि इत्यादि सुझाव उपयोगी सिद्ध होते हैं।

व्यापारिक कार्यों के सम्बन्ध में दो पक्षों के बीच लिखित में जो पत्र व्यवहार होता है उसे व्यावसायिक पत्र व्यवहार कहते हैं। एक अच्छे व्यावसायिक पत्र में स्पष्टता, पूर्णता, नम्रता, सत्यता और ईमानदारी, प्रभावशीलता, स्वच्छता, संक्षिप्तता, प्रासंगिकता, सन्तुष्टि, श्रृंखलाबद्धता, समयानुकूलता, आकर्षण व मौलिकता इत्यादि गुणों का होना आवश्यक है। व्यावसायिक पत्र कई प्रकार के होते हैं। इनमें पूछताछ सम्बन्धी पत्र, उद्धरण पत्र, आदेश पत्र, माल प्रेषण सूचना एवं गश्ती पत्र, तकादे के पत्र, संदर्भ पत्र, शिकायती पत्र, साख – पत्र, बैंक सम्बन्धी पत्र, एजेन्सी सम्बन्धी पत्र एवं बीमा सम्बन्धी पत्र प्रमुख हैं।

कुछ व्यावसायिक पत्रों के उदाहरण

1. पूछताछ का पत्र –

नवज्योति पुस्तक डिपो
कॉलेज रोड़, कालाडेरा (जयपुर)

दूरभाष : .....
फैक्स : .....
ई–मेल : .....

पत्र क्रमांक : न.ज.प. / 05 / 2015 दिनांक 10 जून 2015

मैसर्स दिनेश पुस्तक सदन
त्रिपोलिया बाजार
जयपुर।

प्रिय महोदय,

हमारे कस्बे में स्कूल एवं महाविद्यालय में वाणिज्य एवं विज्ञान संकाय में बड़ी संख्या में विद्यार्थी अध्ययनरत हैं। यहाँ वाणिज्य एवं विज्ञान विषयों के विद्यार्थियों की संख्या अन्य स्थानों से अधिक है और प्रति वर्ष इसमें वृद्धि हो रही है।

आपके यहाँ से प्रकाशित स्कूल एवं महाविद्यालय स्तर की वाणिज्य एवं विज्ञान की पुस्तकों की बड़ी मांग है। अतः आप हमें आपके यहाँ से प्रकाशित वाणिज्य एवं विज्ञान की पुस्तकों की नवीन संस्करण की सूची उनके मूल्य सहित शीघ्र भिजवाने की व्यवस्था करें।

यह भी अवगत करवाने का कष्ट करें कि आप व्यापारियों को कितनी व्यापारिक व नकद छूट प्रदान करते हैं। यदि आपकी शर्तें अनुकूल हुई तो हम आपको बड़ी संख्या में पुस्तकों के क्रय का आदेश भेजेंगे।

आशा है आप शीघ्र उत्तर देंगे।

भवदीय
नव ज्योति पुस्तक डिपो
संतोष कुमार
साझेदार

2. पूछताछ के पत्र का उत्तर :

दिनेश पुस्तक सदन
त्रिपोलिया बाजार, जयपुर

दूरभाष : .....
फैक्स : .....
ई–मेल : .....

पत्र क्रमांक : द.प.स. / 10 / 2015 दिनांक 15 जून 2015

मैसर्स नवज्योति पुस्तक डिपो
कॉलेज रोड़
कालाडेरा।

प्रिय महोदय,

आपका दिनांक 10 जून 2015 का लिखा हुआ पत्र प्राप्त कर प्रसन्नता हुई। हम आपको हमारे यहाँ से प्रकाशित स्कूल एवं महाविद्यालय स्तर की वाणिज्य एवं विज्ञान की पुस्तकों की नवीन संस्करण की सूची उनके मूल्य सहित प्रेषित कर रहे हैं।

पुस्तकों पर छपे हुए मूल्यों पर हम अपने ग्राहकों को 20 प्रतिशत व्यापारिक छूट देते हैं तथा 15 दिन में सम्पूर्ण भुगतान मिल जाने पर 10 प्रतिशत नकद छूट भी प्रदान करते हैं।

हम आशा करते हैं कि हमारी शर्तें अनुकूल होगीं। आप एक बार पुस्तकें मंगवाकर अवश्य देखिये। हम आपको पूर्ण सन्तुष्टि प्रदान करने का विश्वास दिलाते है। आशा हैं कि आप अपना बहुमूल्य आदेश शीघ्र देंगे।

आपके आदेश की प्रतीक्षा में ।

भवदीय
दिनेश पुस्तक सदन
दिनेश
साझेदार

3. गश्ती पत्र या परिपत्र
(साझेदार का अलग होना और नए साझेदार का प्रवेश)

अशोक कुमार एण्ड कम्पनी
स्टील फर्नीचर विक्रेता

दूरभाष : .....
फैक्स :.....
ई–मेल : .....

पत्र क्रमांक : अ / क.क / 15 / 2015

10, सी–स्कीम
जयपुर
25 नवम्बर, 2015

सर्व श्री ————————————
————————————
————————————

प्रिय महोदय / महोदया,

आपको यह जानकर दुःख होगा कि हमारी फर्म के साझेदार श्री राकेश कुमार ने वृद्धावस्था व बीमारी के कारण 20 दिसम्बर 2015 से इस फर्म से अलग होने का निश्चय किया है। आपने लगभग 20 वर्षों तक फर्म में परिश्रम एवं लगन के साथ कार्य किया है जिससे इस फर्म की ख्याति में निरन्तर वृद्धि हुई है। अतः उनके अलग होने का हमें काफी खेद है।

आपको यह जानकर हर्ष होगा कि श्री राकेश कुमार के अलग होने के उपरान्त श्री राम कुमार ने हमारी फर्म का साझेदार बनने का निश्चय किया है। इस व्यापार में इनकी बहुत ख्याति है अतः इनकी सेवाओं का लाभ मिलने से हमारा व्यापार पूर्व की भाँति कुशलतापूर्वक चलता रहेगा।

आशा है कि आपका पूर्ववत् विश्वास एवं सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

भवदीय
अशोक कुमार एण्ड कम्पनी
प्रबन्धक

4. अन्तिम तकादे का पत्र

सुरेन्द्र कुमार महेन्द्र कुमार
कपड़े के थोक व्यापारी

दूरभाष : .....
फैक्स : .....
ई–मेल : .....

पत्र क्रमांक : एस.एम.के / 60 / 2015

सिविल लाइन्स
जयपुर
15 नवम्बर, 2015

सर्व श्री राधेश्याम एण्ड सन्स
जाटिया बाजार
सीकर

प्रिय महोदय,

हमें लिखते हुए दुःख हो रहा है कि आपके नाम ₹ 15000 का हिसाब नवम्बर 2014 से बाकी चला आ रहा है। इस सम्बन्ध में आपने हमारे क्रमशः 10 अगस्त, 15 सितम्बर एवं 10 अक्टूबर, 2015 को लिखे गये तीन पत्रों में से किसी पर ध्यान नहीं दिया। एक वर्ष की समाप्ति के बाद भी आपने अभी तक भुगतान नहीं किया है। आप हमारे पुराने और प्रतिष्ठित ग्राहकों में से हैं तथा आप से इस प्रकार की आशा हमने कभी नहीं की थी।

हम एक बार आपको पुनः सूचित कर रहे हैं कि पुराने सम्बन्धों को ध्यान में रखते हुए अतिशीघ्र हमारा सारा रूपया भिजवा दें। यदि अब भी आपने रूपये नहीं भिजवाये तो विवश होकर हमें न्यायालय की शरण लेनी पड़ेगी।

आशा करते हैं कि आप उपर्युक्त मूल्य का चैक अतिशीघ्र भेज देंगे और हमारे आपके वर्षों से चले आ रहे मधुर सम्बन्धों को यथावत् बनाये रखेंगे।

भवदीय
सुरेन्द्र कुमार
साझेदार

5. संदर्भ के पत्र
(आर्थिक स्थिति की पूछताछ का पत्र)

जैन एण्ड कम्पनी
होजरी के सामान के थोक विक्रेता

दूरभाष .....
फैक्स .....
ई मेल .....
वेब साइट .....

त्रिवेणी नगर
जयपुर
25 नवम्बर, 2015

पत्र क्रमांक : 1 / ज / क / 105 / 2015

मैसर्स गुप्ता एण्ड कम्पनी
स्टेशन रोड़
सीकर

प्रिय महोदय,

नेहरू बाजार, जयपुर के मैसर्स राम एण्ड सन्स ने हमसे ₹ 1 लाख का होजरी का माल उधार माँगा है। उन्होंने हमें सूचित किया है कि आपका और उनका गत दस वर्षों से व्यापारिक सम्बन्ध चला आ रहा है।

यदि आप उनकी आर्थिक स्थिति, लेन–देन, व्यापारिक व्यवहार एवं प्रतिष्ठा के बारे में पूर्ण विवरण शीघ्र भेज सकें तो हमें प्रसन्नता होगी। हम आपको पूर्ण विश्वास दिलाते हैं कि इस सम्बन्ध में आप द्वारा दी गई जानकारी हमारे तक सीमित एवं गुप्त रहेगी।

आपके उत्तर की हम प्रतीक्षा करेंगे।

भवदीय
जैन एण्ड कम्पनी के लिए
ऋषभ जैन
साझेदार

6. संदर्भ के पत्र
(आर्थिक स्थिति की पूछताछ का अनुकूल उत्तर)

गुप्ता एण्ड कम्पनी

दूरभाष : .....
फैक्स : .....

स्टेशन रोड़,
सीकर,

30 नवम्बर, 2015

पत्र क्रमांक : ग.ए.क / 210 / 2015

मैसर्स जैन एण्ड कम्पनी
त्रिवेणी नगर,
जयपुर।

गोपनीय

प्रिय महोदय,

हमें आपका 25 नवम्बर का पत्र क्रमांक 1 / ज / क / 105 / 2015 मिला।

इस पत्र के सन्दर्भ में लेख है कि मैसर्स राम एण्ड सन्स, नेहरू बाजार, जयपुर हमारे पिछले 10 वर्षों से प्रतिष्ठित ग्राहकों में से एक है। उनका लेनदेन का व्यवहार अच्छा रहा है तथा बाजार में ख्याति एवं आर्थिक स्थिति भी सुदृढ़ है। वे हमारे से प्रतिमाह लगभग ₹ 2 लाख तक का सामान क्रय करते हैं तथा उसका भुगतान भी हमेशा समय पर करते रहते हैं।

हमें पूर्ण विश्वास है कि हमारे द्वारा दी गई सूचना आप पूर्णतः गुप्त रखेंगे तथा इस सूचना से हमारा कोई उत्तरदायित्व उत्पन्न नहीं होगा।

भवदीय
गुप्ता एण्ड कम्पनी के लिए
दिनेश गुप्ता
साझेदार

7. रेलवे को शिकायती पत्र

कोहिनूर बैंगल्स स्टोर

दूरभाष : .....

फैक्स : .....

ईमेल : .....

पत्र क्रमांक : को.बै.स / 170 / 2015

मनिहारों का रास्ता

जयपुर

दिनांक : 25 नवम्बर, 2015

सेवामें,

श्रीमान् अधीक्षक

उत्तर पश्चिम रेलवे,

जयपुर।

विषय : माल टूटने से हुई हानि की क्षतिपूर्ति के सम्बन्ध में।

महोदय,

हमें दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि बैंगलोर से रजत एण्ड कम्पनी ने दिनांक 10 नवम्बर 2015 को बिल्टी संख्या 101 द्वारा हमें 10 पेटी काँच की चूड़ियों की भेजी थी। इस माल की सुपुर्दगी हमें आज दिनांक 25 नवम्बर 2015 को प्राप्त हुई है।

माल को देखने पर ज्ञात हुआ कि रेलवे कर्मचारियों की लापरवाही के कारण 02 पेटी काँच की चूड़ियों की क्षति हो गई है। वे अब बिक्री के योग्य नहीं है।

समस्त माल अच्छी तरह से पैकिंग किया हुआ था तथा पैकिंग पर ''काँच का सामान – सावधानी से रखें'' लिखा हुआ था। क्षतिग्रस्त माल की कीमत ₹ 10,000 / – होती है। क्षति का पूरा विवरण साथ में संलग्न है। अतः आपसे अनुरोध है कि क्षतिपूर्ति के रूप में यह राशि शीघ्र भुगतान करवाने की कार्यवाही करें तथा भविष्य में इस प्रकार की क्षति पुनः नहीं हो इसके लिए अपने कर्मचारियों को भी हिदायत प्रदान करें।

भवदीय

मनोज कुमार

साझेदार

8. बैंक सम्बन्धी पत्र
(बैंक से अधिविकर्ष प्रदान करने के लिए)

कमल एण्ड कम्पनी

दूरभाष : .....
फैक्स : .....
ई मेल : .....

त्रिपोलिया बाजार,
जयपुर
10 नवम्बर, 2015

पत्र क्रमांक : क.ए.क / 78 / 2015

श्रीमान् शाखा प्रबन्धक
ए.बी.सी. बैंक लिमिटेड,
त्रिवेणी नगर
जयपुर

प्रिय महोदय,

त्रिपोलिया बाजार में हमारा स्टील के बर्तनों का व्यवसाय है। हम इस स्थान पर पिछले 30 वर्षों से बर्तनों का व्यवसाय कर रहे हैं। हमारी दुकान की वर्तमान में बर्तनों की बिक्री ₹ 40 लाख के लगभग है। यह बिक्री अगले वर्ष तक ₹ 50 लाख की होने का अनुमान है। आपकी इसी शाखा में हमारा पिछले 10 वर्षों से एक चालू खाता संख्या 51800 भी है। जिसमें हमारा काफी रूपया जमा रहता है।

बढ़ती हुई बिक्री को देखते हुए हमें लगभग ₹ 5 लाख के स्टील के बर्तन बम्बई से और मंगवाने हैं। फर्म अग्रिम भुगतान करने पर ही बर्तन की सुपुर्दगी देगा। अतः यदि आप ₹ 5 लाख 3 माह के लिए अधिविकर्ष प्रदान कर दे तो बड़ी प्रसन्नता होगी। हम इसके लिए आपकी बैंक में नियमों के अनुसार गारन्टी दिलवाने को तैयार हैं। आप बाजार में हमारे विषय व व्यापार की ख्याति के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

आपूर्तिकर्त्ता फर्म का कोटेशन, क्रयादेश तथा अन्य विवरण की प्रति हम संलग्न कर रहे हैं।

हम आशा करते हैं कि आप हमें शीघ्र ही ₹ 10 लाख का अधिविकर्ष स्वीकृत करने का कष्ट करेंगे।

भवदीय
कमल कुमार
साझेदार

9. बीमा सम्बन्धी पत्र
(बीमा कम्पनी से क्षतिपूर्ति करवाने हेतु)

राकेश शर्मा एण्ड कम्पनी
पुस्तक विक्रेता

दूरभाष नं. : ..... चौड़ा रास्ता

फैक्स नं. : ..... जयपुर

पत्र क्रमांक : रा/स/क/50/2015 10 नवम्बर, 2015

दी नेशनल इन्श्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड,

मानसरोवर,

जयपुर

प्रिय महोदय,

हमने आपकी कम्पनी से हमारे पुस्तकों के गोदाम का ₹ 5 लाख का अग्नि बीमा दिनांक 20 जुलाई 2015 को करवाया था। इस पर आपके द्वारा बीमा पॉलिसी संख्या 786 जारी की गई थी। आपको यह सूचित करते हुए बड़ा दुःख हो रहा है कि दिनांक 09 नवम्बर, 2015 की रात्रि को पुस्तकों के गोदाम में अचानक आग लग गई। दमकल को तुरन्त सूचना दी गई। दमकल ने घटना स्थल पर आकर आग को रोकने का पूरा प्रयत्न किया। किन्तु इसके उपरान्त भी गोदाम में रखी पूरी पुस्तकें जलकर नष्ट हो गई। इस आग की घटना से हमें लगभग ₹ 4.50 लाख की हानि हुई है।

आप अपने एजेन्ट को शीघ्र घटना स्थल पर भिजवाकर जले हुए माल का निरीक्षण करवा लेवें तथा क्षति पूर्ति शीघ्र करवाने की व्यवस्था करें।

भवदीय

राकेश शर्मा

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. प्रभावी सम्प्रेषण होना चाहिए –
   (अ) अप्रत्यक्ष (ब) एक–मार्गीय
   (स) द्वि–अर्थी (द) द्वि–मार्गीय
2. कार्यालय आदेश उदाहरण है –
   (अ) उर्ध्वगामी सम्प्रेषण का
   (ब) अधोगामी सम्प्रेषण का
   (स) अनौपचारिक सम्प्रेषण का
   (द) विकर्णीय सम्प्रेषण का
3. संगठन में अफवाहें फैलाने में निम्न में से कौनसी सम्प्रेषण वाहिका प्रयुक्त होती है –
   (अ) अधोगामी (ब) विकर्णीय
   (ग) उर्ध्वगामी (द) अंगूरीलता
4. अनौपचारिक सम्प्रेषण को निम्न में से किस नाम से जाना जाता है –
   (अ) विकर्णीय सम्प्रेषण (ब) समतल सम्प्रेषण
   (स) जन प्रवाद सम्प्रेषण (द) उपर्युक्त सभी नामों से
5. अनौपचारिक समूहों में सन्देश का प्रवाह चलता है –
   (अ) ऊपर से नीचे (ब) आड़े – तिरछे
   (स) नीचे से ऊपर (द) उपर्युक्त सभी
6. किस प्रकार के सम्प्रेषण में सन्देह, भ्रम व आशंकाओं का निवारण उसी समय हो जाता है –
   (अ) लिखित सम्प्रेषण में (ब) सांकेतिक सम्प्रेषण में
   (स) मौखिक सम्प्रेषण में (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं
7. निम्न में कौनसा कथन असत्य है –
   (अ) एकल मार्गीय सम्प्रेषण उर्ध्वगामी होता है
   (ब) एकल मार्गीय सम्प्रेषण लिखित व मौखिक होता है
   (स) सम्प्रेषण विचारों का आदान–प्रदान है
   (द) सम्प्रेषण एक प्रक्रिया है
8. उच्च अधिकारियों से अधीनस्थ अधिकारियों / कर्मचारियों की ओर सन्देश का प्रवाह है –
   (अ) उर्ध्वगामी सम्प्रेषण (ब) अधोगामी सम्प्रेषण
   (स) समतल सम्प्रेषण (द) विकर्णीय सम्प्रेषण
9. भिन्न पदानुक्रम स्तरों के प्रबन्धकों के मध्य होने वाला सम्प्रेषण कहलाता है –
   (अ) अधोगामी (ब) समतल
   (स) विकर्णीय (द) उपर्युक्त सभी
10. निम्न में से कौनसा गैर – शाब्दिक सम्प्रेषण नहीं है –
    (अ) नोटिस (ब) पीठ थपथपाना
    (स) करतब (द) कंधों का उचकाना
11. सम्प्रेषण की तकनीक है –
    (अ) फैक्स (ब) ई–मेल
    (स) एस.एम.एस. (द) उपर्युक्त सभी
12. जब प्रेषक एवं प्रेषिति सन्देश को अलग – अलग अर्थों में समझते हैं तो यह बाधा कहलाती है –
    (अ) पद की बाधा (ब) संगठन संरचना की बाधा
    (स) भाषा की बाधा (द) भावनात्मक बाधा
13. प्रभावी सम्प्रेषण में प्रति–पुष्टि आवश्यक होती है क्योंकि –
    (अ) यह सन्देश को गति प्रदान करती है
    (ब) यह सन्देश प्रेषिति की बौद्धिक क्षमता को प्रदर्शित करती है
    (स) इससे समन्वय में आसानी रहती है
    (द) यह प्रेषक को यह बताती है कि प्राप्तकर्त्ता ने सन्देश का अर्थ समझा है या नही
14. एक व्यावसायिक पत्र में निम्न में से कौनसा आवश्यक तत्त्व होना चाहिए –
    (अ) स्पष्टता (ब) नम्रता
    (स) आकर्षण (द) उपर्युक्त सभी
15. उद्धरण पत्र में विवरण होता है –
    (अ) पत्र की स्वीकृति के बारे में
    (ब) माल का भाव, प्रकार व मूल्य के बारे में
    (स) माल की प्राप्ति के बारे में
    (द) आदेश देने के बारे में
16. गश्ती पत्र लिखा जाता है –
    (अ) नये साझेदार के प्रवेश पर
    (ब) आर्थिक स्थिति जानने के लिए
    (स) माल का नमूना मँगवाने के लिए

(द) आदेश देने के लिए

17. विभिन्न ग्राहकों को एक ही प्रकार की सूचना प्रेषित करने के लिए लिखे जाने वाले पत्र को कहते हैं –

(अ) गश्ती पत्र (ब) आदेश पत्र

(स) तकादे का पत्र (द) साख पत्र

18. तकादे का पत्र लिखने का उद्देश्य होता है –

(अ) सूचना भेजने के लिए (ब) पूछताछ के लिए

(स) आदेश देने के लिए (द) ऋण वसूली के लिए

19. जब माल आदेशानुसार नहीं भेजा गया हो तो निम्न में से किस प्रकार का पत्र लिखा जाता है –

(अ) पूछताछ का पत्र (ब) शिकायती पत्र

(स) परिपत्र (द) तकादे का पत्र

20. जो पत्र किसी बैंक, व्यापारी अथवा एजेन्ट के नाम से निश्चित व्यक्ति को एक निश्चित अवधि में धन प्रदान करने की आज्ञा देते हैं, कहलाते है –

(अ) बैंक सम्बन्धी पत्र (ब) परिचय पत्र

(स) एजेन्सी सम्बन्धी पत्र (द) साख पत्र

21. 'पुनश्च' शब्द को तब लिखा जाता है जबकि –

(अ) पूछताछ का उत्तर देना होता है

(ब) विक्रय में वृद्धि करनी होती है

(स) स्थान परिवर्तन करना होता है

(द) कोई महत्त्वपूर्ण बात पत्र में लिखने से रह जाती है

22. व्यापार का स्थान परिवर्तन होने पर इसकी सूचना देने हेतु लिखे जाने वाले पत्र को कहते हैं –

(अ) पूछताछ के पत्र (ब) सन्दर्भ पत्र

(स) गश्ती पत्र (द) परिचय पत्र

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न :

1. सम्प्रेषण से आप क्या समझते हैं ?
2. औपचारिक सम्प्रेषण किसे कहते हैं ?
3. ऊर्ध्वगामी सम्प्रेषण क्या है ?
4. विकर्णीय संचार किसे कहते हैं ?
5. आन्तरिक सम्प्रेषण से क्या आशय है ?
6. शारीरिक भाषा का उपयोग किस प्रकार के सम्प्रेषण में किया जाता है ?
7. लिखित सम्प्रेषण की कोई दो तकनीकों का नाम लिखिए।
8. मौखिक सम्प्रेषण के कोई दो माध्यमों के नाम लिखिए।
9. प्रभावी सम्प्रेषण की दो आवश्यक बातें लिखिए।
10. समतल सम्प्रेषण से क्या आशय है ?
11. शिकायती पत्र कब लिखे जाते हैं ?
12. व्यावसायिक पत्र में पत्र क्रमांक का प्रयोग क्यों किया जाता है ?
13. तकादे के पत्र से आपका क्या आशय है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न :

1. अंगूरीलता सम्प्रेषण किसे कहते हैं ?
2. बाह्य सम्प्रेषण से आप क्या समझते हैं ?
3. औपचारिक सम्प्रेषण के चार लाभ बतलाइए।
4. अनौपचारिक सम्प्रेषण के चार दोष बतालाइए।
5. सम्प्रेषण की चार बाधाएँ बतलाइए।
6. तकादे का पत्र कब लिखा जाता हैं।
7. एक अच्छे व्यापारिक पत्र की चार विशेषताएँ बतलाइए।
8. व्यावसायिक पत्रों में पुनश्च क्यों लिखा जाता है ?
9. लिखित सम्प्रेषण के मुख्य लाभ बतलाइए।
10. गश्ती पत्र कब लिखे जाते हैं ?

निबन्धात्मक प्रश्न :

1. सम्प्रेषण से आप क्या समझते हैं ?सम्प्रेषण के विभिन्न प्रकार बतलाइए।
2. सम्प्रेषण को परिभाषित कीजिए। प्रभावी सम्प्रेषण के आवश्यक तत्त्वों पर प्रकाश डालिए।
3. ''सम्प्रेषण मार्ग बाधाओं से परिपूर्ण हैं'' इसको स्पष्ट करते हुए सम्प्रेषण की प्रमुख बाधाओं की विवेचना कीजिए।
4. लिखित एवं मौखिक सम्प्रेषण से आप क्या समझते है ? इनके लाभ एवं दोष बतलाइए।
5. व्यावसायिक पत्रों के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।
6. व्यावसायिक पत्र से क्या आशय है ?एक अच्छे व्यावसायिक पत्र के गुणों पर प्रकाश डालिए।
7. दिनेश बुक डिपो, अलवर की ओर से सन्तोष बुक डिपो, त्रिपोलिया बाजार जयपुर को उनके प्रकाशनों की मूल्य सूची मंगाने के लिए एक पत्र लिखिए।
8. सोहन लाल मोहन लाल स्टील फर्नीचर विक्रेता मानसरोवर,

जयपुर ने अपने व्यवसाय में वृद्धि होने के कारण त्रिवेणी नगर जयपुर में एक नई शाखा खोल ली है। इसकी सूचना देते हुए ग्राहकों को एक परिपत्र लिखिए।

9. आपके एक ग्राहक ने पिछले 6 माह से ₹ 50,000 की बकाया चली आ रही धनराशि का भुगतान नहीं किया है। एक उपयुक्त पत्र लिखिए।

10. आपको रमेश एण्ड कम्पनी बम्बई से एक पत्र मिला है जिसमें उन्होंने राकेश एण्ड कम्पनी, अलवर की आर्थिक स्थिति और व्यापारिक व्यवहार के विषय में आपसे जानकारी चाही है। पत्र का प्रतिकूल उत्तर दीजिए।

11. महावीर ग्लास वर्क्स नेहरू बाजार जयपुर की ओर से मैसर्स नरेश एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली को एक शिकायती पत्र लिखिए जिसमें खराब पैकिंग के कारण पेटी के अन्दर का कुछ माल टूट जाने के कारण हुई ₹ 10,000/– की हानि की क्षतिपूर्ति करने का उल्लेख हो।

12. बैंक की ओर से एक फर्म को जिसने 6 माह के लिए एक लाख रूपये तक अधिविकर्ष की सुविधा मांगी है, एक पत्र लिखिए।

उत्तरमाला :

(1) द (2) ब (3) द (4) स (5) द (6) स (7) अ
(8) ब (9) स (10) अ (11) द (12) स (13) द (14) द
(15) ब (16) अ (17) अ (18) द (19) ब (20)द (21)द
(22) स

अध्याय–9

व्यवसाय की आधुनिक प्रवृत्तियाँ (Recent Trends of Business)

(ई–कॉमर्स, मोबाइल कॉमर्स, नेटवर्किंग मार्केटिंग, बी.पी.ओ., फ्रेंचाइजी)

20 वीं शताब्दी के लिए कम्प्यूटर का आविष्कार एवं इन्टरनेट का विकास सूचना प्रौद्योगिकी के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। कम्प्युटर का प्रयोग आज व्यापक क्षेत्र में हो रहा है, जिनमें इन्टरनेट का विशेष योगदान रहा है। इन्टरनेट एक विश्वस्तर पर जुड़े करोड़ों की संख्या में कम्प्युटरों का समूह है जिसका उपयोग करोड़ों उपभोक्ता सूचना, व्यापार, मनोरंजन, संचार के लिए कर रहे हैं। इन्टरनेट लोगों तथा सूचनाओं का एक विशाल नेटवर्क होने के कारण ई–कॉमर्स/मोबाइल कॉमर्स का मुख्य घटक है। इसकी सहायता से लोग अपने उत्पादों का प्रदर्शन कर सकते है अपने उत्पादों को ऑनलाइन बेच सकते हैं।

ई. कामर्स (E-Commerce)

इलेक्ट्रानिक कामर्स एक सामान्य पद है, जिसमें इलेक्ट्रानिक मीडिया (माध्यम) पर क्रियान्विति होने वाले वे सभी व्यावसायिक लेनदेन शामिल होते हैं, जिसकी मदद से उत्पादन, सेवाएं या सूचना का आदान–प्रदान; सप्लायर व कस्टमर करते हैं। इसके अंदर विभिन्न टैक्नालॉजी का एक सूट (संग्रह) होता है। जिनमें EDI (इलेक्ट्रॉनिक्स फण्ड इन्टरचेंज), इलेक्ट्रॉनिक मेसेजिंग, EFT (इलेक्ट्रॉनिक्स फण्ड ट्रान्सफर), EBB (इलेक्ट्रॉनिक बुलेटिन बोर्ड), इलेक्ट्रानिक पब्लिशिंग व डेटाबेस सर्विसेस सम्मिलित हैं।

ई–कॉमर्स उत्पादों और सेवाओं की ऑन–लाइन व्यापार गतिविधियों को कहते हैं। यह एक कम्यूनिकेशन टेक्लोलॉजी तथा इन्फारमेशन का संगठित रूप है जो व्यापार के मध्य लेनदेन में शामिल होता है।

ई–कॉमर्स के प्रकार :

1. **बिजनेस टू बिजनेस ई. कॉमर्स [B2B]**– दो व्यापारिक कम्पनियों के बीच प्रोडक्ट्स, सर्विसेस या सूचनाओं के आदान–प्रदान को बिजनेस ई. कॉमर्स कहते हैं।
2. **बिजनेस टू कस्टमर ई. कॉमर्स [B2C]**– किसी कम्पनी एवम् ग्राहक के बीच प्रोडक्ट्स, सर्विसेस या सूचनाओं के आदान–प्रदान को बिजनेस–टू–कस्टमर ई. कॉमर्स कहते हैं।
3. **उपभोक्ता व्यापार ई–कॉमर्स [C2B]**– उपभोक्ता –व्यापार लेनदेन में रिवर्स कस्टमर टू बिजनेस निलामी सम्मिलित होते हैं जो उपभोक्ता को लेनदेन अंजाम देने हेतु सशक्त बनाते हैं। उदाहरण एयरलाइन्स यात्री को यात्री के सर्वक्षेष्ठ यात्रा तथा टिकट के लिए ऑफर देता है।
4. **उपभोक्ता –उपभोक्ता ई–कॉमर्स [C2C]** इस प्रकार में उपभोक्ता के मध्य किसी तीसरी पार्टी के माध्यम से लेन–देन होता है। उदाहरण ऑनलाइन नीलामी जिसमें उपभोक्ता बिक्री के लिए किसी आइटम को नेट पर भेजता है, तथा अन्य उपभोक्ता उसे खरीदने के लिए बोली लगाते हैं। तथा तीसरा पक्ष सामान्यतः सेवा शुल्क या कमीशन इसकी व्यवस्था करने के लिए लेता है। [Olx.com, e-bay.com]
5. **व्यापार –सरकार ई–कॉमर्स [B2G]**– इसको आमतौर पर कम्पनियों तथा पब्लिक सेक्टर के बीच किए जा रहे वाणिज्य के रूप में परिभाषित किया जाता है, इस के अन्तर्गत पब्लिक अधिग्रहण लाइसेंसिंग प्रक्रिया तथा अन्य सरकार संबधी क्रियाएं शामिल होती है।

   सामान्यत : कम्पनी इस कार्य को, वेबसाइट की मदद से करती है। इस वेबसाइट पर कम्पनी अपने प्रोडक्ट्स व सर्विसेस की जानकारी देती है और कस्टमर (ग्राहक) को इस बात की सुविधा होती है कि वह इस वेबसाइट के माध्यम से आर्डर दे सकता है व कस्टमर सपोर्ट सर्विसेस को भी प्राप्त कर सकता है।
6. **डिजिटल मिडिलमेन ई. कॉमर्स** – डिजिटल मिडिलमेन से आशय जिसमें एक कम्पनी जो इन्टरनेट पर वरचुअल कम्युनिटि या पोर्टल (तीसरे पक्ष) बनाती है और इस कम्युनिटि में व्यापारिक दृष्टि से तीसरी या बहुत सी कम्पनियों को शामिल करती है।

ई. बिजनेस (Electronic Business) : ई. बिजनेस इन्टरनेट पर व्यापार का संचालन है, जिसमें क्रय–विक्रय के साथ–साथ क्रेता को सहयोग करना तथा व्यापार में अन्य सहयोगी पार्टनर को भी सहयोग प्रदान करना शामिल होता है। ई. बिजनेस टर्म का सर्वप्रथम उपयोग IBM के द्वारा 1997 में अपने व्यापार को बढ़ाने के लिए किया गया था। आज अधिकांश कॉरपोरेशन इन्टरनेट की क्षमताओं का उपयोग कर, अपने व्यापार को बढ़ने हेतु प्रयास कर रहे हैं।

ई– बिजनेस, जो कि ई–कॉमर्स का ही एक रूप है, से तात्पर्य इन्टरनेट पर व्यापार का संचालन है। परन्तु इसमें क्रय–विक्रय के साथ–साथ ग्राहक को सर्विस देना व व्यापारिक–साझेदार के साथ सहयोग करना भी होता है।

ई– बिजनेस एवम् ई–कॉमर्स में अन्तर : ई–बिजनेस, ई–कॉमर्स का वृहद रूप है। ई–बिजनेस का क्षेत्र ई–कॉमर्स की तुलना में व्यापक है यानि ई–बिजनेस में क्रय– विक्रय के साथ–साथ ग्राहक को सर्विस देना व व्यापारिक साझेदार के साथ सहयोग करना होता है जबकि ई–कॉमर्स में कुछ और चीजें भी शामिल होती है, जैसे कि WWW (वर्ल्ड वाइड वेब) व इन्टरनेट पर लेने देन, इलेक्ट्रॉनिक फण्ड ट्रान्सफर, स्मार्ट कार्ड, डिजिटल केश।

ई–कॉमर्स के लाभ –

1. **विस्तृत पहुंच** – ई–कॉमर्स व ई–बिजनेस का क्षेत्र न केवल राष्ट्रीय सीमाओं तक ही सीमित है वरन् अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर फैल चुका है तथा नये–नये बाजारों के विषय में जानकारी प्राप्त करने में सहायता मिलती है।
2. **बेहतर ग्राहक सेवा** – कम्पनियाँ अपने ग्राहकों को वेब पोर्टल पर उत्पादों के सम्बन्ध में आधुनिकतम जानकारी प्रदान कर ग्राहकों को आकर्षित करने में सफल हो रही है जिससे ग्राहकों को भी चयन करने में सुविधा मिलने लगी है। इस कारण इन्टरनेट पर व्यापार प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा है।
3. **लेनदेन के समय में कमी** – सामान्य क्रय–विक्रय की तुलना में ई– बिजनेस में समय कम लगता है क्योंकि उत्पादों के लिए वितरण माध्यम कम हो जाते हैं तथा ग्राहकों से सीधा सम्पर्क किया जा सकता है। इससे कम्पनी बाजार में नये उत्पाद ला सकती है तथा ग्राहकों की प्रतिक्रिया को तुरन्त जान सकती है।
4. **लागत एवम् मूल्य में कमी** – ई–कॉमर्स के माध्यम से व्यवसाय करने पर लागत में काफी कमी आती है क्योंकि माल को गोदामों में संग्रह नहीं करना पड़ता, ज्यादा नौकर रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती तथा विज्ञापन पर भी तुलनात्मक व्यय बहुत कम आता है।
5. **बड़ी मात्रा में व्यवसाय** – ई– कॉमर्स की सहायता से बडी संख्या में व विभिन्न प्रकार के ग्राहकों तक पहुंचना सुगम होता है तथा नये–नये बाजारों को भी ढूंढ लेती है। इससे उनके व्यवसाय की मात्रा में वृद्धि होती है तथा वे और अधिक लाभ कमा सकते हैं।
6. **ग्राहकों को सुविधा** – ग्राहकों को तुरन्त एवम् कुशल सेवा प्राप्त होती है तथा उन्हें सरलता से नये उत्पादों के सम्बन्ध में सूचनाएं घर बैठे ही प्राप्त हो जाती है।

ई–कॉमर्स की कमियाँ / सीमाएं –

1. इसमें ग्राहक से व्यक्तिगत सम्पर्क नहीं हो पाता अतः यह व्यवसाय विधि कपड़े एवम् आभूषण जैसी वस्तुओं के लिए उपयुक्त नहीं है।
2. वेब पर उत्पाद का स्पष्ट चित्र एवम् विस्तृत वर्णन मिलता है लेकिन ग्राहक जिन वस्तुओं का क्रय कर रहा है उनको वास्तविक रूप से देखकर या छूकर उनकी जाँच करके नहीं देख सकता।
3. यद्यपि सौदों को शीघ्र अन्तिम रूप दे दिया जाता है परन्तु वस्तुओं की सुपुर्दगी में समय ज्यादा लगता है व अनावश्यक देरी भी हो सकती है।
4. सौदे के अनुरूप वस्तु के न होने पर वापिस लौटाना तनाव उत्पन्न कर देता है व इसमें समय भी काफी लग जाता है।
5. ऑन लाइन लेनदेन में अनेक जोखिम – लेनदेन से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों को वित्तीय हानि, साख हानि व मनोवैज्ञानिक हानि का सामना करना पड़ता है।

उपरोक्त सीमाओं के बावजूद भी ई– कॉमर्स / ई–बिजनेस एक साधन है। यह कहा जा सकता है कि ई–व्यवसाय की उपर्युक्त सीमाओं / कमियाँ अब उबरने की प्रक्रिया में है। निम्न स्पर्श की समस्या से उबरने के लिए वेबसाइट अब ज्यादा से ज्यादा जीवंत हो रही है। संचार तकनीक, इंटरनेट के द्वारा संचार की गुणवत्ता एवम् गति में लगातार वृद्धि कर रही है। अंकीय विभाजन से उबरने के लिए लगातार प्रयास किये जा रहे हैं। उदाहरण स्वरूप ऐसी व्यूह रचनाओं की ओर उन्मुख होना जैसे कि भारत के गाँवों एवम् ग्रामीण क्षेत्रों में सरकारी संस्थाओं, गैर–सरकारी संस्थाओं एवम् अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के सम्मिलित प्रयासों से सामुदायिक टेली केन्द्रों की स्थापना। सरकार का **'डिजिटल इण्डिया'** कार्यक्रम एक क्रान्तिकारी कदम है जो सम्पूर्ण भारत वर्ष में **ई–क्रान्ति** लायेगा।

मोबाइल कॉमर्स (M-COMMERCE)

मोबाइल कॉमर्स वस्तुएं या सेवाओं के किसी वायरलेस हेंड हेल्ड (हाथ में आने वाले) उपकरण जैसे – सेल्यूलर फोन, पी डी ए (Personal Digital Assistant) के द्वारा खरीदने या बिक्री करने की क्रिया को कहते हैं।

मोबाइल कॉमर्स WAP (Wireless Application Protocal) टेक्नोलोजी पर आधारित होता है।

मोबाइल कॉमर्स एप्लिकेशन में सभी वित्तीय लेनदेन जो मोबाइल फोन के द्वारा होते हैं। जैसे किसी वस्तु का भुगतान करना या फिर ईलेक्ट्रॉनिक–केश (E-Cash) तरीके से फण्ड ट्रांसफर करना शामिल है। दो खातों के मध्य राशि का हस्तान्तरण या फिर किसी खरीद के लिए राशि देना दोनों ही ई–कॉमर्स के एप्लिकेशन्स है।

ई– कॉमर्स कुछ नये एप्लिकेशन में सुविधाएं प्रदान कर रहा है, जैसे मोबाइल की दुनिया में Dual Slat Phone व अन्य Smart terminals और कुछ Standard Protocal जो बहुत अधिक आदान–प्रदान व विशेष अनुरूप सेवाएं दे सकें।

मोबाइल–कॉमर्स का इतिहास :– मार्च 1999 में C&BIT 99 पर चार कम्पनियों की पार्टरनरशिप ने SMS (Short Message Service) के द्वारा कोकाकोला के आर्डर व पेमेन्ट के लिए नायाब तरीका खोजा। ये कम्पनियाँ थी– नोकिया, येलो कम्प्यूटिंग, डा. मेटेरना और सिल्फ।

नोकिया ने 9000 कम्यूनिकेटर उपकरण व सिरियल केबल बनाया। येलो कम्प्यूटिंग ने 9000 क्लाइंट सॉफ्टवेयर बनाया, डा. मेटेरना ने SMS सर्विस सेंटर तथा सिल्फ ने वेडिंग मशीन बनाई।

फ्रांस **टेलकॉम** ने जो सेल फोन्स के लिए पहली ई–कॉमर्स सर्विस शुरू की, उसे पहली मोबाइल कॉमर्स माना जाता है। कम्पनी ने "Iti Achat" नाम से ट्रायल सर्विस शुरू की जिसमें GSM को मोटोरोला Star Tac-D हेंडसेट से शुरू करके मोबाइल फोन से इन्टरनेट के जरिये खरीददारी कर सकते हैं। सुरक्षा की तकनीकें स्मार्ट बैंक कार्ड रीडर ने हेंडसेट में दी हुई थी। इस सर्विस में दो साझेदार बैंक थे– क्रेडिट कामर्शियल डी फ्रांस एवम् क्रेडिट म्यूचअल और पाँच ई–कॉमर्स वेण्डर्स।

कस्टमर्स इस ट्रायल सर्विस में भाग ले सकते थे और CD, बुक्स, वीडियो, कन्सर्ट व थियेटर टिकिट्स, फ्लावर्स, वाइन्स व इलेक्ट्रानिक गॅजेट आदि खरीद सकते थे। सेवाओं का उपयोग करने के लिए इटेनरीज कस्टमर्स को दुकानदार से फोन, मिनिटेल या इन्टरनेट के द्वारा सम्पर्क करके आदेश देना होता है। फिर दुकानदार SMS वापस भेजता है जो फोन–स्क्रीन पर दिखाई देता है, जिसमें उसकी कीमत भी होती है, फिर कस्टमर हेण्डसेट में स्मार्ट कार्ड इन्सर्ट करता है और पासवर्ड देकर सौदा पूर्ण करता है।

नेटवर्किंग मार्केटिंग (Networking Marketing)

इन्टरनेट जिसे नेट भी कहते हैं। नेट कम्प्यूटर जाल–तंत्र की पूरे विश्व में फैली एक ऐसी प्रणाली है जिसके माध्यम से किसी भी एक कम्प्यूटर के प्रयोग द्वारा अन्य कम्प्यूटरों में संग्रहित सूचनाएं प्राप्त की जा सकती है। यह विज्ञान एवम् प्रौद्योगिकी, इतिहास, राजनीति, खेल, व्यवसाय, वर्तमान घटनाएं, संगीत, मनोरंजन एवम् अन्य कई विषयों के सम्बन्ध में सूचना/आवश्यक जानकारी प्रदान करता है। इन्टरनेट उपयोगकर्ताओं को निम्न रूप में सहायता प्रदान करता है –

1. वर्ल्ड वाइड वेब (www) के माध्यम से किसी भी विषय के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त कर सकते हैं।
2. प्रमुख समाचार पत्र एवम् टी.वी. चैनलों पर उपलब्ध समाचारों को पढ़ या देख सकते हैं।
3. ई–मेल का प्रयोग कर संदेशों का आदान–प्रदान कर सकते हैं।
4. सरकार, व्यक्ति एवम् निजी संगठनों के डाटाबेस (तथ्य एवम् आँकडों) की खोज कर सकते हैं।
5. फाइल, चित्र, सजीव चित्र (एनीमेशन) आदि को दूसरे स्थान पर भेज सकते हैं।
6. जब दो पक्ष/व्यक्ति इन्टरनेट से जुडे हों तो एक–दूसरे से बातचीत भी की जा सकती है व संदेश भी भेज सकते हैं।
7. ऑन–लाइन खरीद के लिए वस्तुओं व सेवाओं का सूची–पत्र ढूंढकर सूचना प्राप्त कर सकते है।
8. अपने संगठनों के उत्पाद व सेवाओं के सम्बन्ध में सूचना की वेबसाइट बना सकते हैं।

इन्टरनेट का इतिहास – इन्टरनेट का जन्म अमेरिका सरकार के एडवान्सड रिसर्च प्रोजेक्ट्स एजेन्सी (ARPA) द्वारा 1969 में एक सेना परियोजना के रूप में हुआ था उस समय इसे ARPANET कहते थें। फिर इसे शैक्षणिक एवम् अनुसंधान के क्षेत्र में विकसित किया गया। बाद में इसे आम जनता एवम् व्यापारिक प्रयोग में लाया जाने लगा। 1979 से इसे इन्टरनेट के नाम से जाना जाने लगा। अब यह वैश्विक नेटवर्क के रूप में विकसित हो गया है।

ऑनलाइन मार्केटिंग (Online Marketing/ Internet Marketing)

पिछले दशक से ऑनलाइन मार्केटिंग का चलन तेजी से बढ़ता जा रहा है। भारत के महत्वपूर्ण शहरों से बढ़ता–बढ़ता छोटे–छोटे शहरों/कस्बों तक ऑनलाइन व्यापार; व्यापक रूप लेता जा रहा है।

प्रचलन के आधार पर ऑनलाइन मार्केटिंग में तीन अवस्थाओं से गुजरना पड़ सकता है–

I. **क्रय–विक्रय पूर्व अवस्था**– जिसमें प्रचार एवम् सूचना जानकारी शामिल होती है।

II. **क्रय–विक्रय अवस्था**– जिसमें मूल्य मोलभाव, क्रय–विक्रय लेनदेन को अंतिम रूप देना एवम् भुगतान इत्यादि शामिल होते हैं।

III. **सुपुर्दगी अवस्था** – सुपुर्दगी अवस्था को छोड़कर अन्य सभी अवस्थाओं में सूचना का प्रवाह सम्मिलित है। सूचनाओं का आदान–प्रदान पारम्परिक व्यवसाय पद्धति में भी होता है। परन्तु यह समय व लागत की गम्भीर बाधाओं के साथ होता है। परन्तु इन्टरनेट इन सभी बाधाओं से मुक्त है। सूचना गहन उत्पादों एवम् सेवाओं के संदर्भ में सुपुर्दगी ऑन लाइन भी हो सकती है।

वर्तमान समय में इसका प्रचलन तेजी से पनप रहा है। सभी प्रकार की वस्तुओं – वस्त्र व्यापार, आर्टिफिशियल ऑर्नामेंट्स, मोबाइल, लेपटॉप, बर्त्तन, इलेक्ट्रानिक आइटम्स आदि–आदि – में इन्टरनेट मार्केटिंग विकसित हो रहा है।

आजकल तो इसकी बढती लोकप्रियता को देखते हुए ऑन–लाइन मार्केटिंग में माल ठीक न आने पर पुनः लौटाने अथवा चेंज करने की सुविधा भी बढ़ रही है ताकि क्रेता प्रभावित होकर अन्यों को भी क्रय करने हेतु प्रेरित कर सके।

ऑन लाइन लेनदेन की विधि – ऑनलाइन लेनदेन की विधि अग्रांकित है–

1. **रजिस्ट्रेशन** – क्रेता को विक्रेता के साथ ऑनलाइन पंजीकरा कराना पड़ता है, जिसमें क्रेता के खाते के संकेत शब्द (Passward) देने होते हैं और 'शॉपिंग कार्ट' आपके संकेत शब्द के सुरक्षक होते हैं। यह संकेत शब्द क्रेता और विक्रेता ही जानते हैं, अन्य कोई भी नहीं।

2. **आदेश प्रेषित करना** – 'शॉपिंग कार्ट' (खरीददारी गाडी/ट्राली) में आप अपनी पसन्द की वस्तु का चयन कर सकते हैं। 'शॉपिंग कार्ट' उन सबका ऑन लाइन रेकर्ड होता है। इसके चयन के साथ ही आप बाहर निकलकर अपेन भुगतान विकल्प को चुन सकते हैं।

3. **भुगतान तंत्र** – क्रेता द्वारा अपनी सुविधा से भुगतान के लिए निम्न में से किसी एक विकल्प का चयन किया जा सकता है–

   i. सुपुर्दगी के समय नकद भुगतान करना।

   ii. सुपुर्दगी के समय चैक द्वारा भुगतान करना।

   iii. नेट बैंकिंग हस्तान्तरण – सुपुर्दगी पूर्व विक्रेता द्वारा प्रदत्त बैंक खाते में राशि का हस्तान्तरण करना।

   iv. क्रेडिट व डेबिट कोर्ड – ऑनलाइन लेनदेनों मं यह सर्वाधिक प्रयुक्त माध्यम है। क्रेडिट कार्ड अपने धारक को उधार खरीद की सुविधा प्रदान करते हैं। कार्ड धारक पर बकाया राशि कार्ड जारीकर्ता बैंक अपने ऊपर ले लेता है और बाद में लेनदेन में प्रयुक्त राशि को विक्रेता के खाते में 'जमा' हस्तान्तरित कर देता है तथा क्रेता के खाते में 'नाम' कर दिया जताा है। डेबिट कार्ड धारक को उस सीमा तक खरीददारी करने की अनुमति प्रदान करता है जिस राशि तक उसके खाते में धनराशि उपलब्ध होती है, जिस क्षण कोई लेनदेन किया जाता है, भुगतान के लिए बकाया राशि इलेक्ट्रोनिक तरीके से इसके कार्ड से घट जाती है। क्रेडिट कार्ड को भुगतान के तरीके के रूप में स्वीकारने के लिए, विक्रेता को पहले उसके ग्राहकों के क्रेडिट कार्ड सम्बन्धित सूचना प्राप्त करने के सुरक्षित साधनों की आवश्यकता होती है। क्रेडिट कार्ड द्वारा भुगतान का प्रसंस्करण या तो हस्तचल या फिर ऑनलाइन प्राधिकृत प्रणाली द्वारा किया जाता सकता है।

   v. **अंकीय (डिजिटल) नकद** – यह इलेक्ट्रानिक मुद्रा का एक रूप है जिसका अस्तित्व केवल साइबर स्थान (स्पेस) मं ही होता है। इसमें सबसे पहले आपको बैंक में इस राशि का भुगतान (चैक/ड्राफ्ट इत्यादि द्वारा) करना होगा, जोकि उस अंकीय नकद के बराबर होगी, जिसे आप अपने पक्ष में जारी करवाना चाहते हो। इसके बाद कि ई–नकद में लेनदेन करने वाला बैंक आपको एक विशेष सॉफ्टवेयर भेजेगा (जिसे आप अपनी कम्प्यूटर हार्ड डिस्क पर उतार सकते हैं) जो कि आपको, बैंक में स्थित अपने खाते से अंकीय नकद निकासी की अनुमति प्रदान करेगा। तब आप अंकीय (डिजिटल) कोषों का प्रयोग वेबसाइट पर क्रय करने मं कर सकते हैं। इस तरह की भुगतान प्रणाली द्वारा इंटरनेट पर क्रेडिट कार्ड संख्याओं के प्रयोग सम्बन्धी समस्याओं के दूर करने की आशा की जा सकती है।

बाह्यस्रोतीकरण BPO (Business Process Outsourcing)

बाह्यस्रोतीकरण का अर्थ है – कार्यों को विदेशी फर्मो से कराना। इसे सामान्यतः अपतट कहा जाता है।

कार्य विशिष्टिकरण के अस्तित्व के साथ ही बाह्यस्रोतीकरण का उदय हुआ। विशिष्ट रूप से तैयार अपतट बाह्यस्रोतीकरण समाधानों ने व्यवसाय प्रक्रिया बाह्यस्रोतीकरण कार्यप्रणाली की आवश्यकताओं को जन्म दिया है।

व्यवसाय प्रक्रिया बाह्यस्रोतीकरण (BPO) का अभिप्राय है – '' किसी अन्य सेवा प्रदाता पक्ष को अनुबन्धित करना। मौलिक रूप से बाह्यस्त्रोतीकरण एक अन्य प्रवृत्ति है जो कि महत्वपूर्ण रूप से व्यवसाय को पुनर्संरचित कर रही है। बाह्यस्त्रोतीकरण उस दीर्घावधि अनुबंध/संविदा प्रदान करने की प्रक्रिया को कहा जाता है जिसमें सामान्यतः व्यवसाय की द्वितीयक (गैर–प्रमुख) और बाद में कुछ मुख्य गतिविधियों को आबद्ध अथवा तृतीय पक्ष विशेषज्ञों को उनके अनुभव, निपुणता, कार्यशुलता और यहाँ तक कि निवेश से लाभान्वित होने के विचार से किया जाता है।

व्यवसाय प्रक्रिया बाह्यस्रोतीकरण (BPO) की संकल्पना –

बी पी ओ से अभिप्राय किसी ऐसे कार्य निष्पादन की जिम्मेदारी अन्य पक्ष को देना है। इस प्रक्रिया से लागत में कमी आती है तथा फर्म/कम्पनी/उद्योग उत्पादन बढ़ाने पर ज्यादा ध्यान दे पाती है।

बी.पी.ओ श्रेष्ठ ग्राहक संतुष्टि उपलब्ध कराने की ओर अग्रसर होता है जिससे ग्राहक धारण, उत्पादकता वृद्धि, प्रतिस्पर्द्धा का प्रभावी ढंग से सामना करना सम्भव होता है और परिणामतः लाभोत्पादकता बढती है। बी पी ओ के माध्यम से कई कार्य बाह्यस्रोत किये जा सकते हैं जैसे : कॉल सेंटर/चिकित्सा प्रतिलेखन, बिल बनाना, वेतन चिट्टा प्रक्रियण, समंक प्रतिष्टि, सूचना प्रौद्योगिकी सेवाएं, मानव संसाधन क्रियाकलाप आदि। बी पी ओ को 'सूचना प्रौद्योगिकी समर्थ सेवा' भी कहा जाता है। परन्तु बी पी ओ द्वारा केवल सूचना प्रौद्योगिकी सेवाएं उपलब्ध कराना ही आवश्यक नहीं है।

बी पी ओ के लक्षण /विशेषताएँ

1. **संविदा बाहर प्रदान करना** – वह सब बाहर से लाना जो कि अब तक आप अपने आप कर रहे थे। बाह्य एजेंसी को उक्त कार्य संविदा पर सौंपना।
2. **सामान्यतः गैर–मुख्य (द्वितीयक) व्यावसायिक गतिविधियों को ही सौंपना** – बी पी ओ समाान्यतः गैर–मुख्य व्यावसायिक प्रक्रिया कोही किसी एजेंसी को अनुबन्ध/संविदा पर सौंपती है। हालांकि यह कोई सीमा नहीं है, बाद में जाकर मुख्य कार्यों को भी अनुबन्ध पर सौंपा जा सकता है।
3. **प्रक्रियाओं का बाह्यस्रोतीकरण आबद्ध इकाई अथवा तृतीय पक्ष का हो सकता है** :– एक ऐसी फर्म/कम्पनी/उद्योग समूह जिनका कारोबार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर फैला हुआ है तो वह कम्पनी अपनी सहायक कम्पनियों, जो कि विभिन्न देशों में संचालित हो रही है, में अनेक प्रक्रियाएं जैसे कि भर्ती, चयन, प्रशिक्षण, अभिलेखन और वेतन पत्रक (मानव संसाधन), लेनदारी लेखों और देनदारी लेखों का प्रबंधन (लेखांकन एवम् वित्त), ग्राहक सहायता/ग्राहक शिकायत निर्वाह/निवारण (विपणन), इत्यादि आम है।

भारत की जनरल इलेक्ट्रॉनिक्स (जी ई) इसका एक उदाहरण है जो विशेष प्रकार की सेवाएं अमेरिका स्थित इसकी अभिभावक कम्पनी के साथ ही संसार के अन्य देशों में स्थित सहायक कम्पनियों को प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त प्रक्रियाएं उन सेवा प्रदाताओं को भी भेजी जा सकती है, जो स्वतंत्र रूप से बाजार में प्रचालन कर रहे हों और अन्य फर्मों को सेवाएं प्रदान करते हैं।

बाह्यस्रोतीकरण का विचार इसलिए भी मूल्यवान है क्योंकि यह न केवल आपको उनकी विशेषज्ञता और अनुभव एवम् कार्यकुशलता लाभ उठाने बल्कि यह आपको अपने निवेश को सीमित करने और अपनी मुख्य प्रक्रियाओं पर ध्यान केन्द्रित करने के ज्यादा अवसर प्रदान करता है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि बाह्यस्रोतीकरण तेजी से व्यवसाय की एक उभरती पद्धति बनता जा रहा है।

बाह्यस्रोतीकरण का कार्यक्षेत्र – बाह्यस्रोतीकरण में चार प्रमुख अंश (खण्ड) सम्मिलित होते है – संविदा उत्पादन, संविदा शोध, संविदा विक्रय एवम् सूचना विज्ञान। बाह्यस्रोतीकरण– सूचना प्रौद्योगिकी जन्य सेवाओं/व्यवसाय प्रक्रिया बाह्यस्रोतीकरण के साथ अधिक लोकप्रिय है। परंतु इससे भी अधिक लोकप्रिय शब्द ' कॉल सेंटर' है जो कि ग्राहक उन्मुख स्वर आधारित सेवा उपलब्ध करवाते हैं बी पी ओ का 70% राजस्व कॉल सेंटरों से आता है 20% उच्च आयतन निम्न मूल्य डाटा कार्य से और 10 %उच्च मूल्य सूचना कार्य से आता है। 'ग्राहक सेवा' अधिक मात्रा में 'कॉल सेंटर' गतिविधियों का, 24 घण्टे x 7दिन अंध बंध (ग्राहक के प्रश्न एवम् शिकायतें) और बाह्यबंध (ग्राहक सर्वेक्षण, भुगतान अनुवत्ती और टेली विपणन गतिविधियाँ) यातायात के साथ निर्वहन करती है।

व्यवसाय प्रक्रिया बाह्यस्रोतीकरण (BPO) के गुण – बी पी ओ का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह संगठन के कार्यकारियों को उनके कुछ दैनिक प्रक्रिया प्रबन्ध उत्तरदायित्वों से मुक्त करने में

सक्षम है। एक बार एक प्रक्रिया को सफलतापूर्वक बाह्यस्रोत करने पर, वे नये आगम उत्पादन क्रियाओं का खोजने तथा अन्य परियोजनाओं को बढ़ाने के लिए अधिक समय निकाल पाते हैं और अपने ग्राहकों पर ध्यान दे पाते हैं।

बाह्यस्रोतीकरण के द्वारा कम्पनियाँ अपने पश्च कार्यालय प्रचालनों को तीसरी दुनियाँ के देशों से कराकर निम्नांकित लाभ प्राप्त करती है :–

1. **लागातों में कमी** – यह प्रक्रिया सुधार, पुनः अभियंत्रण और तकनीकी के प्रयोग से सम्भव होती है जिससे प्रशासनिक व अन्य लागतें कम होती है तथा नियंत्रण में आती है।

2. **कम्पनी के मुख्य व्यवसाय पर ध्यान** – दिन प्रतिदिन के पश्च कार्यालय प्रचालनों पर ध्यान देने से निजात मिल जाने से प्रबंधक कम्पनी के मुख्य व्यवसाय पर अधिक ध्यान दे पाते हैं।

3. **बाह्य विशेषज्ञता का उपयोग** – बी पी ओ कर्मचारियों की भर्ती तथा प्रशिक्षण के बजाय किसी अन्य कम्पनी से विशेषज्ञ कार्यक्षेत्र सुनिश्चित करके आवश्यक मार्गदर्शन तथा कौशल का उपयोग करता है।

4. **ग्राहकों की लगातार बदलती मांग से निपटने में सक्षम** – कई व्यवसाय प्रक्रिया बाह्यस्रोत प्रदाता प्रबन्धकों को लोचदार और मापनीय सेवाएं उपलब्ध कराते है ताकि ग्राहकों की बदलती आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके।

5. **आगम वृद्धि की प्राप्ति** – कम महत्वावाली प्रक्रियाओं का बाह्यस्रोतीकरण करके कम्पनियाँ अपना ध्यान विक्रय वृद्धि, बाजार अंश वृद्धि, नये उत्पादों का विकास, नये बाजारों की ओर रूख तथा ग्राहक सेवाओं व संतुष्टि की ओर लगा सकती है।

व्यवसाय प्रक्रिया बाह्यस्रोतीकरण (BPO) की कमियाँ :

1. **जोखिम** – जोखिम बी पी ओ की सबसे बडी समस्या है। सूचना प्रणाली की आउटसोर्सिंग संचार और गोपनीयता बनाये रखने में सक्षम नहीं है।

2. **अनुबंध से जुडी समस्याएं** – बी पी ओ में ऐसी कई समस्याएं जैसे कि अनुबंध से जुडी हुई मुश्किलें, अस्पष्ट करार से लेकर तकनीकी, आई टी प्रक्रियाओं की समझ की कमी– पहचानने में बाधा आती है।

फ्रेंचाइजी (FRANCHISEE) -

अर्थ – ''दूसरी फर्म के सफल व्यापार मॉडल के प्रयोग की पद्धति को फ्रेंचाइजिंग कहते है।''

'फ्रेंचाइज' की उत्पत्ति आंग्ल–फ्रांसीसी शब्द फ्रेंकर्स (Frankese) से हुई है – जिसका अर्थ है मुक्त। इसका प्रयोग संज्ञा व क्रिया दोनों के रूप में किया जाता है।

फ्रेंचाइज, फ्रेंचाइजर को माल के संवितरण के लिए 'चेन स्टोर' बनाने और शृंखला पर होने वाले निवेश और देयता से बचाने का विकल्प प्रदान करता है। फ्रेंचाइजी का सफलता में फ्रेंचाइजर की सफलता निहित है।

ऐसा माना जाता है कि एक प्रत्यक्ष कर्मचारी की तुलना में फ्रेंचाइजी अधिक प्रोत्साहित करता है क्योंकि व्यापार में उसकी (फ्रेंचाइजी की) प्रत्यक्ष हिस्सेदारी होती है।

फ्रेंचाइजी की उपादेयता –

फ्रेंचाइजी ऐसे उद्योगों/व्यवसाय के लिए उपयुक्त है, जो लाभ के अच्छे ट्रेक रिकॉर्ड वाले व्यापार, आसानी से दोहराये जा सकने वाले व्यापार जैसा कि खुदरा बिक्री में प्रचलित है।

फ्रेंचाइजिंग से फ्रेंचाइजी को विशेष लाभ यह होता है कि वह उपलब्ध ट्रेडमार्क पर व्यापार की जल्दी शुरुआत कर सकता है और उसे संसाधन व आधारभूत संरचना को विकसित करने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती।

फ्रेंचाइज के प्रकार –

फ्रेंचाइज को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं। छोटे आकार के फ्रेंचाइज – वे है जिनका कार्यक्षेत्र शहर, कस्बा या ब्लॉक स्तर तक सीमित हो। मध्यम आकार के फ्रेंचाइज – वे हैं जिनका कार्यक्षेत्र एक जिला या एक से अधिक जिले तक सीमित हैं तथा बहुत बडे फ्रेंचाइज वे हैं जिनका कार्यक्षेत्र प्रान्तीय स्तर तक या महानगर स्तर तक हो।

फ्रेंचाइजी का उद्गम –

फ्रेंचाइजी का उद्गम स्थल संयुक्त राज्य अमेरिका है। फ्रेंचाइज के नामों से पता चलता है कि 1930 से अमेरिका में इसने पाँव पसार लिये थे और आजतक बरकरार है। जब पहली मंदी के दौरान फास्टफूड रेस्त्रां, भोजनालय एवं उसके कुछ वर्षों बाद होटल की फ्रेंचाइजिंग शुरु की। 2001 में संयुक्त राज्य अमेरिका में 7,63,483 प्रतिष्ठानों में फ्रेंचाइज व्यवसाय चला जिसमें फ्रेंचाइजी के स्वामित्व वाले और फ्रेंचाइजर के स्वामित्व वाले दोनों प्रतिष्ठानों की संख्या शामिल है।

फ्रेंचाइजिंग, व्यवसाय का ऐसा मॉडल है जिसका प्रयोग 70 से अधिक देशों में किया जाता है। जिनमें प्रमुख है–

i सबवे (Subway) सेंडविच और सलाद

ii मेकडोनाल्ड्स, री–फ्रेशों, कॉफी कैफे डे

iii 7– इलेवन इंक (सुविधा स्टोर)

iv हेम्पटन इन्ज एण्ड स्वीट्स (मध्यम बजट के होटल)

v सूपरकट्स (हेयर सैलून)

vi एच एण्ड आर ब्लॉक (कर की तैयारी और ई–फाईलिंग)

vii इन्किन डोनट्स

viii जानी किंग (व्यावसायिक क्लीनिंग)

ix सर्वो–प्रो (बीमा और आपदा बहाली व सफाई)

x मिनि मार्केट्स (सुविधा स्टोर व गैस स्टेशन)

अमेरिका में फ्रेंचाइजिंग पर स्पष्ट कानून है और चीन ने भी 2007 में कानून पारित किया है। केवल फ्रांस और ब्राजील में महत्वपूर्ण प्रकटीकरण कानून है। किन्तु ब्राजील में फ्रेंचाइजी अधिक नियन्त्रित है।

जहाँ कोई विशिष्ट कानून नहीं हैं, वहाँ फ्रेंचाइज को एक वितरण प्रणाली माना जाता है, जिसके लिए विशिष्ट अनुबन्ध के अन्तर्गत शासित ट्रेडमार्क (फ्रेंचाइजी प्रणाली) के नियम लागू होते हैं।

अन्तराष्ट्रीय फ्रेंचाइज एसोसिएशन के अनुसार – संयुक्त राज्य अमेरिका का लगभग 4% व्यवसाय फ्रेंचाइजी द्वारा संचालित होता है।

आमतौर पर अमेरिका में फ्रेंचाइजिंग प्राधिकरण द्वारा लागू नियम सख्त व महत्वपूर्ण हैं और अधिकतर देशों को उनके अध्ययन की जरूरत होती है ताकि वे अपने देश में छोटे या प्रारम्भिक फ्रेंचाइज की उनकी रक्षा करने में मदद कर सके। ट्रेडमार्क के अलावा प्रतिलिप्याधिकार और ऐसे ही विनियमों से शासित स्वामित्व सेवा मार्क भी होते हैं।

भारत में फ्रेंचाइजी व्यवसाय –

भारत में माल एवं सेवाओं की फ्रेंचाइजिंग बाल्यावस्था में है। पहली अन्तराष्ट्रीय प्रदर्शनी 2009 में आयोजित हुई। भारत में बडे उद्यमी इस ओर अग्रसर हुए हैं – जिसमें ख्यातनाम – मेकडोनाल्ड्स का है।

भारत में फ्रेंचाइज करार, फ्रेंचाइजर एवं फ्रेंचाइजी के बीच एक संविदा (Contract) है जो कि संविदा अधिनियम 1872 और विशिष्ट राहत अधिनियम 1963 द्वारा शासित है जो कि संविदा में नियमों के विशिष्ट प्रवर्त्तन और संविदा भंग होने पर क्षतिपूर्ति के रूप में समाधान का प्रावधान करता है।

फ्रेंचाइजी की मुख्य बातें :–

1. किसी भी फ्रेंचाइजर को दो महत्वपूर्ण भुगतान – ट्रेडमार्क के लिए रायल्टी एवं फ्रेंचाइजी को दी गई प्रशिक्षण व सलाहकार सेवाएं। इन दोनों को मिलाकर एकल 'प्रबन्धन शुल्क' भी दिया जा सकता है। 'प्रकटीकरण' के लिए शुल्क अलग होता है और हमेशा 'अग्रिम शुल्क' होता है–किये जाते है।
2. ज्यादातर फ्रेंचाइजी निश्चित अवधि (प्रायः अवधि छोटी होती है जिसका नवीनीकरण कराना पड़ता है) होती है और विशिष्ट क्षेत्र के लिए और अवस्थिति से विशिष्ट मील की दूरी पर होता है।
3. फ्रेंचाइजी केवल एक अस्थायी व्यापारिक निवेश है, स्वामित्व के प्रयोजन से व्यवसाय को खरीदना नहीं वरन् निश्चित अवधि तक भाडे या पट्टे पर लेना है।
4. फ्रेंचाइज –विशिष्ट, गैर विशिष्ट या 'एकमात्र और विशिष्ट' हो सकता है। हालांकि फ्रेंचाइज प्रकटीकरण दस्तावेज में फ्रेंचाइजर राजस्व व लाभ का प्रावधान किया जा सकता है।
5. राष्ट्रीय/अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञापन, प्रशिक्षण और मूर्त व अमूर्त जैसी अन्य समर्थन सेवाएं सामान्यत : फ्रेंचाइजर द्वारा सुलभ कराये जाते हैं।

इस प्रकार फ्रेंचाइजिंग ही एकमात्र ऐसा साधन है जिसके माध्यम से शृंखला के संचालन पर नियंत्रण खोए बगैर उद्यम पूंजी निवेश को प्राप्त किया जा सकता है और अपनी सेवाओं के लिए संवितरण प्रणाली का निर्माण किया जा सकता है। ब्राण्ड और सूत्र की रचना और निष्पादन के बाद, फ्रेंचाइजर, फ्रेंचाइज बेच सकते हैं और जोखिम को न्यून करते हुए, अपने 'फ्रेंचाइजी' की पूंजी और संसाधनों का उपयोग करते हुए देश–विदेश और महादीपों में तेजी से विस्तार कर सकते है।

फ्रेंचाइजी में पक्षकारों का दायित्व –

एक फ्रेंचाइज के प्रत्येक पक्ष के पास रक्षा करने योग्य कई हित होते हैं। फ्रेंचाइजर के लिए सबसे महत्वपूर्ण बात अपने ट्रेडमार्क की हिफाजत, व्यवसाय अवधारणा का नियंत्रण और तकनीकी जानकारी की सुरक्षा। इसके लिए फ्रेंचाइजी को वे सेवाएँ देनी पड़ती है जिनके लिए ट्रेडमार्क बनाया गया और प्रसिद्ध हुआ है।

सेवा–स्थल में प्रमुख स्थान पर फ्रेंचाइजर के चिह्न, प्रतीक और ट्रेडमार्क प्रदर्शित करने पड़ते हैं। फ्रेंचाइजी के कर्मचारियों द्वारा पहनी गई वर्दी एक विशेष रंग की होनी चाहिए। फ्रेंचाइजर के सफल संचालन में जिस तरह से सेवा प्रदान की जाती है, उसी ढंग से सेवा दी जानी है। इस प्रकार खुदरा बिक्री के विपरीत फ्रेंचाइजी का व्यवसाय पूर्णतः उसके नियंत्रण में नहीं होता।

फ्रेंचाइजी की कमियाँ –

1. कम लागत वाली फ्रेंचाइजी में प्रशिक्षण शुल्क ज्यादा भारी पड़ता है।
2. फ्रेंचाइज करार में किसी तरह की गारण्टी या वारण्टी नहीं होती और विवाद होने की स्थिति में फ्रेंचाइजी के पास बहुत कम या न होने के बराबर कानूनी प्रावधान होते हैं। फ्रेंचाइज करार फ्रेंचाइजर के पक्ष में एकतरफा करार होते हैं। ज्यादातर फ्रेंचाइजी द्वारा मुकदमे में संरक्षित होते हैं क्योंकि अपरक्राम्य करार होने के कारण फ्रेंचाइजी की इस आशय की पावती देनी पड़ती है कि वे खतरे को जानते हुए फ्रेंचाइज खरीद रहे हैं और फ्रेंचाइजर द्वारा किसी सफलता या लाभ का कोई वादा नहीं किया गया है। यहाँ तक कि फ्रेंचाइजर ही तय करता है कि वह मामलों का निपटारा कहाँ और किस कानून के तहत् करेगा।

सारांश :

ई–कॉमर्स–लेक्ट्रोनिक्स कॉमर्स एक सामान्य पद है, जिसमें इलेक्ट्रोनिक मीडिया (माध्यम) पर क्रियान्वित होने वाले वे सभी व्यावसायिक लेनदेन शामिल होते हैं जिसकी मदद से उत्पादन, सेवाएं या सूचना का आदान–प्रदान सप्लायर व कस्टमर करते हैं, इसके अंदर विभिन्न टेक्नोलोजी एकसूट (संग्रह) होता है जिनमें इलेक्ट्रोनिक डाक्यूमेंट इन्टरचेंज (EDI) इलेक्ट्रोनिक मेसेजिंग (EM), इलेक्ट्रोनिक फण्ड ट्रान्सफर (EFT), इलेक्ट्रोनिक बुलेटिन बोर्ड (EBB), इलेक्ट्रोनिक पब्लिशिंग (EP), डेटाबेस सर्विस सम्मिलित हैं। ई–कॉमर्स, संचार व सूचना शेयरिंग टेक्नोलोजी का एक ऐसा एप्लिकेशन है जो ट्रेडिंग पार्टनर्स के बीच उनके व्यापारिक उद्देश्यों को पूरा करता है।

मोबाइल–कॉमर्स – वस्तुओं या सेवाओं के किसी वायरलेस हेण्ड हेल्ड उपकरण जैसे–सेल्यूलर फोन, पी.डी.ए. (Personal Digital Assistant) के द्वारा क्रय–विक्रय करना। मोबाइल–कॉमर्स WAP (Wireless Application Protocol) टेक्नोलोजी पर आधारित होता है। इसमें सभी वित्तीय लेनदेन मोबाइल फोन के द्वारा होते है।

नेटवर्किंग मार्केटिंग – इन्टरनेट जिसे नेट भी कहते हैं। नेट कम्प्यूटर जालतंत्र की पूरे विश्व में फैली एक ऐसी प्रणाली है जिसके माध्यम से किसी भी एक कम्प्यूटर के प्रयोग द्वारा अन्य कम्प्यूटरों में संग्रहित सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती है। यह विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, इतिहास, राजनीति, व्यवसाय, वर्तमान घटनाएँ, संगीत, मनोरंजन एवं अन्य कई विषयों के संबंध सूचना/जानकारी प्रदान करता है।

ऑनलाइन मार्केटिंग – पिछले दशक से ऑनलाइन मार्केटिंग का चलन तेजी से बढ़ता जा रहा है। भारत में इसका चलन बड़े–बड़े शहरों से कस्बों व गाँवों तक पहुँच गया है। ऑनलाइन मार्केटिंग में तीन अवस्थाओं I. क्रय–विक्रय पूर्व अवस्था II. क्रय–विक्रय अवस्था III. सुपुर्दगी से गुजरना पड़ता है। आजकल इसकी बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए ऑनलाइन मार्केटिंग में माल ठीक न आने पर पुनः लौटाने या चेंज करने की सुविधा भी बढ़ रही है।

बाह्य स्रोतीकरण –व्यावसायिक कार्यों को विदेशी फर्मों से कराना। इसे सामान्यतया अपतट कहा जाता है। विशिष्ट रूप से तैयार अपतट बाह्य स्रोतीकरण समाधानों ने व्यवसाय प्रक्रिया बाह्य स्रोतीकरण कार्यप्रणाली को जन्म दिया है। बाह्य स्रोतीकरण उस दीर्घावधि अनुबन्ध/संविदा प्रदान करने की प्रक्रिया को कहा जाता है जिसमें सामान्यतया व्यवसाय की द्वितीयक (गैर–प्रमुख) और बाद में कुछ मुख्य गतिविधियों को आबद्ध अथवा तृतीय पक्ष विशेषज्ञों को उनके अनुभव, निपुणता, कार्य कुशलता और यहाँ तक कि निवेश से लाभान्वित होने के विचार से किया जाता है। BPO 'सूचना प्रौद्योगिकी समर्थ सेवा' भी कहा जाता है।

फ्रेंचाइजी – दूसरी फर्म के सफल व्यापार मॉडल के प्रयोग की पद्धति। फ्रेंचाइज, फ्रेंचाइजर को माल के संवितरण के लिए 'चेन स्टोर' बनाने और शृंखला पर होने वाले निवेश और देयता से बचाने का विकल्प प्रदान करता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न –

1. ई–कॉमर्स में शामिल नहीं होता है–
   (अ) एक व्यवसाय का उसके पूर्त्तिकत्ताओं से पारस्परिक सम्पर्क
   (ब) एक व्यवसाय का उसके ग्राहकों से पारस्परिक सम्पर्क
   (स) एक व्यवसाय का अपनी भौगोलिक रूप से फैली हुई इकाइयों के मध्य पारस्परिक सम्पर्क
   (द) व्यवसाय के विभिन्न विभागों के मध्य पारस्परिक सम्पर्क
2. ई–व्यवसाय का प्रारूपिक भुगतान तंत्र–
   (अ) चैक (ब) ई–नकद
   (स) सुपुर्दगी पर नकद
   (द) क्रेडिट और डेबिट कार्ड
3. यह ई–व्यवसाय का अनुप्रयोग नहीं है –
   (अ) ऑन–लाइन व्यापार (ब) संविदा शोध व विकास

(स) ऑन–लाइन बोली

(द) ऑन–लाइन अधिप्राप्ति

4. एक कॉल सेंटर निर्वहन करता है –

(अ) ग्राहकोन्मुख और पार्श्व दोनों व्यवसाय

(ब) दोनों अंत–बंध एवं बाह्य–बंध स्वर आधारित व्यवसाय

(स) केवल अंत–बंध स्वर आधारित व्यवसाय

(द) बाह्य–बंध स्वर आधारित व्यवसाय

5. बाह्यस्त्रोतीकरण –

(अ) में उत्पादन और शोध एवं विकास के साथ सेवा प्रक्रियाओं–मुख्य और गै–मुख्य दोनों के संविदा बाहर प्रदान करता है। परन्तु यह केवल घरेलू क्षेत्र तक सीमित है।

(ब) में देश की भौगोलिक सीमाओं के बाहर बाह्यस्त्रोतीकरण भी सम्मिलित है।

(स) में गैर–मुख्य व्यावसायिक प्रक्रियाओं के संविदा बाहर प्रदान करने को प्रतिबंधित करता है।

(द) में सिर्फ सूचना प्रौद्योगिकी जन्य सेवाओं के संविदा के बाहर प्रदान करने को प्रतिबंधित करता है।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. ई–व्यवसाय एवं ई–कॉमर्स में अन्तर बतलाइये।
2. मोबाइल ई–कॉमर्स क्या है ?
3. बाह्यस्रोतीकरण (BPO) क्या है ?
4. फ्रेंचाइजी की उपादेयता क्या है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. फ्रेंचाइजी के प्रकार बतलाइये।
2. फ्रेंचाइजी में पक्षकारों के दायित्व बतलाइये।
3. ई–व्यवसाय एवं ई–कॉमर्स में कोई दो अन्तर बतलाइये।
4. इन्टरनेट व्यवसाय द्वारा उपयोगकर्त्ताओं को प्रदान की जाने वाली किन्हीं तीन सहायताओं को बताइये।
5. ऑनलाईन लेनदेनों की अवस्थाएं बतलाइये।

निबन्धात्मक प्रश्न –

1. ऑनलाइन व्यापर में सम्मिलित कदमों का विस्तृत वर्णन किजिये।
2. फर्म से ग्राहक कॉमर्स के प्रमुख पहलुओं का विस्तृत वर्णन कीजिये।
3. नेटवर्किंग मार्केटिंग पर स–विस्तार वर्णन कीजिये।
4. (बी.पी.ओ.) बाह्यस्रोतीकरण पर एक लेख लिखिये।
5. आधुनिक व्यवसाय के विकास में बढ़ती हुई फ्रेंचाइजी की महत्ता पर विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

उत्तर : 1. (द) 2. (स) 3. (ब) 4. (स) 5. (अ)

अध्याय– 10

वाणिज्य में रोजगार के अवसर
(Employment Opportunities in Commerce)

वर्तमान युग में वाणिज्यिक क्षेत्र की गतिविधियाँ बहुत तीव्र गति से बढ़ रही है। वाणिज्य का संबंध मानव सभ्यता के विकास के साथ जुड़ा हुआ है। प्रत्येक युग में वाणिज्यिक गतिविधियों का संदर्भ मिलता है। वाणिज्य एवं मानव विकास अन्तनिर्भर एवं एक दूसरे के पूरक हैं। विकास के लिए दिशा निर्धारण के साथ–साथ संसाधनों की प्राप्ति एवं प्रयोग भी महत्वपूर्ण हैं। संसाधनों की प्राप्ति एवं प्रयोग में वाणिज्य का महत्वपूर्ण योगदान है। आज मानव समाज के प्रत्येक क्षेत्र में वाणिज्य का अधिकाधिक प्रयोग हो रहा है, फलस्वरूप रोजगार के अवसर बढ़ रहे हैं। बढ़ती प्रतिस्पर्धा एवं जटिलताओं के कारण प्रत्येक कार्य विशिष्ट योग्यता प्राप्त व्यक्तियों द्वारा करवाया जाने लगा है। इसी कारण रोजगार के क्षेत्र में वाणिज्य विषय के जानकार एवं पेशेवर व्यक्तियों की मांग भी निरंतर बढ़ रही है।

प्रस्तुत अध्याय में वाणिज्य विषय के विद्यार्थियों को अध्ययन करने के पश्चात् रोजगार के अवसर किन–किन क्षेत्रों में प्राप्त हो सकते हैं, के बारे में हम जानकारी प्राप्त करेंगे। जीवनयापन हेतु धनार्जन के उपलब्ध अवसरों को रोजगार अवसर कहते हैं। रोजगार अवसरों को दो प्रमुख भागों में विभक्त किया जा सकता है– वैतनिक रोजगार एवं स्व–रोजगार।

वैतनिक रोजगार – इसमें व्यक्ति कार्य करने के प्रतिफल स्वरूप वेतन प्राप्त करता है। वैतनिक रोजगार में कार्मिक किसी संगठन में अपनी योग्यतानुसार कार्य स्वीकार करता है। नियोक्ता के अधीन अपनी सेवाएं देता है तथा इसके प्रतिफल स्वरूप वेतन प्राप्त करता है।

स्वरोजगार – इसमें व्यक्ति स्वयं अपनी आर्थिक क्रिया कर लाभ अर्जित करता है। स्व–रोजगार एक उद्यमिता है जिसमें व्यक्ति स्वयं अपना धंधा, उद्योग अथवा व्यापार करता है। उसमें आवश्यक पूँजी लगाकर आर्थिक क्रिया कर लाभ कमाता है।

रोजगार अवसरों को प्रभावित करने वाले तत्व

रोजगार अवसरों को प्रभावित करने वाले अनेक तत्व होते हैं। प्रत्येक राष्ट्र में रोजगार अवसरों का सृजन एवं उनका उपलब्ध होना निम्न तत्वों अथवा घटकों पर निर्भर करता है–

राष्ट्र की जनसंख्या

साक्षरता की स्थिति

जनता का जीवन स्तर

शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता

राष्ट्र का आधारभूत ढांचा

राष्ट्र में पूंजी निर्माण

राष्ट्र में पूंजी निवेश

राष्ट्र की औद्योगिक नीति

कराधान नीति

प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता

व्यापारिक एवं औद्योगिक कानून

सरकारी नीति

पिछले कुछ वर्षों से राष्ट्र औद्योगिक विकास की ओर निरंतर अग्रसर हो रहा है तथा आर्थिक विकास दर लगभग 7 प्रतिशत बनी हुई है। देश का आधारभूत ढांचा मजबूत हो रहा है और गत वर्षों में बैंक, बीमा परिवहन, संचार, आऊट सोर्सिंग एवं प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में आशातीत वृद्धि हुई है। परिणामस्वरूप वाणिज्यिक क्षेत्र में रोजगार के अनेकानेक नए अवसर उपलब्ध हुए हैं। रोजगार के अवसरों को निम्न शीर्षकों में विभाजित कर अध्ययन किया जा सकता है–

बीमा क्षेत्र में रोजगार के अवसर
(Employment opportunities in Insurance Sector)

व्यक्तिगत जीवन एवं व्यापार में जोखिम प्रबंध के महत्वपूर्ण साधन के रूप में बीमा सर्वाधिक प्रचलित है। विभिन्न प्रकार की जोखिमों की सुरक्षा के लिए बीमा व्यवसाय को प्रमुख रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है – जीवन बीमा तथा सामान्य बीमा।

जीवन बीमा – इंग्लैंड में सन् 1583 में लंदन के विलियम गिबन्स का प्रथम जीवन बीमा किया गया था। भारत में 1871 में पहली जीवन बीमा संस्था 'बाम्बे म्युचुअल लाइफ एश्योरेंस सोसायटी' स्थापित हुई थी। सन् 1956 में जीवन बीमा व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया तथा इस बीमा व्यवसाय के संचालन के लिए भारतीय जीवन बीमा निगम की स्थापना की गई। भारतीय जीवन बीमा निगम 1 केन्द्रीय कार्यालय 8 क्षेत्रीय कार्यालय 105 संभागीय कार्यालय तथा 3250 शाखा कार्यालयों के माध्यम से विभिन्न सर्वगों में रोजगार उपलब्ध करवा रहा है। सन् 1991 के पश्चात् जीवन बीमा का क्षेत्र पुनः निजी एवं विदेशी कंपनियों के लिए खोल दिया गया है। भारतीय जीवन बीमा निगम के अतिरिक्त इस क्षेत्र की 24 प्रमुख कंपनियों में एच डी एफ सी, बिड़ला सनलाइफ, आई सी आई सी आई, कोटक महिन्द्रा, टाटा एआईजी, एसबी आई लाइफ, बजाज एलाइन्ज, मेक्स न्यूयार्क, अवीवा, भारती एक्सा, रिलायन्स सम्मिलित है। वर्तमान में निजी क्षेत्रों के 8768 कार्यालयों के माध्यम से रोजगार के अवसर उपलब्ध हो रहे हैं। जीवन बीमा क्षेत्र में लगभग 2 लाख 85 हजार कार्मिकों को रोजगार मिला हुआ है वहीं लगभग 29 लाख 10 हजार वैयक्तिक अभिकर्ताओं को रोजगार प्राप्त हो रहा है।

सामान्य बीमा – भारत में सामान्य बीमा का राष्ट्रीयकरण 13 मई 1971 को किया गया। सामान्य बीमा को तीन प्रमुख वर्गों में बांटा जा सकता है – अग्नि बीमा, सामुद्रिक बीमा तथा विविध बीमा जिसमें दुर्घटना, चिकित्सा, फसल व पशु बीमा सम्मिलित होते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में सामान्य बीमा का कार्य भारतीय साधारण बीमा निगम एवं इसकी सहायक चार कंपनियों द्वारा किया जाता है। इनमें नेशनल इन्श्योरेंस कंपनी लिमिटेड, न्यू इंडिया इन्श्योरेंस कंपनी लिमिटेड, यूनाइटेड इंडिया इन्श्योरेन्स कंपनी लिमिटेड, दि ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड सम्मिलित हैं। आर्थिक उदारीकरण के तहत बीमा व्यापार क्षेत्र पुनः निजी कंपनियों के लिए खोल दिया गया है। निजी क्षेत्र में बजाज एलाइन्ज जनरल इंश्योरेंस कपनी लिमिटेड, एच.डी.एफ. सी जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, आई सी आई सी आई लोमबार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, टाटा ए आई जी जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, स्टार हेल्थ एंड एलाइड इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड प्रमुख रूप से सम्मिलित है।

साधारण बीमा व्यापार प्रतिवर्ष लगभग 20–25 प्रतिशत की दर से बढ़ रहा है। इस कारण आने वाले वर्षों में इस बीमा व्यवसाय में रोजगार के अनेक नए अवसर सृजित होंगे। सामान्यतया बीमा व्यवसाय में रोजगार के निम्न अवसर प्राप्त होते हैं –

लिपिक	Clerk
विकास अधिकारी	Development Officer
विपणन अधिकारी	Marketing Officer
प्रशासनिक अधिकारी	Administrative Officer
एकच्यूरी	Actuary
सर्वेयर	Surveyor
बीमा एजेन्ट	Insurance Agent

रोजगार के उक्त अवसरों को अग्रलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

लिपिक – प्रत्येक कार्यालय में कार्य संचालन हेतु अनेक लिपिक कार्य करते हैं। इसके लिए न्यूनतम योग्यता स्नातक है। इस पद हेतु कंपनियां समय–समय पर भर्ती का विज्ञापन प्रकाशित कर प्रतियोगी परीक्षा द्वारा लिपिकों की भर्ती करती है।

प्रबंधकीय वर्ग – इस वर्ग में विकास अधिकारी, विपणन अधिकारी तथा प्रशासनिक अधिकारी को सम्मिलित किया जाता है। इनके लिए न्यूनतम योग्यता स्नातक है। इनकी भी प्रतियोगी परीक्षा द्वारा भर्ती की जाती है।

एकच्यूरी – बीमा में जोखिम की गणना के लिए विशिष्ट ज्ञान एवं प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति की आवश्यकता होती है। जीवन बीमा पॉलिसियां लंबी अवधि की होने के कारण प्राप्त प्रीमियम में से जोखिम के लिए बीमा दायित्व की गणना और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। ऐसे दायित्व की गणना करने वाले एकच्यूरियल कहलाते हैं। बीमा कंपनियों में ऐसे कार्मिकों की आवश्यकता रहती है।

सर्वेयर – बीमा कंपनियों को क्षतिपूर्ति हेतु प्राप्त दावों की वस्तुस्थिति की जांच एवं निरीक्षण कर रिर्पोट देने के लिए सर्वेयर की आवश्यकता होती है। तकनीकी ज्ञान व योग्यता प्राप्त प्रशिक्षित व्यक्ति इस पद हेतु आवेदन भर सकते हैं।

बीमा एजेन्ट – बीमा एजेन्ट, बीमा व्यवसाय का मूल आधार होते हैं। एजेन्ट बीमा कंपनी के विभिन्न उत्पादों का विक्रय करते हैं। बीमा कंपनी प्राप्त प्रीमियम का एक निश्चित प्रतिशत कमीशन के रूप में एजेन्टों को देती है।

एजेन्ट बनने के लिए दसवीं अथवा बारहवीं कक्षा उत्तीर्ण होना आवश्यक है। साथ ही इन्हें इरड़ा (इंश्योरेंस रेगूलेटरी डवलपमेंट अथॉरिटी) से 100 घंटों का व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त कर परीक्षा उत्तीर्ण करनी होती है। यह प्रशिक्षण जिला स्तर बीमा कंपनियों द्वारा दिया जाता है। प्रशिक्षण उपरांत किसी विकास अधिकारी से सम्बद्ध होकर अपना कार्य करना होता है।

पिछले कुछ वर्षों में बीमा व्यवसाय की कार्य प्रणाली में आमूलचूल परिवर्तन हो रहे हैं। परिणामस्वरूप नये क्षेत्रों बीमा दलाल, पुनर्बीमा दलाल, बीमा परामर्शदाता, तृतीय पक्षकार प्रशासक, बैंकाश्योरेंस जैसे नए रोजगार के अवसर उपलब्ध हो रहे हैं।

बैंकिंग क्षेत्र में रोजगार के अवसर
(Employment opportunities in Baking Sector)

जनता से प्राप्त धन जमा करने एवं अग्रिम के रूप में धन उधार देने का कार्य बैंक द्वारा किया जाता है। इसी कारण बैंकों को व्यापार उद्योग तथा अर्थव्यवस्था का आधार स्तंभ माना जाता है।

सन् 1969 में राष्ट्रीयकरण के पश्चात सार्वजनिक बैंकों द्वारा दूरदराज के क्षेत्रों में भी बैंकिंग सेवाओं का विस्तार हुआ है। सन् 1991 में आर्थिक उदारीकरण के तहत बैंकिंग क्षेत्र में निजीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई। इसी कारण वर्तमान में सार्वजनिक बैंकों के अतिरिक्त कई विदेशी एवं निजी बैंक भी बैंकिंग व्यवसाय कर रहे हैं। आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण से पूर्व बैंकों का कार्य सीमित था किंतु इसके बाद अन्तर्राष्ट्रीय मानकों, पारस्परिक प्रतिस्पर्धा तथा सरकारी नीतियों में हुए व्यापक परिवर्तनों के कारण बैंकों की कार्यशैली एवं बैंकिंग उत्पादों में तीव्र परिवर्तन एवं विकास हुआ है। संचार क्रांति ने बैंकों की कार्यप्रणाली में आमूलचूल परिवर्तन ला दिया है। कम्प्यूटर ने बैंकों को नई दिशा एवं गति दी है। डेबिट कार्ड एवं टैली बैकिंग से बैंकिंग व्यापार निरंतर बढ़ रहा है। नेट बैंकिंग, एटीएम मशीन एवं क्रेडिट कार्ड ने बैंकों में 24 x 7 अर्थात चौबीस घंटे एवं सातों दिन की अवधारणा को जन्म दिया है।

सार्वजनिक क्षेत्र के प्रमुख बैंकों में भारतीय स्टेट बैंक, बैंक ऑफ बड़ौदा, पंजाब नेशनल बैंक, यूनाइटेड कॉमर्शियल बैंक, देना बैंक, इंडियन बैंक, सिंडीकेट बैंक प्रमुख है। वर्तमान में इन बैंकों की लगभग 70421 शाखाएं कार्यरत है तथा 6.48 लाख कार्मिकों को रोजगार मिला हुआ है। वहीं निजी क्षेत्र के प्रमुख बैंकों में एचडीएफसी, आईसीआईसीआई, एक्सिस बैंक, यश बैंक आदि सम्मिलित है। निजी क्षेत्र की लगभग 14584 शाखाएं कार्यरत है।

बैंकों की विविध प्रतियोगी योजनाओं ने रोजगार के अनेक नए अवसर सृजित किए हैं। बैंकिंग योजनाओं एवं कार्ड विक्रय के लिए विभिन्न प्रकार के एजेन्ट तथा विक्रय प्रतिनिधि नियुक्त किए हैं। बैंकों में प्रमुख रूप से लिपिक कम रोकड़िया तथा प्रबंधकीय वर्ग में प्रोबेशनरी आफिसर पद पर भर्ती की जाती है। इन पदों के लिए न्यूनतम योग्यता स्नातक हैं। वर्ष 2020 तक लगभग 7.50 लाख बैंक कर्मचारियों की भर्ती होगी क्योंकि वर्तमान में कार्यरत स्टॉफ में से 2015 से प्रतिवर्ष 30–40 प्रतिशत सेवानिवृत्त होंगे एवं बैंकिंग व्यवसाय का विस्तार भी निरन्तर हो रहा है। विभिन्न बैंकों द्वारा भर्ती हेतु समय–समय पर कुछ विज्ञापन प्रकाशित किये जाते हैं, किन्तु कुछ बैंक इस कार्य हेतु एजेन्सी का प्रयोग आरम्भ कर रही है। भर्ती एवं चयन हेतु पेशेवर संस्थाएं इस कार्य को कर रही है। बैंकिंग क्षेत्र में बैंकिंग कार्मिक चयन संस्थान (www.ibps.in) इस कार्य को कर रही है। बैंकों की आंतरिक परीक्षाओं द्वारा उत्तीर्ण कार्मिकों को वेतनवृद्धि तथा पदोन्नति के अवसर मिलते हैं। इसके अतिरिक्त कम्प्यूटर नेटवर्क प्रभारी, विपणन अधिकारी, वाहन ऋण विक्रय अधिकारी, कार्मिक प्रशिक्षण अधिकारी, गृह ऋण विक्रय अधिकारी, कानूनी सलाहकार तथा क्रेडिट कार्ड विक्रय प्रतिनिधि के रूप में रोजगार के अवसर उपलब्ध हो रहे हैं।

पूँजी बाजार में रोजगार के अवसर
(Employment Opportunities in Capital Market)

पूँजी बाजार में अंश, ऋणपत्र, बांड तथा प्रतिभूतियों का कारोबार होता है। पूँजी बाजार प्रत्येक राष्ट्र की अर्थव्यवस्था का जीवन रक्त होता है जहाँ प्रतिदिन अरबों रूपये का व्यापार होता है। पूँजी बाजार में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष व्यापार किया जाता है।

प्रत्यक्ष व्यापार – प्रत्यक्ष व्यापार के तहत् विनियोजक स्वयं सार्वजनिक निर्गमन में आवेदन करते हैं, स्टॉक बाजार में अंश एवं प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय करते हैं। इसमें लाभ–हानि की जोखिम अधिक होती है।

अप्रत्यक्ष व्यापार – अप्रत्यक्ष व्यापार के अंतर्गत म्यूच्यूअल फंड आते हैं जिसमें विनियोजक स्वयं व्यापार (क्रय–विक्रय)नहीं करता, बल्कि फंड कंपनियां उनके प्रतिनिधिस्वरूप बड़ी मात्रा में क्रय विक्रय करती है, जिससे विनियोजकों की जोखिम कम एवं प्रतिफल निश्चित हो जाता है। पूंजी बाजार में रोजगार अवसरों के दो प्रमुख क्षेत्र हैं– अ– स्कंध बाजार, ब– म्यूच्यूअल फंड कंपनी

अ– स्कंध बाजार – कंपनियों के निर्गमित अंश एवं ऋण पत्रों के क्रय–विक्रय स्थल को स्कंध बाजार कहते हैं। कंपनी के अंश, ऋण पत्र निर्गमन एवं हस्तांतरण, लाभांश वितरण, अधिकार निर्गमन, बोनस अंश निर्गमन संबंधी कार्यों को भी स्टॉक बाजार में ही सम्मिलित किया जाता है।

स्टॉक बाजार में ऑन लाइन सौदे होते हैं। स्टॉक एक्सचेंज के सदस्य ब्रोकर ही ऐसा क्रय–विक्रय कार्य करने के लिए अधिकृत होते हैं। स्टॉक बाजार में रोजगार के निम्न रोजगार अवसर विद्यमान हैं–

1– दलाल या ब्रोकर – स्टॉक एक्सचेंज के सदस्य बनकर या ऐसे सदस्य के एजेन्ट (उप दलाल)बनकर क्रय–विक्रय का कारोबार कर सकते हैं।

2– लीड मैनेजर या रजिस्ट्रार – कंपनी के अंश निर्गमन, आवंटन, हस्तांतरण संबंधी कार्यों को कंपनी के प्रतिनिधि के रूप में करने का अवसर रजिस्ट्रार के रूप में कार्य करने का होता है।

3– संग्रहण केन्द्र के रूप में रोजगार का अवसर

4– बोल्ट ओपरेटर के रूप में रोजगार का अवसर।

5– लेखाकार के रूप में रोजगार के अवसर

6– बट्टा गृह के रूप में रोजगार के अवसर

7– निवेशक शिक्षा कार्यक्रम के तहत प्रशिक्षक के रूप में अवसर

8– स्वयं विनियोजक के रूप में रोजगार का अवसर

ब– म्यूच्यूअल फंड कंपनी – पूँजी बाजार में कुछ विनियोजक न्यूनतम जोखिम तथा कम लाभ अपेक्षा के साथ पूंजी विनियोजित करना चाहते हैं, क्योंकि पूँजी बाजार में प्रत्यक्ष कारोबार के लिए बाजार की गहन जानकारी, अनुभव, कंपनियों की सूचनाएं एवं उनका विश्लेषण करते हुए निर्णय करना पड़ता है जो कि प्रत्येक के लिए संभव नहीं होता है। अतः वो ऐसी संस्था अथवा कंपनी को अपनी बचत या धन दे देते हैं। ये फंड कंपनी अपनी सूझ–बूझ से विनियोजित करती है तथा प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय कर लाभ अर्जित कर उसमें से खर्चे घटाकर शेष लाभ को सभी सदस्यों में बांटा जाता है।

म्यूचूअल फंड का अर्थ ही यह है कि छोटे–छोटे विनियोजकों के निवेशित धन से संग्रहित बड़ी पूँजी से पूँजी बाजार में कारोबार करना तथा अर्जित लाभ को आपस में बांटना होता है। म्यूच्यूअल फंड कंपनियों में रोजगार के निम्न अवसर होते हैं–

1. **विनियोग विश्लेषक** – ये बाजार की विभिन्न सूचनाओं, कंपनियों के परिणामों, सरकारी नीतियों का विश्लेषण कर राय देते हैं।
2. **पोर्ट फोलियो मैनेजर** – ये धन के विनियोजन का श्रेणीकरण या वर्गीकरण करते हैं ताकि कितना धन ऋण पत्रों में, कितना अंशों में, किस–किस क्षेत्र की कौन–कौनसी कंपनी में विनियोग करना है, का उचित निर्णय लिया जा सके।
3. **एजेन्ट** – म्यूच्यूअल फंड के उत्पादों का क्रय–विक्रय करने के लिए एजेन्सी कारोबार भी किया जाता है। इन्हें एजेन्ट संपादित करते हैं।
4. सलाहकार के रूप में रोजगार के अवसर मौजूद रहते हैं।
5. कर सलाहकार के रूप में रोजगार के अवसर मौजूद रहते हैं।
6. मूल्यांकक के रूप में रोजगार के अवसर मौजूद रहते हैं।
7. कार्यालय में लिपकीय एवं प्रबंधकीय कार्य के अवसर, तथा कम्प्यूटर ऑपरेटर, लेखाकार, सूचना संग्राहक, आदि क्षेत्रों में रोजगार के अवसर।

आऊट सोर्सिंग (Outsourcing - BPO, KPO)

वर्तमान वैश्वीकरण के प्रतिस्पर्धी वातावरण में आउट सोर्सिंग सेवा व्यापार बहुत महत्वपूर्ण, बन गया है। भारत को इस 'आउट सोर्सिंग' सेवा व्यापार से न केवल विदेशी मुद्रा प्राप्त हो रही है बल्कि देश की ज्वलंत समस्या बेरोजगारी को कम करने में भी मदद मिल रही है। साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कुशल पेशेवर की छवि भी निखर रही है।

आउट सोर्सिंग का वाणिज्य की भाषा में पूरा नाम 'बिजनेस प्रोसेस आऊट सोर्सिंग' है। आउट सोर्सिंग दो शब्दों की युग्म क्रिया है। आउट का तात्पर्य– बाह्य या बाहरी (देश से बाहर), सोर्स का तात्पर्य – स्रोत, साधन या प्राप्ति स्थल से है। इसका आशय व्यापारिक क्रिया की पूर्ति के लिए बाहरी स्रोतों (देश के बाहर) का प्रयोग करना है। अर्थात् व्यापारिक कार्यों या प्रक्रिया के लिए आवश्यक वस्तुएं एवं सेवाएं बाहरी स्रोतों से प्राप्त करने की कार्यविधि अथवा प्रणाली को 'बिजनेस प्रोसेस आउट सोर्सिंग कहते हैं।

व्यापार में यह कार्य प्रणाली बहुत पुरानी है। उद्योग में जिस वस्तु का निर्माण करते हैं उसके सभी घटक या पूर्जे सामग्री स्वयं द्वारा निर्माण करना संभव या लाभप्रद नहीं होता है। तब उन वस्तुओं की बाहरी स्रोतों से बनवाकर मंगवाया जाता था और यह परंपरा आज भी चल रही है। उदाहरणार्थ, मारूति कार निर्माता प्रारंभ में इंजन जापान से ही मंगवाता था, आज भी कम्प्यूटर व इलेक्ट्रोनिक्स वस्तुओं की निर्माता कंपनियां कुछ पूर्जे बाहरी देशों की कुशल कंपनियों से बनवाकर मंगवाती है। इस प्रकार किसी उत्पाद के निर्माण हेतु वस्तुओं का अन्य देशों से निर्माण करवाकर मंगवाना–वस्तु परक आउट सोर्सिंग कहलाता है।

चूंकि अब विज्ञान एवं तकनीकी विकास के साथ–साथ सेवाओं का व्यापार भी बढ़ गया है इसीलिए सेवाओं की आउट सोर्सिंग एक आधुनिक विचार है। जिससे नये क्षेत्रों में रोजगार के अवसर उत्पन्न हो रहे हैं।

बिजनेस प्रोसेस आउट सोर्सिंग विचार की पृष्ठभूमि – वर्तमान प्रतियोगी बाजार में विश्व की समस्त कंपनियों में मूल्य युद्ध चल रहा है। ऐसी स्थिति में प्रत्येक कंपनी अपनी उत्पादन लागत को कम करते हुए लाभ की यथास्थिति रखना चाहती है या वृद्धि करना चाहती है। उत्पादन लागत में एक बड़ा हिस्सा प्रशासनिक व्ययों का होता है जिसमें कार्यालय के कार्य महत्वपूर्ण होते हैं। कार्यालय में कंपनी की सभी सूचनाओं का संकलन, व्यवस्थित वर्गीकरण, संधारण, प्रस्तुतीकरण तथा सूचना चाहने वाले को समय पर वांछित सूचना उचित प्रारूप में उपलब्ध करवाना होता है। इसे कार्यालय का कार्य कहा जाता है जिसमें लिपिक स्तर के व्यक्ति नियुक्त किये जाते हैं। कंपनी में इन कार्यों की लागत को कार्यालय उपरिव्यय कहते हैं। संचार क्रांति अर्थात् तीव्र गति को दूर संचार सेवाओं एवं कम्प्यूटर ने इस 'कार्यालय उपरिव्यय' की लागत में कमी लाने के सृजनात्मक विचार उत्पन्न किए।

विकसित देशों में कार्यालय में कार्यरत व्यक्तियों का वेतन अधिक है तथा कार्यालय किराया एवं संचालन के खर्चे भी अधिक आते हैं अतः इन देशों ने इस उपरिव्यय को कम करने का संचार उपकरणों के माध्यम से विचार किया तथा विकल्प के रूप में सोचा गया एवं अधिक जनसंख्या वाले ऐसे देशों से यह कार्य करवाया जावे जहां आधारभूत ढांचा भी अच्छा हो तथा कुशल प्रशिक्षित श्रम शक्ति न्यून लागत पर उपलब्ध हो। ऐसा विकल्प इसलिए सोचा गया क्योंकि विकासशील देशों में मजदूरों व कर्मचारियों का वेतन अथवा मजदूरी अपेक्षाकृत बहुत कम है तथा अन्य व्यय कार्यालय किराया, बीमा, पानी–बिजली, मरम्मत संबंधी समस्त खर्चों में भी बचत होती है। विकसित राष्ट्रों की कंपनियों के मुख्य अधिशाषी अधिकारी एवं वैज्ञानिक तकनीकी अधिकारियों ने इसे प्रारंभ में प्रयोग के तौर पर करके देखा तथा सफलता प्राप्ति पर इसका वृहत् स्तर पर उपयोग किया जाने लगा।

इस आउट सोर्सिंग व्यापार में अमेरिका जैसे देश की कंपनियों ने अपने कार्यालय के समस्त कार्यों, संग्रहण, फाइलिंग, वर्गीकरण, श्रृंखलाबद्ध, प्रस्तुतीकरण, विकासशील देशों से करवाना प्रारंभ कर दिया। भारत में दिल्ली, गुड़गांव, बैंगलोर तथा हैदराबाद में आज अनेक कॉल सेंटर खुले हुए हैं जो इस प्रकार का कार्य करते हैं। यही नहीं चिकित्सा जगत का 'मेडिकल ट्रांसक्रीपसन' कार्य भी तेज गति से भारत में हो रहा है।

कॉल सेंटर के माध्यम से मुख्य रूप से निम्न कार्य हो रहे हैं –

अ– कंपनी के ग्राहकों को उनके प्रश्नों का उत्तर देना तथा

ब– नये ग्राहक बनाने के लिए फोन पर विक्रय अभियान संचालित करना।

भारतीय कॉल सेंटर इसलिए व्यापक स्तर पर सफल रहे हैं, क्योंकि भारतीय युवा का अंग्रेजी भाषा का अच्छा ज्ञान तथा उच्चारण बहुत अच्छा तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार्य है। कॉल सेंटर का समस्त कार्य टेलीफोन व कम्प्यूटर पर आधारित है इसलिए भाषा ज्ञान एवं कम्प्यूटर संचालन कार्य आना अपेक्षित है। प्रतिदिन रिक्त पदों के लिए कॉल सेंटर पर आवेदन मांगे जा रहे हैं। कॉल सेंटर पर निम्न पदों के लिए आवेदन मांगे जा रहे हैं। कॉल सेंटर पर निम्न पदों के लिए राजेगार अवसर उपलब्ध होते हैं –

1 उपभोक्ता सहायता अधिकारी

2 महिला दूरभाष परिचालक

3 तकनीकी सहायता अधिकारी

4 संग्रहण अधिकारी

5 टेली बैंकिंग

6 दूरभाष आधारित भर्ती कर्ता

उपभोक्ता बाजार – रिटेलिंग (Retailing)

भारत का उपभोक्ता बाजार प्रतिवर्ष लगभग 8 लाख करोड़ रूपये का है। इसकी तुलना में भारत का सबसे बड़ा रिटेल बिजनेस मात्र 1300 करोड़ रूपए आकार का है। सबसे बड़ा रिटेल, बिजनेस समूहों में से चार, डिपार्टमेंट स्टोर फार्मेट में ऑपरेट करते हैं। ये हैं – शॉपर्स स्टॉप, वेस्टसाइड, लाइफस्टाइल और पेंटालून। रिटेल की सालाना बिक्री में इन सबका योगदान 2,700 करोड़ रूपए से ज्यादा नहीं होता। जबकि उभरते हुए हाइपर मार्केट तथा जाइंट,फूड वर्ल्ड और बिग बाजार जैसे फूड व ग्रॉसरी सुपर मार्केट इस सालाना बिक्री में कुल मिलाकर 2500 करोड़ रूपए तक का योगदान दे सकते हैं। जहां तक कंज्यूमर ड्यूरेबल सेग्मेंट की बात है, उसमें विवेक्स वसंत तथा विजय सेल्स का चालू वित्त वर्ष में सामूहिक रेवेन्यू 1800 करोड़ रूपए तक का हो सकता है। खानपान सेवाओं यानी फूड सर्विसेज में हल्दीराम, कैफे कॉफी डे, यम, मैक्डोनोल्ड , निरूलाज व बरिस्ता जैसे छः शीर्ष खिलाड़ी 600 करोड़ रूपए रेवेन्यू का आंकड़ा पार कर सकते हैं। देखने में ये आंकड़े काफी छोटे लग सकते हैं, लेकिन आश्चर्यजनक रूप से ये सारे संकेत नए रिटेल फार्मेटों की एक व्यापक रेंज की शुरूआत के लिए काफी उत्साहजनक माने जा रहे हैं। उम्मीद की जा रही है कि ये फार्मेट तेजी से विकास करेंगे और जल्दी ही बड़े पैमाने पर राष्ट्रीय व क्षेत्रीय रिटेलिंग बिजनेस का आधार बनेंगे। जबकि अभी ज्यादातर ध्यान तीन तरह की बिजनेस संभावनाओं पर दिया जा रहा है। यह है – डिपार्टमेंट स्टोर्स, फूड व ग्रॉसरी सुपर

मार्केट्स और हाईपर मार्केट्स।

इसमें शक नहीं कि ये सभी व्यापार अपार संभावनाओं से भरे हैं और निश्चित रूप से इन पर ध्यान देना चाहिए। लेकिन इस वक्त यह बात भी समझनी जरूरी है कि भारत में और भी बहुत से आकर्षक विकल्पों की व्यापक रेंज मौजूद है।

इसके अनुसार मोटे तौर पर दो वर्ग बनाए जा सकते हैं –(अ) वस्तु विशेष का उपभोक्ता बाजार (स्पेशलिटी रिटेलिंग), (ब) खाद्य पदार्थ बाजार (फूड सर्विसेज रिटेलिंग)

(अ) वस्तु विशेष का उपभोक्ता बाजार (स्पेशलिटी रिटेलिंग)

इस वर्ग में उन समस्त वस्तुओं व उत्पादों को सम्मिलित किया जाता है जिनका प्रयोग सामान्य दैनिक जीवन में आम व्यक्ति द्वारा किया जाता है। इन वस्तुओं के व्यापार की अपार संभावनाएँ हैं लेकिन सबसे अधिक संभावनाओं वाले वस्तु बाजार के क्षेत्र (सेग्मेट) निम्न हैं –

1. **गर्भवती महिलाओं, शिशुओं और बच्चों संबंधी उत्पाद** – भारत में प्रतिवर्ष ढाई करोड़ बच्चे जन्म लेते हैं। इस दर व संख्या को देखते हुए गर्भवती महिलाओं, शिशुओं एवं बच्चों के लिए उपयोगी तथा उपभोग योग्य वस्तुओ के एक बड़े बाजार की संभावना प्रत्यक्ष रूप से मौजूद है। इस तरह की वस्तुओं के उत्पादन एवं विक्रय में उत्पाद रेखा तथा विस्तार बहुत व्यापक है। इसमें वस्त्र, उपभोग्य सामग्री – (नेपकिन आदि) तथा वस्तुएं शामिल हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि इस प्रकार के उत्पादों की खपत शहर व कस्बों के मध्य वर्ग एवं सम्पन्न वर्ग सभी में है।

2. **आभूषण एवं फैशन के गहने** – आज भारत में फैशन व दिखावे का चलन बहुत है। मध्यम व उच्च मध्यम वर्ग से भी 'रोटी, कपड़ा और मकान' की आवश्यकता के साथ 'ज्वैलरी' आवश्यक एवं लोकप्रिय हो गया है। यही कारण है कि वर्ष 2014 में ''ज्वैलरी'' बाजार की कुल पूंजी 1,63,000 करोड़ रही तथा शहरों व कस्बों में आभूषणों (ज्वैलरी) की दुकानों की संख्या अपेक्षाकृत बढ़ गई है। अतः इस ज्वैलरी के बाजार में भी अधिक संभावनाएँ हैं।

3. **साड़ी एवं परंपरागत भारतीय परिधान** – भारत में उपभोक्ता प्रतिवर्ष 1 लाख 60 हजार करोड़ रूपये के कपड़े खरीदते हैं जिसमें सबसे अधिक रकम भारत की परंपरागत साड़ी पर खर्च की जाती है। अगर इसमें तेजी से लोकप्रिय होते कुर्त–पायजामे व सलवार–सूट को जोड़ दिया जाए तो उपरोक्त राशि में 45 हजार करोड रूपये और जुड़ जायेंगे।

   लेकिन चौकाने वाले तथ्य यह है कि साड़ियों एवं परंपरागत परिधान (घाघरा – ओढ़नी, लहंगे)के लिए राष्ट्रीय स्तर का उत्पादक एवं रिटेलर नहीं हैं और संपूर्ण ध्यान केवल महिला–पुरूष के पश्चिम परिधानों (जीन्स, टी शर्ट, टॉप) पर ही दिया जा रहा है तथा इनके शो रूम (एक्सक्लूसिव) खोले जा रहे हैं साड़ी एवं परंपरागत परिधान के उपभोक्ता बाजार (रिटेलिंग) में अभी भी अत्यधिक अवसर हैं।

4. **फुटवियर (जूते)** – युवाओं की मानसिकता में आ रहे बदलाव के कारण तथा बढ़ते फैशन के कारण जूते या फुटवियर का बाजार भी तीव्र गति से बढ़ रहा है। फुटवियर के बाजार में ज्यादातर ब्रांड रिटेल शो–रूम है जैसे – रिलेक्सो, लिबर्टी आदि। कुछ डिपार्टमेंटल स्टोर्स हैं जो सामान्य अवसरों (कैजुअल वियर) एवं विशेष अवसरों (फार्मल) पर पहनने योग्य तथा स्कूली पोशाक के जूते का निश्चित व्यापार करते हैं। अर्थात् राष्ट्रीय स्तर पर अभी भी इस क्षेत्र में बहुत कुछ करने का अवसर मौजूद है।

6. **उपहार तथा कलात्मक वस्तुएं** – भारत में उपहार लेने–देने का प्रचलन तथा दायरा तेजी से बढ़ता जा रहा है। जन्मदिन, शादी, विवाह वर्षगांठ, रजत–स्वर्ण जयन्ति, सफलता पर बधाई और हर छोटे–बड़े अवसर पर उपहार लिए–दिए जाने लगे हैं। यही नहीं पाश्चात्य संस्कृति' व फैशन के प्रभाव ने कई तरह के दिवसों का उत्सव मनाना प्रारंभ कर दिया है जैसे– फ्रेंडस डे, वेलेन्टाइन डे, मदर डे आदि। अब परंपरागत त्योहारों – होली, दीपावली, भारतीय नव वर्ष (वर्ष प्रतिपदा) पर भी उपहारों का चलन बढ़ गया है। लेकिन उपहार (आइटम) वस्तुओं की श्रृंखला में अभी तक कुछ सरकारी या हैण्डीक्राफट एम्पोरियम को छोड़ कोई विशेष ब्रांड या उत्पादक नहीं है।

   स्थानीय व क्षेत्रीय कला की वस्तुएं एवं कंसेप्ट आधारित वस्तुओं के बाजार की अभी भी अपार संभावनाएं हैं।

7. **स्वास्थ्य संरक्षण एवं पोषण संबंधित वस्तुएँ अथवा उत्पाद** – विभिन्न शोध संस्थाओं के सर्वे, परिणामों से यह तथ्य सामने आया है कि भारत में लोग अब स्वास्थ्य के प्रति बहुत सचेत होते जा रहे हैं। जिससे स्वास्थ्यवर्धक उत्पादों की रिटेलिंग का व्यापार बढ़ते की अच्छी संभावनाएँ हैं।

8. **स्पोर्ट्स एवं अन्तः वस्त्र उत्पाद** – जीवन पद्धति (लाइफ स्टाइल)से संबंधित विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन आया है। खेलकूद के लिए विशेष परिधान तथा पुरूष व महिला के अन्तः वस्त्रों के उत्पादों की मांग भी बढ़ती जा रही है। अतः इस क्षेत्र में भी उपभोक्ता बाजार के अधिक अवसर मौजूद हैं।

(ब) खाद्य पदार्थ या वस्तु व्यापार

भारतीय युवाओं की जीवन पद्धति तथा कार्यशैली में आए परिवर्तन के कारण खाने–पीने की आदतें, तरीके एवं वस्तुओं में भी तेजी से बदलाव आया है। इस क्षेत्र में व्यापार के आकर्षक अवसर निम्न हैं –

1. **त्वरित खाद्य पदार्थ (फास्ट फूड)** – भारत में हर आमदनी एवं आयु वर्ग में त्वरित खाद्य (फास्ट फूड) का चलन बढ़ रहा है। इस क्षेत्र में बाजार बढ़ाने का काम भले ही विदेशी ब्रांड के पदार्थ–पिज्जा या बर्गर ने किया हो लेकिन स्थानीय फास्ट फूड के ग्राहक अभी भी ज्यादा हैं तथा उन्हें स्थानीय खाद्य पदार्थ पसंद हैं व संतुष्ट भी उसी से होते हैं। इसलिए अच्छी ग्राहक सेवा, स्वच्छता, गुणवत्ता एवं उचित मूल्य का ध्यान रखते हुए स्थानीय फास्ट फूड जैसे – मिर्ची बड़ा, डोसा, इडली, पाव–भाजी, कचौरी, समोसा, भुजिया, सत्तू, भेलपुरी, दही–बड़ा, इत्यादि के अवसर अभी भी बहुत अधिक है।

2. **सलाद एवं सैंडविच पार्लर्स** – बड़े शहरों के कार्यालयों या मुख्य बाजारों के नुक्कड़ पर 'फलों के ठेले आपने देखे होंगे। यह इस बात का स्पष्ट संकेत है कि इस क्षेत्र (सेग्मेट) में व्यापार के व्यापक अवसर हैं। इग्लैंड स्थित सैंडविच शॉप्स की श्रृंखला है जिसका नाम प्रैट अ मैन्जर है। उसी मॉडल के आधार पर भारत में भी व्यापार की संभावनाएं हैं।

3. **डबल रोटी तथा बैकरी की खाद्य वस्तुएँ** – आज समाज में बेक किए गए खाद्य पदार्थों का चलन बढ़ रहा है साथ ही ब्रेड (डबल रोटी) की भी विभिन्न किस्मों की मांग बढ़ रही है। अलग–अलग स्वाद तथा प्रोटीन आधारित ब्रेड का चलन बढ़ रहा है। उच्च वर्ग में स्टार होटलों की ब्रांड आधारित ब्रेड एंड मोर' तथा हॉट ब्रेडस', की सफलता इस क्षेत्र की छिपी व्यावसायिक संभावनाओं को इंगित करती है।

4. **फूड कोर्ट्स** – पिछले कुछ वर्षों में भारतीय परिवारों में बाहर खाना खाने का शौक बढ़ रहा है। साथ ही परंपरागत खाने से हटकर आए दिन व्यंजनों में एवं स्वाद में नए –नए प्रयोग करने की आदत बढ़ रही है अर्थात् इस क्षेत्र में व्यापारी की संभावनाएं अधिक हैं। यही वजह है कि मल्टीपलैक्स तथा शॉपिंग मॉल्स में फूड कोर्ट्स के लिए अलग स्थान रखा जाने लगा है।

5. **आइसक्रीम व जूस (फलरस) पार्लर** – आम भारतीयों की खाने–पीने की आदतों में आज रहे परिवर्तन के कारण आइसक्रीम एवं जूस की मांग निरंतर बढ़ रही है। आजकल खाने के बाद आइसक्रीम, पार्क में शाम को घूमने जाने पर आइसक्रीम व जूस की आदत बढ़ गई है। अतः इस क्षेत्र में भी व्यापक संभावनाएँ हैं। क्वालिटी, पैकिंग एवं मूल्य को ध्यान में रखकर स्थानीय उत्पादों को लोकप्रिय बनाया जा सकता है।

6. **स्नैक फूड, भारतीय मिठाइयां एवं नमकीन** – भारतीय नमकीन, मिठाईयों एवं स्नैक्स की भरमार है। आजकल मेहमानों की आवभगत एवं शाम की चाय के साथ स्नैक्स व नमकीन का प्रचलन बढ़ गया है। स्थानीय नमकीन, पकौड़े या सेव या समोसे की अत्यधिक मांग रहती है। इस प्रकार क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर इन वस्तुओं की रिटेलिंग की अत्यधिक सफलता की संभावनाएं हैं। हल्दीराम का भुजिया तथा चेन स्टोर्स इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

उपर्यूक्त सभी वस्तुओं एवं खाद्य पदार्थों में व्यापार के पर्याप्त अवसर मौजूद है। जरूरत सिर्फ इन पर गहराई से विचार करने, गुणवत्ता तथा पैकिंग पर ध्यान देने की है। अगर मैक्डोनाल्ड , पिज्जा हट का विदेशी उत्पाद सफल हो सकता है तो स्थानीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर पेशेवर सलाहकारों की सहायता से प्रभावी विपणन एवं उपभोक्ता संरक्षण एवं सफल व्यापार मॉडल लेकर हम भी सफल हो सकते हैं, बशर्ते उपभोक्ता पसंद व जरूरत को प्राथमिकता दी जाये।

प्रशासनिक क्षेत्र में रोजगार के अवसर
(Employment opportunities in Administrative area)

सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के विभिन्न उपक्रमों तथा सरकार के विभागों में प्रबंधकीय एवं प्रशासकीय नियंत्रण के लिए उच्च स्तरीय पदों पर कुशल एवं पेशेवर व्यक्तियों को नियुक्त किया जाता है। सरकारी क्षेत्र में इन्हें राजपत्रित अधिकारी के रूप में तथा सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में इन्हें कार्यकारी अधिकारी के रूप में नियुक्तियां दी जाती हैं।

सरकारी क्षेत्र के विभिन्न कार्यों – कर राजस्व, सांख्यिकी, अंकेक्षण, एवं वित्त संबंधी विभागों में प्राथमिक रूप से वाणिज्य स्नातकों एवं पेशवरों को ही वरीयता दी जाती है। उक्त सरकारी (केन्द्र एवं राज्य) विभागों में नौकरी या सेवा अवसर के लिए प्रतियोगी परीक्षाएं उत्तीर्ण करनी होती हैं, जिसमें प्राप्तांकों की मेरिट के आधार पर चयन किया जाता है। केन्द्रीय सरकार संबंधी विभागों में नौकरी के लिए संघ लोक सेवा आयोग द्वारा भर्ती के आवेदन मांगे जाते हैं तथा वहीं इन परीक्षाओं का आयोजन कर चयनित उम्मीदवारों की सूची सरकार को नियुक्ति हेतु भिजवा दी जाती है। यह भर्ती व चयन प्रक्रिया राष्ट्रीय स्तर पर पूरे देश में होती है।

केन्द्र सरकार या भारत सरकार में वाणिज्य स्नातकों या पेशेवरों के लिए निम्न अवसर उपलब्ध रहते हैं। इनके अतिरिक्त मेरिट में अग्रणी होने पर सिविल सेवा में निम्न पदों पर रोजगार के अवसर प्राप्त होते हैं।

1 भारतीय प्रशासनिक सेवा
2 भारतीय पुलिस सेवा
3 भारतीय विदेश सेवा
4 भारतीय रेल सेवा

इन पदों के लिए न्यूनतम योग्यता स्नातक है।

राजस्थान में राज्य सरकार संबंधी विभागों के प्रशासनिक क्षेत्र में रोजगार अवसरों की प्रक्रिया – राजस्थान लोक सेवा आयोग करता है। यह राज्य सरकार की भर्ती व चयन एजेन्सी है। सरकार अपने विभिन्न विभागों के लिए आवश्यक प्रशासनिक अधिकारियों की आवश्यक संस्था लोक सेवा आयोग को सूचित कर देता है जिसके अनुसार राजस्थान लोक सेवा आयोग भर्ती हेतु विज्ञापन प्रसारित करता है, प्रतियोगी परीक्षा तथा साक्षात्कार का आयोजन कर योग्य व्यक्तियों का चयन करते हुए राज्य सरकार को सूची प्रेषित करता है। राजस्थान प्रशासनिक सेवाओं में मुख्य रूप से अग्रलिखित पद होते हैं –

1 राजस्थान प्रशासनिक सेवा
2 राजस्थान पुलिस सेवा
3 राजस्थान लेखा सेवा
4 राजस्थान बीमा सेवा
5 राजस्थान सहकारिता सेवा
6 राजस्थान विकास सेवा
7 राजस्थान बिक्री कर सेवा

उपरोक्त के अतिरिक्त अन्य कई पद भी होते हैं जिनमें प्रार्थी की इच्छा तथा वरीयता क्रम के अनुसार चयन एवं नियुक्ति दी जाती है।

भारत तथा राज्य सरकार के विभिन्न सार्वजनिक उपक्रमों जैसे – NTPC, SAIL, GAIL, RTDC, RFC, RIICO, RMMDC बिजली कंपनी आदि में प्रशासनिक तथा वित्तीय व लेखा कार्यों हेतु रोजगार के विभिन्न अवसर उत्पन्न होते हैं जो निम्न होते हैं –

1. **प्रबंध संचालक** – वहां प्रशासनिक निर्णयों एवं नियंत्रण हेतु सरकार अपना प्रतिनिधि जो भारतीय प्रशासनिक सेवा से संबंधित होता है, को प्रबंध संचालक के रूप में नियुक्त करती है।
2. **वित्तीय सलाहकार** – सार्वजनिक उपक्रमों या सरकार की स्वायत्तशाषी संस्थाओं में जहां सरकार अनुदान या वित्तीय सहायता देती है वहां वित्त संबंधी निर्णयों एवं लेखा कार्यों के नियंत्रण हेतु सरकार अपना प्रतिनिधि, जो लेखा सेवा से संबधित होता है, वित्तीय सलाहकार के रूप में नियुक्त करती है।
3. **कर सलाहकार** – सरकार (केन्द्र या राज्य) के राजस्व प्राप्ति विभागों में कर ढांचा निर्धारण करने, कर संग्रहण हेतु तकनीकों का सुझाव देने तथा कर संबंधी लेखा कार्य नियंत्रण के लिए सरकार कल सलाहकार नियुक्त करती है।
4. **अंकेक्षक एवं लेखाकार** – केन्द्र एवं राज्य सरकार अपने वित्त संबंधी कार्यों का लेखा–जोखा रखने एवं नियंत्रण करने के लिए एक पूरा विभाग – लेखा एवं अंकेक्षण परीक्षण विभाग संचालित करता है।

केन्द्र सरकार का महालेखा परीक्षक एवं नियंत्रण विभाग तथा राज्य स्तर पर राजस्थान सरकार का लेखा एवं कोष निदेशालय तथा स्थानीय निधि एवं अंकेक्षण विभाग कार्यरत है।

इन विभागों में लेखा एवं अंकेक्षण संबंधी कार्यों के लिए लेखाकार एवं अंकेक्षक निम्नलिखित तीन स्तरों पर नियुक्त किये जाते हैं – लेखाकार, सहायक लेखा अधिकारी, लेखाधिकारी।

5. **लागत लेखाकार** – सरकार के ऐसे विभाग तथा सार्वजनिक उपक्रम जो निर्माण कार्य या सेवा व्यापार में संलग्न है अपने यहीं लागत का निर्धारण तथा लागत का लेखा एवं नियंत्रण कार्य के लिए लागत लेखापाल नियुक्त करते हैं। जैसे – भू–जल विभाग आदि।
6. **कंपनी सचिव** – सरकार के ऐसे विभाग जो कंपनी अधिनियम 1950 के अंतर्गत निर्मित है तथा संचालित हो रहे हैं तो इन विभागों में कंपनी कानून के अनुसार पुस्तकों का संधारण, बैठकों का आयोजन तथा संबंधित सूचनाओं को निर्धारित प्रारूप में तैयार कर प्रेषित करने के लिए कंपनी सचिव की नियुक्ति की जाती है।

तकनीकी क्षेत्र में रोजगार के अवसर
(Employment Opportunities in Technologies)

ई–कामर्स – ई–कॉमर्स में 'ई' शब्द इलैक्ट्रानिक के संक्षिप्त रूप में है तथा कॉमर्स से आशय व्यापारिक लेन–देनों से है, अतः ई–कॉमर्स से आशय ऐसे सौदे से है जिसके अंतर्गत विक्रेता और क्रेता बिना कागजों की अदला–बदली किए अथवा बिना एक–दूसरे

से मिले इंटरनेट के माध्यम से लेन–देन करते हैं, यह व्यापार कम्प्यूटर द्वारा किया जाता है। इस प्रकार के कारोबार के लिए विश्व भर में कम्प्यूटरों का विशेष नेटवर्क कार्य कर रहा है। ई–कॉमर्स में बैंकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है क्योंकि सभी लेन–देनों का भुगतान बैंकों के माध्यम से किया जाता है। बैंकों के लिए इससे नये अवसर उत्पन्न होंगे। इसके लिए ग्राहकों को बैंक में खाता खोलकर अपना व्यवसाय करना होगा। क्रेता डीलर को बैंकों के पास खोले गए खाते का उल्लेख करते हुए आर्डर देता है। कंपनी जब डीलर के आदेश को स्वीकार कर लेती है तब डीलर के बैंक खाते से राशि निकालकर कंपनी के खाते में जमा करा दी जाती है।

ई–कॉमर्स के दो पक्ष हैं – प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, 'अप्रत्यक्ष पक्ष' में माल स्वयं सूचना मात्र है जिसे कम्प्यूटर से भिजवा दिया जाता है जैसे अखबार। आज अनेक अखबार इंटरनेट के जरिए पढ़े जा सकते हैं। इसी प्रकार दस्तावेज, पुस्तक, डाक, मौखिक संदेश, संगीत फिल्म, फोटोग्राफ, विडियो प्रशिक्षण सामग्री, साफ्टवेयर, बाजार भाव, पैसा जमा करने या निकालने के निर्देश आदि चीज सूचना मात्र है। इन्हें इंटरनेट के जरिये कहीं से कहीं भेजा जा सकता है। दूसरा पक्ष है प्रत्यक्ष, जिसमें ऐसी वस्तुएं आती हैं जो सूचनाएं मात्र नहीं है। इंटरनेट पर व्यापारी अपने सामान को आपको दिखा सकता है। सौदा कम्प्यूटर के माध्यम से होता है उसके बाद माल घर भिजवा दिया जाता है, इसमें विज्ञापन दिये जाते हैं, माल के आदेश दिए जाते हैं, इसके द्वारा दुकानदार एक जगह पर बैठा हुआ अपने माल की सूचना दुनिया के किसी भी कोने में दे सकता है। अब व्यापारियों को जगह–जगह अपने स्टोर खोलने अथवा एजेन्ट नियुक्त करने की आवश्यकता नहीं है।

इंटरनेट पर रिवर्स विज्ञापन भी धड़ल्ले से चल रहे हैं, अर्थात् क्रेता इंटरनेट पर यह जानकारी डाल सकता है कि उसे अमुक विशेषताओं वाली अथवा रेंज की वस्तु की आवश्यकता है, ऐसी स्थिति में विक्रेता दिए गए पते पर तत्काल संपर्क करता है।

ई–कामर्स सौदों का वर्गीकरण – ई कॉमर्स सौदों का वर्गीकरण निम्नानुसार किया जा सकता है –

	व्यापारी	उपभोक्ता
व्यापारी	बी2बी	बी2सी
उपभोक्ता	सी2बी	सी2सी

1 बी2बी यानि व्यापारी से व्यापारी अर्थात् ई–कामर्स में जो सौदा दो व्यापारियों के बीच किए जाते हैं उनहीं बी2बी सौदे कहते हैं।

2 बी2सी यानि व्यापारी से उपभोक्ता अर्थात् जो सौदे व्यापारी द्वारा सीधे उपभोक्ताओं से किए जाते हैं, उन्हें बी2सी सौदे कहते हैं।

3 सी2बी यानि उपभोक्ता से व्यापारी अर्थात् वे सौदे जो ग्राहक द्वारा व्यापारी से किए जाते हैं उन्हें उपभोक्ता से व्यापारी सौदे कहते हैं।

4 सी2सी यानि उपभोक्ता से उपभोक्ता अर्थात् जब ग्राहकों के द्वारा आपस में सौदे किए जाते हैं तो उन्हें उपभोक्ता से उपभोक्ता सौदा कहते हैं।

वर्तमान में ई–कामर्स में होने वाले सौदों में सबसे अधिक बी2बी का भाग है। एक अनुमान के अनुसार वर्तमान में ई–कॉमर्स का कारोबार 4800 करोड़ रूपए होने का अनुमान है। जिसमें 3900 करोड़ रूपये बी2बी श्रेणी का है। फारेस्टर रिसर्च इंक के द्वारा किए गए शोध के अनुसार कम्प्यूटर एवं इलेक्ट्रॉनिक्स, मोटर वाहन, पेट्रोकेमिकल्स, उपयोगिताएं, कागज एवं कार्यालय उत्पाद, उपभोक्ता माल, खाघ पदार्थ, निर्माण, फार्मास्यूटिकल्स एवं चिकित्सा उत्पाद, औद्योगिक उपकरण या आपूर्ति, शिपिंग एवं वेयर हाउसिंग, एरोस्पेस एवं रक्षा तथा भारी उद्योग का व्यापार ई–कॉमर्स के जरिये निरंतर बढ़ रहा है।

वर्तमान में ई–कॉमर्स का अधिकांश कारोबार संबंधित देश की सीमाओं के ही भीतर होता है। नेट पर दो प्रकार के सौदे होते हैं–

1 ऐसे सौदे जिनमें खोज, आदेश एवं भुगतान आदि नेट के जरिए किए जाते हैं और माल की सुपुदर्गी भौतिक रूप से की जाती है।

2 ऐसे सौदे जिनमें माल प्रायः भौतिक रूप में सुपुर्द किया जाता है लेकिन डिजिटल फार्म में भी सुपुर्द किया जा सकता है। इस श्रेणी में प्रायः मीडिया उत्पाद जैसे – फिल्म, विभिन्न प्रकार की प्रिंटेड सामग्री, विडियो गेम, कैरियर मीडिया जैसे टेप, सीडी एवं डिस्क आदि शामिल है।

ई–कॉमर्स का प्रयोग सेवा क्षेत्र में अधिक होने की संभावना है। विधिक राय, चिकित्सीय जानकारी एवं सलाह, समाचार सेवा, वित्तीय सेवाएं आदि के अंतर्गत सूनाएं इलेक्ट्रॉनिक फार्म में संप्रेरित की जाती है और भुगतान भी इलेक्ट्रॉनिक नेटवर्क के जरिये किया जाता है। एक अनुमान के अनुसार 1995 में सेवा क्षेत्रों में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार 370 मिलियन डॉलर था जो पूरे विश्व के सेवा क्षेत्र के कारोबार का 30 प्रतिशत था जो आज बढ़कर ई–कामर्स के जरिये 45 प्रतिशत का अनुमान है।

कम्प्यूटर प्रोग्रामर (Programmer)

कम्प्यूटर प्रोग्रामर मूल रूप से साफ्टवेयर निर्माण करने का कार्य करते हैं। किसी समस्या या जटिल कार्य को कम्प्यूटर के माध्यम से करने के लिए साफ्टवेयर की आवश्यकता होती है साफ्टवेयर निर्माण के लिए कम्प्यूटर निर्माण के लिए कम्प्यूटर की विभिन्न भाषाओं तथा तकनीकी ज्ञान का होना आवश्यक होता है। इसके लिए एम सी ए की शिक्षा प्राप्त करनी वांछित होती है। कम्प्यूटर की भाषाएं – COBOL, C, C+, C++, LUNIX, JAVA आदि साफ्टवेयर निर्माण एवं संचालन के लिए आवश्यक होती है।

वाणिज्य में लेखांकन कार्य को कम्प्यूटर के माध्यम से करने के लिए लोकप्रिय साफ्टवेयर – टेली, नेक, फाक्स प्रो, मुनीम जी आदि बाजार में उपलब्ध है। इसी तरह सामग्री का हिसाब –किताब रखने के लिए भी साफ्टवेयर बाजार में मिलते हैं। वर्तमान में वेट मूल्य संवर्द्धित कर के लिए भी साफटवेयर बाजार में उपलब्ध है।

इसी तरह शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश शुल्क, चंदा, दान आदि के संग्रहण से लेकर खाताबही तक का कार्य करने के लिए भी साफ्टवेयर बनते हैं।

लेखांकन के विभिन्न कार्यों के लिए आजकल साफ्टवेयर बनाने की मांग बढ़ती जा रही है ताकि मानवीय कार्य को कम्प्यूटर पर हस्तांतरित कर गति व कुशलता बढ़ाई जा सके। लेखा कार्य संबंधी साफ्टवेयर बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसे वाणिज्य के लागत लेखा, वित्तीय लेखा एवं प्रबंधकीय लेखांकन व कर निर्धारण संबंधी प्रक्रिया का ज्ञान एवं अनुभव हो।

अर्थात् वाणिज्य स्नातकों जिन्हें कम्प्यूटर भाषा एवं साफ्टवेयर बनाने का ज्ञान हो उनका भविष्य बहुत उज्ज्वल है क्योंकि रोजगार एवं स्वरोजगार के अनेक अवसर इस क्षेत्र में उपलब्ध हैं।

उद्योग क्षेत्र – स्वरोजगार
(Entrepreneurship)

भारत की अर्थव्यवस्था, औद्योगिक प्रगति की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। आज के आर्थिक परिवेश को देखें तो हम पायेंगे कि सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को नियंत्रण मुक्त कर निजी क्षेत्र को बेच रही (विनिवेश) है। सरकार दायित्व के समस्त कार्यों (केवल सुरक्षा एवं गोपनीयता को छोड़कर) का धीरे–धीरे निजीकरण कर रही है अर्थात् सरकारी नौकरी के पदों के अवसर धीरे–धीरे समाप्त हो रहे हैं। सरकार एवं स्वयंशासी संस्थाएँ अब संविदा आधारित नौकरी दे रही है।

देश की लगभग 65 करोड़ जनसंख्या 35 वर्ष से कम उम्र की है तथा 7 करोड़ युवा बेरोजगार हैं तथा प्रतिवर्ष 50 लाख युवा स्नातक बेरोजगारी की भीड़ में शामिल हो रहे हैं इन युवाओं को नौकरी की बजाय व्यापार एवं उद्योग तथा प्रोफेशनल कैरियर की तरफ प्रवृत्त होना चाहिए।

नौकरी के कम होते अवसर तथा नौकरी के प्रति कम होते आकर्षण ने समाज को आय अर्जन के नए अवसर उत्पन्न करने को प्रेरित किया है। व्यापार व उद्योग के प्रति झुकाव उत्पन्न हो रहा है। 1980 से पूर्व सामान्यतः सभी प्रकार के व्यापार एवं उद्योग बड़े पूंजीपतियों एवं पारंपरिक व्यापारिक परिवारों द्वारा ही संचालित होते थे, परंतु अब व्यावसायिक वातावरण या परिदृश्य में परिवर्तन आ चुका है और व्यापार व उद्योग की स्थापना चुनौतिपूर्ण, जोखिमपूर्ण होते हुए भी नये युवा साहसी इस क्षेत्र में अवसरों को तलाश रहे हैं।

व्यापार एवं उद्योग क्षेत्र में नए युवाओं का प्रवेश कराना, उन्हें इस हेतु प्रशिक्षित तथा प्रोत्साहित करना 'उद्यमिता कार्यक्रम' कहलाता है। इसी कारण 'उद्यमिता' को आर्थिक परिवर्तन का गतिशील एजेण्ट माना जाता है।

प्रो. उदय पारीक तथा मनोहर नाडकर्णी ने सरल शब्दों में समझाते हुए लिखा है कि ''उद्यमिता से आशय समाज में नए उपक्रम स्थापित करने की सामान्य प्रवृत्ति से है।

विभिन्न अर्थशास्त्रियों एवं प्रबन्ध विचारकों ने उद्यमिता को विभिन्न दृष्टिकोणों से परिभाषित किया है, परंतु मूल रूप से उद्यमिता में निम्न विशेषताएं सम्मिलित होती हैं –

1 जोखिम उठाने की क्षमता।

2 नव–प्रवर्तन तथा सृजनात्मक कार्य

3 व्यवसाय के अवसरों को अधिकाधिक करना।

4 उत्पादन के साधनों का संयोजन एवं संगठन करना, तथा

5 उच्च उपलब्धि प्राप्त करने की मनोवैज्ञानिक प्रेरणा से उद्योग अथवा व्यापार स्थापित करना।

उद्यमिता के स्वरूप – सामान्यतया उद्यमिता के स्वरूपों को निम्न प्रकार से बांटा जा सकता है –

अ. आकार के आधार पर

1. बड़े उद्योग – ऐसे व्यवसाय जिसमें बड़ी मात्रा में पूंजी निवेश कर वृहत् मशीनों व श्रमिकों का प्रयोग करते हुए बड़ी मात्रा में उत्पादन किया जाता है तथा प्रबंधकीय कार्यों के लिए पेशेवर प्रबंधकों को नियुक्त किया जाता है, बड़े उद्योग कहलाते हैं। यह विशेष प्रकृति के होते हैं।

2. लघु उद्योग – आत्म निर्भर या रोजगार प्राप्ति के लिए सीमित साधनों का प्रयोग करते हुए व्यवसाय की स्थापना एवं संचालन को लघु उद्योग कहते हैं। ऐसे व्यापार में पूंजी अपेक्षाकृत कम विनियोजित की जाती है तथा परिवार के सदस्य मिलकर या कुछ श्रमिकों की सहायता से स्थानीय बाजार की मांग के अनुरूप या क्षेत्रीय बाजार के अनुरूप उत्पादन किया जाता है।

ब. पूंजी स्वामित्व के आधार पर –

1. **निजी उद्यमिता** – जब व्यवसाय की जोखिम एक ही व्यक्ति द्वारा वहन की जाती है तथा पूंजी भी एक ही व्यक्ति विनियोजित करता है तो उसे एकाकी या निजी उद्यमिता कहते हैं।
2. **संयुक्त साहस उद्यमिता** – ऐसा उद्योग या व्यवसाय जिसमें सरकार निजी उद्यमियों के साथ मिलकर एक निश्चित पूंजी का विनियोजन करती है, उसे संयुक्त साहस उद्यमिता कहते हैं। सरकार ऐसा प्रयास पिछड़े क्षेत्रों में विकास करने, नए उद्यमियों को प्रोत्साहित करने, तथा आर्थिक विकास की गति तेज करने के लिए करती है।
3. **सहकारी उद्यमिता** – कुछ व्यक्तियों का समूह मिलकर, सहकारिता के उद्देश्य से उपक्रम प्रारंभ करते हैं, संचालित करते हैं, जोखिम उठाते हैं तथा रोजगार की निश्चितता का प्रयास करते हैं तो उसे सहकारिता उद्यमिता कहते हैं। महिला सहकारिता उद्यम का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण, लिज्जत पापड़ निर्माता सहकारी संघ है। दुग्ध सहकारी समिति आधारित डेयरी व्यापार, जैसे – 'सरस'।

स. नेतृत्व आधारित उद्यमिता –

1. **वैयक्तिक उद्यमिता** – ऐस उद्यम जिसमें समस्त निर्णय एक ही व्यक्ति को करने होते हैं अर्थात् व्यवसाय के प्रबंधन एवं संचालन के लिए केवल एक ही व्यक्ति उत्तरदायी होता है।
2. **समूह उद्यमिता** – ऐसा उद्यम जिसमें एक से अधिक व्यक्ति (विशेषज्ञ) मिलकर उपक्रम का प्रबंध एवं संचालन करते हैं तथा निर्णय करते हैं। कंपनी जैसे – संगठन में प्रवर्तक तथा प्रबंध मंडल विशेषज्ञ के रूप में होते हैं।

स्वरोजगार का महत्त्व–

जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में दूसरा स्थान रखने वाले विशाल 'मानव शक्ति' वाले भारत देश में अर्थव्यवस्था को विकसित करने के लिए 'स्व–रोजगार' एक सशक्त माध्यम है। विकासशील देश की प्रमुख समस्या गरीबी, बेरोजगारी, भूखमरी, निम्न जीवन स्तर, अशिक्षा से बाहर आने का उपयोगी साधन स्वरोजगार है। स्व–रोजगार के महत्त्व को निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है।

1. बेरोजगारी में कमी आती है।
2. देश की आर्थिक विकास की गति में तेजी आती है।
3. प्राकृतिक संसाधनों का बेहतर प्रयोग होता है।
4. देश में आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण होता है।
5. बड़े उद्योगों को सहायता मिलती है।
6. आधारभूत सुविधाओं के विकास का मार्ग प्रशस्त होता है।
7. आधारभूत ढांचा विकसित होता है।
8. प्रबंधकीय योग्यता एवं क्षमता का विकास होता है।
9. समाज के कमजोर वर्ग को आय का साधन उपलब्ध कराता है।
10. ग्रामीण क्षेत्र एवं ग्रामवासियों का विकास होता है।
11. गरीबी में कमी आती है।
12. आत्म निर्भर समाज की परिकल्पना का स्वप्न साकार होता है।

स्वरोजगार योजनाएं

सरकार (केन्द्र व राज्य) ने समाज में स्वरोजगार के प्रति वातावरण बनाने के लिए देश के विभिन्न क्षेत्रों में वहां की आवश्यकता एवं समाज के अनुरूप, निम्न लोकप्रिय अथवा बहुचर्चित योजनाओं का क्रियान्वयन किया है तथा अभी भी जारी है।

केवल ग्रामीण क्षेत्र के लिए

1. ग्रामीण युवा प्रशिक्षण योजना – सरकार ने ग्रामीण युवाओं का शहर की तरफ पलायन रोकने तथा हस्तशिल्प को संरक्षित करने के लिए एक प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाया है। इस व्यावसायिक प्रशिक्षण के दौरान खाने–पीने व ठहरने के लिए 3,000 रूपये का स्टाइफंड (सहायता राशि) दिया जाता है तथा प्रशिक्षण पश्चात् 'टूल किट' दिया जाता है। जिससे वे अपना स्वयं का व्यवसाय कर सकें।
2. **समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम** – मार्च 1976 से गरीबी की रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले ग्रामीण परिवारों को ऊँचा उठाने के लिए इसमें प्रशिक्षण एवं वित्तीय सहायता की व्यवस्था की गई है। यह देश की सर्वाधिक व्यापक स्तर पर चलाई जाने वाली योजना है।

3. **महात्मा गांधी रोजगार योजना** – 1989 से ग्रामीण गरीब परिवार के न्यूनतम एक सदस्य को रोजगार का अवसर प्रदान करने के लिए चलाई गई योजना है। इस योजना में सरकार पंचायत के माध्यम से अ–सामान्य निर्माण कार्य, ब– इंदिरा आवास योजना, तथा स– कुएँ योजना का संचालन करती है।

4. **मरूभूमि विकास** – मरूस्थल में भूमि की उत्पादकता बढ़ाने तथा मरूस्थल विस्तार रोकने के मार्फत रोजगार के अवसर उत्पन्न करने का कार्य किया जाता है।

केवल शहरी क्षेत्र के लिए –

1. शहरी गरीबों के लिए स्वरोजगार योजना – वर्ष 1986 से भारत सरकार ने रिजर्व बैंक के परामर्श से 10,000 से अधिक की जनसंख्या वाले कस्बों व शहरों में, बी पी एल परिवार के व्यक्तियों को अनुदान व ऋण देकर स्वरोजगार अपनाने योग्य बनाने के लिए यह योजना प्रारंभ की। इस योजना के मुख्य तत्त्व निम्न हैं –

1. शहर में न्यूनतम 3 वर्ष से निवास कर रहा हो।
2. कोई अन्य ऋण बकाया नहीं हो।
3. ऋण का 25 प्रतिशत अनुदान दिया जाता है।
4. ऋण की कोई गारंटी या जमानत आवश्यक नहीं।
5. व्यक्ति का शिक्षित होना आवश्यक है।

2. नेहरू रोजगार योजना – वर्ष 1989 से शहरी क्षेत्र में रोजगार अवसर सृजित करने के लिए नगर पालिकाओं के माध्यम से कार्य करवाने की योजना बनाई गई। जिसमें प्रति वर्ष 10 लाख रोजगार अवसर सृजित किये जाते हैं।

शहरी व ग्रामीण संयुक्त क्षेत्र के लिए

1. प्रधानमंत्री रोजगार योजना

उद्देश्य – शिक्षित बेरोजगारों को वित्तीय सहायता प्रदान करके किसी उद्योग या व्यापार की स्थापना एवं संचालन के लिए प्रोत्साहित करना प्रमुख उद्देश्य है।

कार्य क्षेत्र – यह योजना संपूर्ण देश में 10 लाख की जनसंख्या से कम आबादी वाले सभी जिलों में लागू की गई।

नॉडल एजेन्सी – यह योजना प्रत्येक जिले में स्थित 'जिला उद्योग केन्द्र' द्वारा संचालित की जाती है। जिसमें बैंकों की सहायता से ऋण प्रदान करवाया जाता है।

इस योजना की मुख्य बातें निम्न हैं–

1 व्यक्ति न्यूनतम मेट्रिक पास होना आवश्यक है।
2 जिला उद्योग केन्द्र पर बनी समिति द्वारा व्यक्तियों (उद्यमियों) का चयन एवं उन्हें प्रशिक्षण दिया जाता है।
3 बैंकों को ऋण हेतु सिफारिश की जाती है।
4 ऋण उद्योग के लिए 1 लाख व व्यापार के लिए 75,000 तक स्वीकृत किया जाता है।
5 ऋण का पुनर्भुगतान 3 से 7 वर्ष तक की अवधि में किया जाता है।
6 ऋण की किस्ते 18 महीने बाद प्रारंभ होती है।

नोट – यह योजना पूर्व में संचालित 'शिक्षित बेरोजगारों के लिए स्वरोजगार योजना 1983' का विलय करके वर्ष 1993 में प्रारंभ की गई।

उपरोक्त योजनाओं का अध्ययन करने से पता चलता है कि उद्यमिता विकास के लिए निम्न स्तर पर प्रयास किये जा रहे हैं –

सरकारी स्तर पर	–	वातावरण बनाने एवं प्रोत्साहित करने का प्रयास
शैक्षणिक संस्था स्तर पर	–	स्कूल व कॉलेज में स्वरोजगार हेतु मानसिकता बनाने का प्रयास।
वित्तीय संस्था स्तर पर	–	स्वरोजगार हेतु बिना जमानत आसान शर्तों पर ऋण उपलब्ध कर पूंजी सहायता का प्रयास
		उद्यमिता विकास संस्था बड़े उद्योगों की स्थापना हेतु प्रशिक्षण एवं इस क्षेत्र में
स्तर पर	–	शोध तथा प्रशिक्षक तैयार करने के प्रयास।

राजस्थान में उद्यमिता के प्रयास

राजस्थान में सीकर व मारवाड़ क्षेत्र के व्यापारियों व उद्यमियों की देश में अधिक प्रतिष्ठा है। आज विश्व के तीसरे सबसे धनी व्यक्ति श्री लक्ष्मी मित्तल भी राजस्थान के ही हैं। प्राकृतिक एवं भौगोलिक विषमता के कारण मारवाडी व्यापारी अथवा उद्यमियों ने संपूर्ण भारत को कर्मस्थली बनाया। आज पूरे भारत में मारवाड़ी व्यवसायी मौजूद है। राजस्थान सरकार ने राजस्थान में ही रोजगार के अधिक अवसर उत्पन्न करने तथा उद्यमिता विकास के लिए निम्न महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं –

1 रीको की स्थापना
2 राजस्थान वित्तीय निगम की स्थापना।

3 बीमार इकाइयों को सहायता

4 महिला उद्यमी प्रशिक्षण

5 हस्तशिल्प उत्सव एवं मेले का आयोजन

6 एकल खिड़की निस्तारण योजना

7 अन्तर्राष्ट्रीय राजस्थानी सम्मेलन आयोजन

8 आर्थिक विकास बोर्ड का गठन।

किसी भी उद्यमी को नया उद्योग प्रारंभ करने तथा कुशलतापूर्वक संचालन करने के लिए व्यवसायिक अवसरों की खोज करना, व्यावसायिक अवसर की व्यवहारिकता की जांच अथवा मूल्यांकन करना, सामान्य योजना एवं परियोजना निर्माण करना, वित्त व्यवस्था के प्रयास एवं स्रोत ढूंढना, व्यवसाय प्रारंभ संबंधी वैद्यानिक औपचारिकताएं पूरी करना, व्यवसाय प्रारंभ करना आदि के कदम उठाने पड़ते हैं।

सारांश :

वाणिज्य विषय समाज एवं समाज की प्रत्येक गतिविधि से जुड़ा हुआ है। इसलिए समाज प्रगति की किसी भी दिशा में आगे बढ़े वाणिज्य उसके साथ रहेगा तक्का उसी की सहायता से प्रगति करेगा। समाज की आर्थिक उन्नति के लिए कृषि उद्योग या सेवा क्षेत्र किसी भी क्षेत्र में आगे बढ़े, प्रत्येक में वाणिज्य का उपयोग अपरिहार्य है।

समाज में गुणवत्ता, विशेषज्ञता एवं मूल्य नियंत्रण के प्रति चिंतन बढ़ा है। सामाजिक दायित्व तथा पारदर्शिता का विचार गति पकड़ रहा है। ये समस्त बातें पेशेवर ज्ञान व कुशलता को बढ़ावा देता है जिससे वाणिज्य में भी पेशेवर व कुशल व्यक्तियों CA, CS, MBA, MBC, ICWA, की मांग निरंतर बढ़ रही है।

बढ़ती आर्थिक सम्पन्नता से व्यक्तियों की क्रय शक्ति बढ़ रही है, शिक्षा का स्तर बढ़ रहा है, जीवन स्तर में वृद्धि हो रही है जिसके परिणामस्वरूप उपभोक्ता बाजार (रिटेलिंग) व सेवा बाजार में निरंतर प्रगति व विस्तार हो रहा है जिसमें वाणिज्य स्नातकों की मांग निरंतर बढ़ रही है।

कम्प्यूटर एवं संचार क्रांति ने वाणिज्य को वैश्विक स्तर पर समानता व एकरूपता में बदल दिया है। जिससे अब रोजगार के अवसर सीमित सीमा से बाहर निकलकर वैश्विक हो गये हैं। अर्थात् वाणिज्य में रोजगार के अनगिनत अवसर उपलब्ध हैं।

सेवा क्षेत्र में रोजगार के अवसर – सेवा क्षेत्र का व्यापार तेज गति से बढ़ रहा है। जिसमें बैंक, बीमा, उपभोक्ता, बाजार, पूंजी बाजार तथा कॉल सेंटर क्षेत्र में विविध कार्यों तथा विक्रय संवर्द्धन के लिए रोजगार के अनेक अवसर उत्पन्न हो रहे हैं। कम्प्यूटर एवं दूर संचार ने सेवचा व्यापार को व्यापक बना दिया है।

प्रशासनिक क्षेत्र में रोजगार के अवसर – सरकारी विभागों, सार्वजनिक उपक्रमों, स्वयंशासी संस्थाओं एवं संयुक्त उपक्रमों में सरकारी पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हुए कोष के सद्–उपयोग, नियंत्रण एवं अंकेक्षण कार्य के लिए रोजगार के अनेक अवसर हैं।

तकनीकी क्षेत्र में रोजगार – वाणिज्य की जानकारी के साथ कम्प्यूटर भाषा का ज्ञान होने पर लेखांकन एवं अंकेक्षण क्षेत्र में प्रोग्रामर, सूचना प्रबंधक या ई–कामर्स के अवसर उत्पन्न हो गए हैं।

स्व–रोजगार या उद्यमिता – वैतनिक रोजगार से हटकर स्वयं का व्यापार लगाकर लाभ कमाने या उपलब्धि प्राप्त करने के लिए स्वयं का उद्योग लगाकर रोजगार प्राप्ति के अनेक विकल्प मौजूद रहते हैं, तथा प्रारंभिक अवस्था में सरकार की कई योजनाएं प्रोत्साहित करती हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न–

1 रिटेलिंग का संबंध किस बाजार से है?

अ– स्कंध बाजार ब–मुद्रा बाजार

स–उपभोक्ता बाजार द– उपरोक्त सभी

2 सॉफ्टवेयर क्या होता है?

अ– खिलौना ब– मशीन

स– समस्या निपटान कार्य प्रणाली

द– विशेष प्रकार का वस्त्र

3 बीमा एजेन्ट बनने के लिए प्रशिक्षण किस संस्था से प्राप्त करना होता है?

अ– व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थान से

ब– विश्वविद्यालय से

स– बीमा नियामक प्राधिकरण से

द– कम्प्यूटर प्रशिक्षण संस्था से

4 दावों की क्षतिपूर्ति हेतु साधारण बीमा व्यापार कंपनी किसको नियुक्त करती है?

अ– सर्वेयर ब– एजेन्ट

स– एकच्यूरी द–विकास अधिकारी

5 जीवन बीमा में जोखिम दायित्व की गणना करता है –

अ– एजेन्ट ब– एकच्यूरी

स–लेखाधिकारी द– सर्वेयर

6 कॉल सेंटर के माध्यम से अधिकतम कार्य होता है–

अ– उपभोक्ता के प्रश्नों का उत्तर देना

ब– विक्रय वृद्धि हेतु उपभोक्ताओं से संपर्क कराना।

स – उपभोक्ता की समस्याओं का निदान करना।

द–उपरोक्त सभी

7 कहीं भी बैंकिंग विचार के प्रादूर्भाव का आधार है–

अ– कोर कम्प्यूटर प्रणाली

ब– ए टी एम मशीन

स– कार्ड प्रणाली

द– संगठन संरचना

8 स्व–रोजगार हेतु बैंक, राज्य एवं केन्द्र सरकार की तरफ से कार्यरत ''नॉडल एजेंसी'' है–

अ– सहकारी बैंक ब– जिला उद्योग केन्द्र

स– जिला विकास अभिकरण स– कोई नहीं

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1 ई–कॉमर्स का अर्थ बताइये।

2 उद्यमिता की परिभाषा दीजिए।

3 सेवा क्षेत्र में आने वाले व्यापार के चार नाम लिखिए।

4 राजस्थान की प्रशासनिक सेवाओं में भर्ती प्रक्रिया का निष्पादन करने वाले कार्यालय का नाम लिखिए।

5 म्यूच्यूअल फंड को परिभाषित कीजिए।

6 लेखांकन साफ्टवेयर के चार नाम बताइये।

7 बीमा व्यवसाय के प्रकार बताइये।

8 उद्यमिता विकास हेतु जिला स्तर पर कार्यरत विभाग का नाम बताइये।

9 पी एम आर वाई योजना का पूरा नाम बताइये।

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1 बीमा व्यवसाय में 'एकच्यूरी' का कार्य बताइये।

2 बैंक के 'कहीं भी बैंक'' का अभिप्राय समझाइये।

3 उपभोक्ता बाजार (रिटेलिंग) के वर्ग बताते हुए संभावित व्यापार के चार नाम बताइये।

4 सरकार द्वारा लेखा, कोष नियंत्रण एवं अंकेक्षण हेतु कार्यरत विभाग का नाम बताते हुए नियुक्त किये जाने वाले कर्मचारियों व अधिकारियों का वर्णन कीजिए।

5 ई–कामर्स लेन–देन का अभिप्राय समझाइये।

6 जिला उद्योग केन्द्र के कार्य बताइये।

7 कॉल सेंटर में प्रयुक्त होने वाले उपकरण बताइये।

8 आउट सोर्सिंग का अभिप्राय समझाइये।

निबंधात्मक प्रश्न–

1 ई–कॉमर्स का अर्थ बताते हुए लेन–देनों का वर्गीकरण एवं प्रक्रिया समझाइये।

2 कॉल–सेंटर क्या है?इसके कार्यों का वर्णन करते हुए भारत के परिप्रेक्ष्य में इसका महत्व समझाइये।

3 प्रशासनिक क्षेत्र में उपलब्ध रोजगार संभावनाओं को स्पष्ट करते हुए इनकी व्याख्या कीजिए।

4 स्व–रोजगार को समझाते हुए इसके विकास की विभिन्न योजनाओं का वर्णन कीजिए।

5 सेवा क्षेत्र में रोजगार संभावनाओं पर लेख लिखिए

6 उपभोक्ता बाजार के संभावित व्यापार अवसरों का वर्णन कीजिए।

उत्तर –

1.(स) 2.(स) 3.(स) 4.(अ) 5.(ब) 6.(द) 7.(अ) 8.(ब)

अध्याय– 11

भ्रमण एवं पर्यटन प्रबन्ध
Tour & Travel Mangement

प्रत्येक व्यक्ति रोजमर्रा का नियत कार्य एक समान परिस्थितियों में करते–करते थक जाता है या उसे ऊबाउपन महसूस होने लगता हैं। उस थकान से उसकी कार्य के प्रति रूचि कम होने लगती है, उदासीन हो जाता है अर्थात् कार्यक्षमता भी घटती है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति कार्य को मन से , पूर्णक्षमता से करते रहने के लिए कुछ अन्तराल पर नियत वातावरण से हटकर अपना मन बहलाना अथवा मनोरंजन करना चाहता है, ताकि वापस तरोताजा होकर स्फुर्ति से अपना कार्य ढीक से कर सकें। उदाहरण के लिए जब हम पढते –पढते थक जाते है तो थोड़े समय के लिए कहीं टहलकर, खेलकर, नाश्ता करके, संगीत सुनकर पुनः पढ़ाई करने बैठते है तो ताजगी एवं स्फुर्तिदायक महसूस करते है। ठीक उसी तरह प्रत्येक व्यक्ति, परिवार या समुह दैनिक जीवन के कार्य दबाव या ऊबाउपन को दूर करने के लिए कुछ समय के लिए परिवर्तन चाहता है उसके लिए वह अपने नियत स्थान से हटकर कहीं आसपास या दुरस्थ स्थान पर घुमने जाता है इसे ही भ्रमण या पर्यटन कहते हैं। कुछ व्यक्ति ज्ञान प्राप्ति के लिए या विचारों का विस्तार करने के लिए पूरे राष्ट्र या विश्व के अधिकतम राष्ट्रों का भ्रमण करते है तो उन्हें **परिव्राजक** कहते है, जैसे –स्वामी विवेकानन्द। घर/गाँव/देश से बाहर रोजगार ,व्यापार कि लिए जाने पर उसे **देशावर** या विदेश जाना कहते है। किन्तु आनन्द/अनुभव या आत्मिक सुख के लिए की गई यात्रा को पर्यटन कहते है। लेकिन परिस्थितियों से बचकर अस्तित्व व सन्तति को बचाये रखने के लिए की गई यात्रा को **'प्रवास'** कहते हैं। जैसे ठण्डे प्रदेशों में अत्यधिक ठण्ड की दशा में पक्षी कुंरजा भी कुछ समय के लिए राजस्थान में प्रवास करते हैं। भारत के लद्दाख क्षेत्र के बांशिदें सर्दी प्रारम्भ होने पर 3–4 माह के लिए अन्यत्र प्रवास करते है। कुछ व्यक्ति, परिवार या समुह मन बहलाने के लिए कुछ अन्य कार्य –ज्ञानवर्द्धन, अनुभव संयोजन,संबन्ध विस्तार, आध्यात्मिक आनन्द, स्वास्थ्य लाभ, प्रशिक्षण, शोध कार्य करते हुए आनन्द लेना चाहते है। इन कारणों से भ्रमण/पर्यटन का अर्थ और व्यापक हो जाता है।

पर्यटन का सामान्य अर्थ एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमने जाने या यात्रा करने से लगाया जाता है। यात्रा करने या बाहर जाने की क्रिया भारत की सांस्कृतिक धरोहर में सनातन काल से रही है। संस्कृत में तीर्थ शब्द से तात्पर्य कुछ समय के लिए घर छोड़कर बाहर जाने से लगाया जाता है जिसके लिए यात्रा के उद्देश्यानुसार निम्न शब्दावली (Terms) का प्रयोग किया जाता है।

(अ) पर्यटन– रोमाचं, आराम, मौजमस्ती, आनन्द के साथ कुछ नया अनुभव करने के लिए घर से बाहर घूमने जाना या यात्रा करना।

(ब) देशाटन– आर्थिक क्रियाओं, व्यापार व रोजगार के लिए दूसरे देश–प्रदेश में जाना। राजस्थान के कई भागों में इसे 'देशवार' के नाम से जाना जाता है।

(स) तीर्थाटन– आध्यात्मिक सुख एवं भक्ति भाव से ओत–प्रोत होकर सनातन संस्कृति के तहत प्रतिष्ठित धार्मिक स्थलों की यात्रा को तीर्थ या तीर्थाटन कहते है। जैसे– चार धाम की यात्रा, अमरनाथ यात्रा।

पर्यटन/भ्रमण के उद्देश्य (Objectives of Tour & Travel)

1. लम्बे समय तक एक ही स्थान पर रहने से हो रही 'उदासीनता को समाप्त कर पुनः स्फुर्त होने हेतु' अन्यत्र जाना ।
2. कुछ विशेष करने के लिए रोमांचक यात्रा करना जिसमें जंगलों, पर्वतों एवं दुर्गम्य स्थलों की यात्रा करना ।
3. ज्ञान एवं अनुभव की प्राप्ति के लिए अन्यत्र भ्रमण करना।
4 विचारों एवं धर्म के प्रसार–प्रचार के लिए यात्राएँ, जैसे बौद्ध एवं ईसाई धर्म के धर्म गुरूओं द्वारा की गई यात्राएँ।
5. व्यापार एवं जीविकोपार्जन के लिए यात्राएँ , जैसे–व्यापारिक सम्मेलन, मेले, प्रदर्शनी में भाग लेना।
6. राजनैतिक विचारों ,सघर्षों एवं सत्ता प्राप्ति के लिए यात्राएँ जैसे– गाँधी जी द्वारा भारत भ्रमण, नमक आन्दोलन,स्वामी विवेकानंद द्वारा भारत यात्रा,आडवाणी की रथ यात्रा।
7. शिक्षा की प्राप्ति के लिए दूर प्रदेशों में जाना,जैसे प्रतिष्ठित

विश्वविद्यालयों में अध्ययन के लिए दूर देशों में शिक्षा ग्रहण हेतु जाना इत्यादि।

द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व की उपर्युक्त सभी प्रकार की यात्राएँ बहुत कम स्व–प्रेरणा से होती थी क्योंकि यात्रा करने के साधनों का अभाव था। यात्रा पैदल या पशुओं की सहायता से होती थी, कई समस्याओं का सामना कराना पड़ता था तथा लम्बी अवधि तक यात्रा करने पर गन्तव्य स्थान प्राप्त होता था। असुरक्षा एवं जोखिम भी ज्यादा थी अर्थात् यात्राएँ करना बहुत कठिन व कठोर कार्य होता था। इसी कठोरता के कारण फ्रेंच शब्द Travail जिसका अर्थ कठोर होता है, से ही Travel शब्द 'यात्रा' की व्युत्पत्ति हुई। यद्यपि परिवहन के आधुनिक साधनों , सेवा व्यापार एवं संचार तंत्र से यात्राएँ आसान, सुरक्षित एवं अधिक सुविधाजनक हो गई हैं। यात्रा एवं पर्यटन शब्द में अन्तर होते हुए भी व्यवहार में संयुक्त रूप से (Tour & Travel) प्रयुक्त होते हैं।

विश्व पर्यटन संगठन (WTO) के अनुसार पर्यटन की सर्वमान्य परिभाषा निम्नलिखित है–

'पर्यटन' के अर्न्तगत व्यक्तियों की वे गतिविधियाँ सम्मिलित हैं जो उनके दैनिक वातावरण अथवा परिवेश से बाहर जाकर यात्रा एवं विश्राम करते हुए सम्पन्न की जाती हैं। ये यात्राएँ आराम के क्षण मनोरंजन ,वाणिज्य–व्यापार तथा अन्य प्रयोजनों की सिद्धि के लिए एक वर्ष के भीतर निरन्तर गति से होनी चाहिए।' (W.T.O. 1993)

उपर्युक्त परिभाषा का विश्लेषण करने पर पर्यटन के निम्न लक्षण प्रकट होते हैं–

1. पर्यटन लोगों के अपने निवास स्थान से अन्यत्र गंतव्य स्थान की ओर जाने से प्रारम्भ होता है।
2. पर्यटन में दो तत्वों का समावेश होता है – प्रथम –यात्रा व दूसरा, ठहरना / रूकना
3. यात्रा एवं विश्राम सामान्य निवास एवं कार्य स्थल से बाहर होता है।
4. गन्तव्य स्थल की यात्रा कुछ दिनों पश्चात् पुनः निवास स्थान पर लौटने की चेष्टा से ही की जाती है अर्थात् यात्री के गन्तव्य स्थल पर न्यूनतम 24 घण्टे व अधिकतम 6 माह तक रूकने की अपेक्षा की जाती है।
5. गन्तव्य स्थल (पर्यटन स्थल) की यात्रा रोजगार प्राप्ति या स्थायी निवास के अतिरिक्त किसी अन्य उद्देश्य से की जाती है।

अन्ततः पर्यटन मन बहलाने के लिए की जाने वाली क्रिया है जिसमें व्यक्ति अपने आराम अथवा फुर्सत के क्षणों का अपने समय एवं बजट के अनुरूप स्वैच्छिक तरिके से व्यतीत करता है जिसमें आनंद एवं अनुभव की पूर्ति से वह पुनः ताजगी (Refresh) महसूस करता है।

पर्यटन के प्रकार (Types of tourism)

1. **मनोरंजनात्मक पर्यटन (Recreational Tourism)** इसमें वो पर्यटक या यात्री जो आराम व परिवर्तन की इच्छा के साथ ऐसे स्थान पर भ्रमण के लिए जाता है जहाँ शुद्ध पर्यावरण, शान्ति हो एवं मन बहलाने के लिए खेल–कूद व अन्य सुविधाएँ हों, जिससे मानसिक एवं शारीरिक थकान दूर हो सके।
2. **सांस्कृतिक पर्यटन (Cultural Tourism)** – पर्यटक अथवा यात्री जो नई जीवन संस्कृति देखने व जानने के लिए यात्रा करता है, जैसे – लोक नृत्य, कला, चित्रकारी, शिल्पकारी,आदि। अधिकतम विदेशी भारत की यात्रा इसी ध्येय से करते है।
3. **ऐतिहासिक पर्यटन (Heritage Tourism)** – इसमें पर्यटक मानव निर्मित दिव्य व भव्य इमारतों, पुरातत्व स्मारक, ऐतिहासिक दुर्ग, हवेलियाँ, मन्दिर, चर्च, मस्जिद एवं संग्रहालय देखने के लिए यात्रा करते है। जैसे– ताजमहल, हवामहल, रणथम्भौर, मेहरानगढ़ आदि।
4. **पारिस्थितिक पर्यटन (Eco Tourism)** – इसमें पर्यटक सुदुर प्राकृतिक स्थलों की पारिस्थितिक, वन्य जीवन तथा विविधता को देखने व जानने की इच्छा से यात्रा करता है। जैसे– जैसलमेर, कश्मीर–लद्दाख एवं केरल की यात्रा पारिस्थितिक (पर्यटन) में आता है।
5. **साहसिक अथवा जीवट पर्यटन (Adventurous Tourism)** – इसमें पर्यटक पर्वतारोहण जैसे साहसिक प्रयास करते हैं या साईकिल पर विश्व भ्रमण या कार रैली द्वारा भ्रमण करते है।
6. **मानवजातीय / ग्रामीण पर्यटन (Ethnical/ Rural Tourism)** – इसमें किसी अनजान स्थान की मानव जाति का अध्ययन करने के लिए या अपने पूर्वजों के पैतृक स्थान को जानने व देखने के लिए की गई यात्रा को सम्मिलित किया जाता है।
7. **धार्मिक पर्यटन (Religious Tourism)** – विभिन्न सम्प्रदाय, पन्थ एवं धर्मों के पवित्र स्थानों या पूजा स्थलों की यात्रा को धार्मिक पर्यटन कहते हैं। जैसे–ईसाइयों का वेटिकन सिटी जाना, मुस्लिमों की मक्का–मदिना यात्रा एवं हिन्दुओं की चार–धाम यात्रा, अमरनाथ व कैलाश पर्वत यात्राएँ आदि।

8. **चिकित्सा व स्वास्थ्य संवर्द्धन पर्यटन (Medical & Wellness Tourism)** – अविकसित राष्ट्रों के कई नागरिक अपने स्वास्थ्य सम्बन्धी उपचार एवं निरीक्षण के लिए विकासशील देशों में जाना पसन्द करते हैं क्योंकि वहाँ विकसित राष्ट्र की तुलना में खर्च कम होता है। विकसित देशों के भी मध्यम एवं निम्न आय वर्ग के व्यक्ति इन विकासशील देशों में पर्यटन के साथ–साथ अपने स्वास्थ्य सुधार के लिए भी यात्रा करते है। विशेषकर भारत के योग, ध्यान एवं मालिश के अलावा शल्य चिकित्सा के माध्यम से पर्यटन विकसित हो रहा है।

9. **खेलकूद पर्यटन (Sports Tourism)** – कई देशों ने पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए विभिन्न प्रकार के खेलों का आयोजन प्रारम्भ किया है। कई पर्यटक खेलकूद प्रतियोगिताओं में हिस्सा लेने के लिए अथवा दर्शक के रूप में उपस्थित रहते हुए उन देशों की यात्रा करते हैं जहाँ इस प्रकार का आयोजन होता है, जैसे– गुजरात में हुई पतंग प्रतियोगिता, ओलम्पिक, वर्ल्ड कप आदि।

10. **विवाह पर्यटन (Wedding Tourism)**– प्रतिष्ठित व्यक्ति या व्यावसायिक समूह अपने जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का आयोजन समारोह के रूप में लोकप्रिय पर्यटन स्थल पर करने लगे है। जन्मदिवस, विवाह की वर्षगांठ रजत या स्वर्ण जयंति पर आयोजक अपने परिचितों को स्थान विशेष पर एकत्र कर उस उत्सव या घटना को यादगार बनाने के लिए ऐसा करते है जैसे– जोधपुर के उम्मेद भवन में आयोजित रिलायंस समूह की नीता अंबानी का जन्म दिवस आयोजन या अन्तर्राष्ट्रीय फिल्मी सितारे लिज हर्ले और नायर का विवाह समारोह आदि।

11. **वन्य जीव पर्यटन (Wild Life Tourism)**– प्रकृति की सुन्दरता व जंगल में रहने वाले जीव जन्तुओं से प्रेम करने वाले प्रकृति प्रेमी विभिन्न राज्यों/देशों में संरक्षित अभयारण्य, पार्क या सफारी का भ्रमण करने जाते है, जैसे– सरिस्का, केवलादेव या रणथम्भोर अभयारण्य।

पर्यटकों के प्रकार
(Types of Tourists)

पर्यटन से सम्बन्धित सभी यात्रियों को दर्शक या प्रेक्षक अथवा पर्यटक (Tourist) की संज्ञा दी जाती है। 'पर्यटक' से आशय उस व्यक्ति से है जो अपने निवास स्थान को छोड़कर अन्य स्थान, अन्य प्रदेश या अन्य देश की यात्रा करता है।

1. **स्थानीय पर्यटक** – अपने ही निवास के आस–पास विभिन्न दर्शनीय, मनोरंजन स्थलों का अवलोकन एवं भ्रमण करने वाला स्थानीय पर्यटक (Local Tourist) कहलाता है।(बशर्ते वह उस स्थान पर न्यूनतम 24 घण्टे ठहरे)

2. **घरेलू अथवा राष्ट्रीय पर्यटक**– अपने ही राष्ट्र में निवास स्थान के अतिरिक्त राज्य या देश के भीतर किसी अन्य स्थान पर भ्रमण करने वाला यात्री घरेलू पर्यटक (Domestic Tourist) या परदेशी कहलाता है।

3. **अन्तर्राष्ट्रीय अथवा विदेशी पर्यटक**– किसी एक देश के निवासी द्वारा अन्य देश अथवा देशों की यात्रा या भ्रमण करने वाला विदेशी या अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटक कहलाता है। इसमें पासपोर्ट एवं उस राष्ट्र (मेजबान राष्ट्र) की सरकार की अनुमति (Visa) प्राप्त करना आवश्यक होता है।

4. **स्वतंत्र पर्यटक** –युवा पर्यटक अकेले या जीवन साथी के साथ अकेले युगल के रूप में ही यात्रा अथवा भ्रमण करना पसन्द करते हैं। यात्रा की आवश्यक व्यवस्थाएँ भी वो स्वयं ही करते हैं। वो अपनी सम्पूर्ण यात्रा में स्वतन्त्र यात्री अथवा पर्यटक (Free Individual Tourist: FIT) के रूप में रहते हैं।

5. **समूह पर्यटक** – कुछ लोग समूह में यात्रा करना पसन्द करते है। यात्रा की सम्पूर्ण व्यवस्थाएँ भी उनके लिए सामूहिक रूप से की जाती है जिसमें उनको विभिन्न स्थानों पर व्यवस्था व्यय में छूट मिलती है, सुरक्षा भाव भी रहता है। जापान एवं भारत के लोग सामान्यतः समूह में यात्रा या भ्रमण करते है। जिन्हें बोलचाल की भाषा में पैकेज टूर (Package Tour) कहा जाता है। पर्यटकों के औपचारिक एवं अनौपचारिक समूह के स्वरूप निम्न हो सकते हैं–

1) मित्र मण्डली अथवा समूह (Friend Circles)
2) पारिवारिक समूह (Family Groups)
3) विद्यार्थी समूह (Students Groups)
4) युगल समूह (Couple Groups)
5) राजनैयिक समूह (Diplomats Groups)
6) अध्ययन समूह (Study Groups)

6. **व्यावसायिक पर्यटक**– कुछ व्यापारी या उद्योग समूह अपने व्यापार को बढ़ाने के लिए अन्य राज्य या देश में यात्रा कर प्रदर्शनी लगाते है या वहाँ के व्यापारियों के साथ बैठके करते है।

पर्यटन के संघटक/उत्पाद
(Components/Products of Tourism)

पर्यटन उत्पाद– यह ऐसा उत्पाद है जो पर्यटन स्थल पर घूमने आए पर्यटक को प्रस्तुत किया जाता है। ऐसे उत्पाद घर से

बाहर भी फुर्सत के क्षणों में यात्री की सुख सुविधा, भोग–विलास, धार्मिक व व्यावसायिक इच्छा या आवश्यकता की पूर्ति करते है।

पर्यटन उत्पाद ही पर्यटक द्वारा यात्रा का गन्तव्य स्थल निर्धारित करने में मुख्य भूमिका निभाते है। इनकी विविधता सहज उपलब्धता, लागत व गुणवत्ता पर्यटक के निर्णय को अत्यधिक प्रभावित करते है। पर्यटन उत्पाद, एक सेवा उत्पाद के रूप में ,ग्राहक (पर्यटक) द्वारा यात्रा प्रारम्भ करने ,यात्रा के दौरान व पुनः घर लौटने तक प्रयुक्त किया जाता है।

जब भी हम कहीं घूमनें जाने की योजना बनातें है तो सहज ही कुछ प्रश्न खड़े होते है जैसे–कैसे जायेगें (परिवहन साधन), कहाँ ठहरेगें (आवास सुविधा), वहाँ क्या खायेगें (रेस्टोरेन्ट), क्या देखेगें (रमणीयता, संग्रहालय, इमारतें, धार्मिक स्थल), क्या मिलता है (बाजार), क्या सुविधा है (ATM, Wi-Fi, Hospital, Metro),क्या करेगें (थीम पार्क, खेल–कुद, मनोरंजन, रोमांच आदि) इन प्रश्नों के उत्तर से ही सम्भवतः यात्रा का गन्तव्य स्थल या पर्यटन स्थल तय होता है और यह उत्तर ही पर्यटन उत्पाद है।

पर्यटन उत्पाद प्रकृति, समाज एवं व्यापारिक इकाईयों द्वारा दी जाने वाली अन्तःनिर्भर सेवाओं के मिश्रण से उत्पन्न कारखाने में निर्मित नहीं होते है यह स्थान विशेष की प्राकृतिक–भौगौलिक, सामाजिक–सास्कृजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक विशेषताओं एवं मानव निर्मित आधुनिक सुख–सुविधाओं, मनोरंजन या रोमांचक गतिविधियों, व्यापारिक क्रियाओं एवं भोग–विलास के केन्द्र पर निर्भर करते है।

पर्यटन उत्पाद को अन्य भौतिक उत्पाद की तरह देखा या तुलना नहीं की जा सकती है इसका केवल पर्यटक द्वारा, प्रस्तावित सेवाओं में से चयनित सेवाओं के उपभोग एवं उससे प्राप्त सुख के आधार पर ही, मूल्यांकन किया जा सकता है। पर्यटक (ग्राहक) की टिप्पणी आनन्दित हुआ अथावा नहीं से ही पर्यटन उत्पाद का मूल्याकन सम्भव है।

पर्यटन के स्रोत या संसाधन ही पर्यटन उत्पाद का सृजन करते है। पर्यटन उत्पाद के सृजन को प्रभावित करने वाले आवश्यक तत्व संघटक कहलाते है। पर्यटन संसाधान/स्रोत व संघटक पर्यटन उत्पादों की प्रकृति व विविधता को प्रभावित करते है। पर्यटन के संघटक निम्न है–

1. परिवहन (Transport)
2. स्थल का आकर्षण (Locale)
3. आवास अथवा होटल (Accommodation)
4. मनोरंजन की विविधता एवं रेस्टोरेन्ट (Fun n food)
5. वित्त व्यवस्था (Finance)
6. वीजा (Visa)
7. ट्रेवल एजेन्सियाँ (Travel Agency)

1. परिवहन– परिवहन सुविधा एक महत्वपूर्ण घटक है इसके बिना यात्री गंतव्य स्थान पर नहीं पहुँच सकता है। परिवहन साधन एवं सुविधा जितनी अधिकतम एवं तीव्र होगी पर्यटकों की आवाजाही उतनी ही तीव्र हो जायेगी। अतः पर्यटन के लिए सर्वप्रथम सुगम परिवहन व्यवस्था आवश्यक है।

2. स्थल का आकर्षण– पर्यटकों द्वारा भ्रमण के लिए स्थान चयन में स्थल के आकर्षण जैसे–ऐतिहासिक इमारतें, उद्यान–अभयारण्य, प्राकृतिक दृश्य, रमणीयता, मानव निर्मित विशेष स्थल, संग्रहालय तथा मेजबानों द्वारा यात्रियों के लिए कोई विशेष लाभ, रियायतें आदि निर्णय में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। लोग उसके अनुरूप पर्यटन स्थल का चयन करते हैं।

3. आवास अथवा होटल– यात्रियों अथवा पर्यटकों के लिए गंतव्य स्थल पर पहुँचनें के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण है आराम–विश्राम के लिए आवास सुविधा। विभिन्न पर्यटकों की आवश्यकता के अनुरूप उस स्थान पर ठहरने की सुविधा जैसे सितारा होटल, बजट होटल, क्लब हाउस, यूथ होस्टल या पेईंग गेस्ट हाउस आदि महत्वपूर्ण होती है।

4. मनोरंजन की विविधता एवं रेस्टोरेन्ट– मन बहलाने मौज –मस्ती करने तथा विविध व्यजनों का रसास्वादन करने के लिए विविध प्रकार के भोजनालय, रेस्टोरेन्ट, कैसीनो, एम्युजमेन्ट पार्क, थीम पार्क, क्लब, म्युजिकल शो आदि की उपलब्धता पर्यटन को आकर्षक बनाता है।

5. वित्त व्यवस्था– पर्यटन में बहुत धन व्यय होता है जिसे सामान्यतः व्यक्ति अपनी बचत में से खर्च करता है किन्तु समय के साथ आये वैचारिक व व्यवसायिक बदलाव के कारण अब बचत की आवश्यकता नहीं है। कई टूर एण्ड ट्रेवल कम्पनियाँ पर्यटन के खर्च को ऋण के रूप में व्यवस्था कर आपसे मासिक किश्त (EMI) के रूप में वसूल करते हैं। इसी प्रकार का दूसरा स्वरूप क्लब की सदस्यता ग्रहण कर सदस्यता शुल्क के रूप में पर्यटन के व्यय का पुनर्भरण किया जाता है।

6. वीजा नियम– अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन में मेजबान राष्ट्र की अनुमति (वीजा) आवश्यक होती है। इस वैश्विक युग में प्रत्येक राष्ट्र अपने आर्थिक विकास के लिए पर्यटकों द्वारा होने वाली आय, व्यापार से आकर्षित होकर विभिन्न राष्ट्रों के बीच सन्धि–समझौते कर पूर्व अनुमति की शर्त समाप्त कर रहे है। वर्तमान में विश्व के

अधिकतर राष्ट्रों में अब उस देश की धरती पर पहुँचते ही कुछ दस्तावेजों के आधार पर तुरन्त वीजा (Visa on arrival) दे दिया जाता है।

7. ट्रेवल एजेन्सियाँ एवं टूर ऑपरेटर – पर्यटक को घर से बाहर गंतव्य स्थल तक जाने व पुनः लौटकर आने तक जो भी आवश्यकताएँ है उनकी उपलब्धता समय पर, कम लागत में निश्चित रूप से प्रदान करने की जिम्मेदारी ये टूर ऑपरेटर व ट्रेवल एजेन्सी लेती है। जैसे– make my trip, SOTC, cocks & kings आदि।

पर्यटन के लिए उपर्युक्त घटकों का होना अनिवार्य है। इनके अभाव में पर्यटन अथवा यात्रा सम्भव नहीं होती है। इसके अतिरिक्त पर्यटन को बढ़ाने अर्थात् किसी स्थल को पर्यटकों के अनुकूल (पसन्द) बनाने में अन्य निम्न तत्व भी समान महत्त्व रखते हैं जैसे–

1) खुशनुमा मौसम।
2) प्राकृतिक सौन्दर्य–सुरम्यता–झरने,नदियाँ,झीलें, पर्वत, रेत का समुद्र, समुद्र का किनारा।
3) ऐतिहासिक घटना स्थल– अयोध्या, कुरूक्षेत्र, जलियाँवाला बाग।
4) पुरातात्विक अवशेष– स्मारक।
5) सांस्कृतिक विशेषताएँ – लोक कला।
6) मनोरंजन की विशेष सुविधाएँ– जैसे– घुडदौड़, कैसीनो, फैशन परेड, रोपवे, वाटर पार्क आदि।
7) वन्य जीव विविधता।
8) स्वास्थ्य सुविधाएँ।
9) स्वादिष्ट व्यंजन।
10) सुगमता।
11) सुरक्षा।

पर्यटन विषय के विद्वानों द्वारा पर्यटन उत्पाद का वर्गीकरण निम्न प्रकार भी किया गया है–

अ) संरक्षित पर्यटन उत्पाद– इसमें पर्यटन स्थल की भौगोलिक, ऐतिहासिक व धार्मिक विशेषता प्रमुख होती है–

1. ऐतिहासिक स्मारक / स्थल
2. पुरातन भवन / संरक्षित प्राचीन धरोहर
3. धार्मिक स्थल
4. प्राचीन गुफाएं एवं चट्टानें
5. पुरात्तव स्थल

ब) विशेष पहचान के पर्यटन उत्पाद– इसमें पर्यटन स्थल पर उपलब्ध विशेष सेवा, सुविधा, तकनिक, या प्राकृतिक स्थल से पहचान बनती है। जिसका उपभोग करने या देखने के लिए पर्यटक आते है–

1. मानव निर्मित विशेष इमारत– बुर्ज खलीफा
2. विशेष समारोह– कार्निवल
3. विशेष प्रकार के पार्क या खेल कुद सुविधा
4. प्रकृति के विशेष आकर्षण स्थल–झरनें, नदियाँ
5. समुद्र तट –गोवा, केरल

स) पर्यटन उत्प्रेरक उत्पाद– पर्यटन स्थल पर पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए अनेक प्रकार की सुविधाएं प्रदान की जाती है–

1. होटल, मोटेल, पेईंग गेस्ट हाउस, रेस्टोरेन्ट
2. पर्यटक परिवहन
3. टूर ऑपरेटर या ट्रेवल ऐजेन्ट
4. पर्यटक सूचना या सहायता केन्द्र
5. शापिंग मॉल
6. स्मृति चिह्न विक्रय केन्द्र
7. संग्रहालय
8. बाग बगीचे, खेल मैदान
9. मन्दिर
10. क्लब

द) स्थानीय सुविधा उत्पाद– जिस स्थान पर पर्यटक जाता है वहाँ की स्थानीय सुविधाएं भी पर्यटक उत्पाद के रूप में विशेष महत्त्व रखती है–

1. स्वास्थ्य चिकित्सा सेवा
2. फुटकर दुकानें
3. बैंक व विदेशी मुद्रा विनिमय केन्द्र
4. स्थानीय परिवहन सेवाएं
5. डाक तार व टेलिफोन सेवा
6. पेट्रोल पम्प
7. पुलिस प्रशासन
8. सिनेमा हॉल

पर्यटनः वैश्विक परिदृश्य (Tourism : A Global View)

परिवहन,संचार सुविधाएँ, टूर एवं ट्रैवल कम्पनियों के व्यापार विस्तार पश्चात् यात्राएँ विशेषकर अन्तर्राष्ट्रीय यात्राएँ जनसामान्य की पहुँच के अनुरूप बन गयी हैं। परिणामस्वरूप विभिन्न देशों में पर्यटकों की संख्या 2014 में बढ़कर 113.5 करोड़ (1950 में 2.5 करोड, 1999 में 61.6 करोड़) हो गई।

विश्व पर्यटन संगठन के अनुसार पूरे विश्व में पर्यटकों की आवाजाही सन् 2014 में 113.5 करोड हुई एवं 2020 तक 180 करोड़ होने का अनुमान है। अतः विश्व में तेल एवं मोटर कार के व्यापार एवं उद्योग के पश्चात् पर्यटन तीसरे स्थान का वृहत् उद्योग बन गया है। पर्यटन उद्योग तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है। पर्यटन उद्योग का विश्व की अर्थव्यवस्था पर अत्यधिक प्रभाव पड़ रहा है। इस उद्योग से विश्व भर में 21.20 करोड़ लोगों को रोजगार के अवसर उपलब्ध होते है अर्थात् विश्व का प्रत्येक नौंवा (9जी) व्यक्ति 'यात्रा एवं पर्यटन उद्योग' से अपनी आजीविका प्राप्त कर रहा है।

पर्यटन की दृष्टि से विश्व के सर्वोच्च 50 देशों में फ्रांस प्रथम स्थान पर है तथा भारत 41वें स्थान पर है। 'विश्व पर्यटन संगठन'(WTO) के अनुसार विश्व के अन्य देशों की तुलना में अब एशिया महाद्वीप में पर्यटन व्यवसाय अधिक गति से बढ़ेगा जो लगभग दुगुना हो जायेगा। 'विश्व पर्यटन संगठन' (WTO) ने वर्ष 2002 को अन्तर्राष्ट्रीय पारिस्थितिक पर्यटन (International Ecotourism Year) वर्ष घोषित किया था।

भारत– पर्यटन की स्थिति व सम्भावनाएँ (India–Status and Prospects of Tourism)

पर्यटन उद्योग को नया आयाम देने के लिए तथा तीव्र गति से विकास करने के उद्देश्य से सरकार ने पर्यटन उद्योग को 'निर्यात गृह' (Export House) का दर्जा देने की घोषणा की है ताकि भारतीय पर्यटन उद्योग आधुनिक संयत्रों से सुसज्जित हो सके एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्द्धात्मक क्षमता प्राप्त कर सकें। निर्यात गृह को सरकार विशेष रियायतें व सहायता प्रदान करती है जिससे विदेशी मुद्रा भण्डार व रोजगार के अवसर में वृद्धि हो सकें। पर्यटन क्षेत्र का भारतीय अर्थव्यवस्था में हीरे–जवाहरात तथा वस्त्र उद्योग के बाद तीसरा स्थान है। भारत में पर्यटकों के प्रवाह की गति निम्न प्रकार है–

1. **अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन (International Tourism)** – भारत में सार्वधिक अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटक अमेरिका , यूरोप, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी एवं आस्ट्रेलिया से आते हैं। 1951 में भारत आने वाले पर्यटकों की संख्या लगभग 17 हजार थी जो 1990 में बढ़कर 33 लाख तथा 2014 में 10.2 प्रतिशत वृद्धि के साथ 76.8 लाख हो गई। अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन से भारतीय अर्थव्यवस्था में निम्न महत्त्वपूर्ण योगदान प्राप्त हो रहे हैं–

1) विदेशी मुद्रा भण्डार में पर्यटन क्षेत्र का अंशदान भी निरन्तर बढ़ रहा है। 1970–71 में 32.5 करोड़ रूपये की विदेशी विनिमय वर्ष 2014 में बढ़कर 123320 करोड़ तक पहुँच गई।

2) पर्यटन क्षेत्र में 3.67 करोड़ व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त हो रहा है।

2. **घरेलू अथवा देशी पर्यटन (Domestic Tourism)** विदेशी पर्यटकों के अलावा भारत के नागरिक (देशी पर्यटक) भी देश के भीतर विभिन्न राज्यों में आवागमन से पर्यटन उद्योग में सक्रिय भूमिका निभाते हैं तथा अंशदान देते हैं।

भारत में धर्म आधारित पर्यटन अर्थात् धार्मिक तीर्थाटन अधिक पाया जाता है । देश में विभिन्न धर्मों के धर्मावलम्बी अपनी आस्था अनुरूप देश के विभिन्न सुगम एवं दुर्गम स्थानों की यात्राएँ करते हैं। केन्द्र सरकार की केन्द्रीय कर्मचारियों को दी जाने वाली LTC सुविधाओं ने भी देशी पर्यटकों को बढ़ाने में बड़ी भूमिका अदा की है। पर्यटन उद्योग की इकाईयों व विभिन्न राज्यों के पर्यटन निगम द्वारा विज्ञापन के माध्यम से घरेलू पर्यटकों को आकर्षित करने के प्रयास का भी बहुत प्रभाव रहा कि जनता ने विभिन्न स्थानों को देखने, जानने की उत्सुकता बढ़ी है। घरेलू पर्यटकों में भी फुर्सत के क्षण अर्थात् छुट्टियाँ बिताने के लिए किसी प्राकृतिक या मनोरंजक स्थल पर घूमने जाने की भावना धीर–धीरे जोर पकड़ती जा रही है जिससे घरेलू पर्यटन का उद्योग भी निरन्तर तीव्र गति से बढ़ रहा है। इस बढ़ते पर्यटन व्यवसाय को व्यवस्थित रूप से आगे बढ़ाने एवं लाभ उठाने के लिए कई राज्यों ने पर्यटन व्यवसाय को उद्योग का दर्जा दे दिया था।

राजस्थान में पर्यटन उद्योग (Tourism Industry in Rajasthan)

"आओ, पधारो म्हारे देश" से पर्यटकों को आंमत्रित करता राजस्थान देश के तीन प्रमुख पर्यटन राज्यों में से एक है। गोवा, केरल एवं राजस्थान में सर्वाधिक पर्यटकों का आवागमन होता है। भारत आने वाले विदेशी पर्यटकों में से एक–तिहाई पर्यटक राजस्थान आते है। घरेलू पर्यटकों की संख्या 1995 के 52 लाख से बढ़कर 2012 में 286 लाख हो गई। दिल्ली, आगरा एवं जयपुर को मिलाकर पर्यटन प्रोत्साहन के लिए बनी "स्वर्णिम–त्रिभूज" (Golden Triangle) संगम परियोजना ने राजस्थान को विश्व पर्यटन के नक्शें पर उच्च शिखर प्रदान किया है। "पैलेस ऑन व्हील्स" ने पर्यटन क्षेत्र में पर्यटकों के राजस्थान आकर्षण को चार चाँद लगा दिये।

अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति बिल क्लिंटन की राजस्थान के

'नायला गाँव की यात्रा' ने अमेरिका पर्यटकों की आवक को प्रोत्साहित किया वहीं अमिताभ बच्चन द्वारा जैसलमेर में नववर्ष मनाने एवं देशी–विदेशी फिल्मी कलाकारों व उद्योगपतियों द्वारा अपने व्यक्तिगत उत्सवों (जन्म दिन, विवाह) को उदयपुर एवं जोधपुर में समारोह के रूप में आयोजित करने से पर्यटन क्षेत्र में मरूप्रदेश का महत्त्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है।

राजस्थान के प्रति पर्यटकों का आकर्षण सम्भवतः राज्य में सर्वाधिक संख्या में ऐतिहासिक स्थल, परम्परापूर्ण नगर एवं मरूस्थल का होना है। जितनी समृद्ध राजस्थान की परम्परा रही है उतनी अन्यत्र कहीं सुलभ नहीं है। यह विविधता एवं संस्कृति प्रधानता राजस्थान की विशेषता एवं गौरव है। यहीं नहीं इतिहास के पुरातात्विक एवं स्थापत्य कला के अवशेषों की राजस्थान में मौजूदगी इसका गौरव बढ़ा देता है। यहाँ के काली बंगा एवं लोथल हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो काल के नगर माने जाते है। हजारों वर्ष पूर्व यहाँ विश्व की प्राचीनतम संस्कृति एवं सभ्यता फली–फूली और विकसीत हुई जिसका प्रवाह आज भी गतिशील है।

मरू–प्रदेश की स्वर्णिम बालू रेत के टीब (Sand dunes),जैसलमेर, बीकानेर की हवेलियाँ, प्राचीन देलवाड़ा मन्दिर व रणकपुर का स्थापत्य शिल्प, विविध लोक नृत्य व गान, शेखावटी भित्ति चित्र, मरूस्थल के जहाज की सवारी, घोड़ों पर पोलो, पुरूषों के रंग–बिरंगे साफे व प्रभावी दाड़ी–मूँछ, रमणियों की गहरी रंग–बिरंगी पोशाके, श्रृंगार आभूषण, आदिवासियों की जीवन–शैली, हस्तशिल्प एवं परम्परागत विद्या के अपार धनी व्यक्तियों की इस 'धोरा धरती' की भूमि में क्या नहीं हैं। प्रकृति की विपदा, विभिषिका एवं अभाव में भी खुशी से जीवन जीने का जीवट ,परम्पराओं एवं सुसंस्कारित सभ्यताओं से भरा, वचनों के लिए प्राण न्यौछावर करने वाले शूर–वीरों एवं पतिव्रता स्त्रियों की इस मरूधरा पर पधारे प्रत्येक आगन्तुक अथवा अतिथि का देवता तुल्य एवं उससे भी अधिक सम्मान दिया जाता है। यहाँ के मूल्यों में अतिथि को 'घर आयो माँ जायो' बराबर माना जाता है तथा अपार स्नेह एवं आदर दिया जाता है। अतिथि सत्कार के इन श्रेष्ठ मूल्यों ने कई पर्यटकों को यहाँ का स्थायी मेहमान बना दिया।

राजस्थान की संस्कृति एवं प्राकृतिक धरोहर के अतिरिक्त यहाँ की कला–शिल्पकला जैसे– बातिक कला, खराद कला, मरोड़ी कला, थेवा कला तथा चित्रकला (बनी–ठनी) ने भी पर्यटकों को व्यापारिक दृष्टि से आकर्षित किया है।

राजस्थान पर्यटन के कुछ उत्पाद सभी पर्यटकों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से अत्यन्त लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध हो गये हैं जैसे– पुष्कर मेला, जैसलमेर का मरू मेला, माऊन्ट आबू का ग्रीष्म महोत्सव, जयपुर का हाथी महोत्सव,तीज व गणगौर मेला, जोधपुर का धींगा गवर मेला व मारवाड़ समारोह आदि।

राजस्थान में विदेशी पर्यटकों की संख्या जो 1971 में 42,000 थी 2012 में यह संख्या बढ़कर 14.51लाख तथा घरेलू पर्यटक जो वर्ष 2000 में 74 लाख थे 2012 में बढ़कर 286 लाख हो गये। राजस्थान में विदेशी पर्यटकों का आवागमन प्रमुख रूप से जयपुर, जैसलमेर, जोधपुर, एवं उदयपुर जिलों में रहता है जबकि कुछ पर्यटक इन स्थलों के अतिरिक्त पुष्कर, आबू एवं बीकानेर भी आना पसन्द करते है।

प्रदेश के सभी जिले इस व्यवसाय से जुड़े हैं। जिससे 1 लाख प्रत्यक्ष व 3 लाख अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार प्राप्त हो रहे हैं।

पर्यटन उद्योग विकास के लिए राज्य सरकार के प्रयास (State Government Efforts for the Devolpment of Tourism Industry)

सर्वप्रथम राज्य सरकार के 1956 में पर्यटन निदेशालय की स्थापना की तत्पश्चात् पर्यटन विकास के लिए मेवाड़ काम्प्लेक्स योजना प्रारम्भ की। पर्यटन विकास के लिए नियोजित एवं व्यवस्थित प्रयासों के लिए सरकार ने पर्यटन उद्योग को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया है।

पर्यटन कला संस्कृति विभाग– यह पर्यटन स्थलों के विकास ,नये स्थलों की खोज, प्रसार–प्रचार, पर्यटकों को संगीत एवं यहाँ की लोक–कलाओं व गीतों से परिचित करवाने के लिए मेला–त्योहारों का कार्य करता है। पर्यटन स्थलों के बारे में ब्रोशर्स ,फोल्डर्स, पोस्टर एवं विज्ञापन फिल्म आदि तैयार कर पर्यटन केन्द्रों एवं अन्य एजेन्सियों के माध्यम से पर्यटकों को पर्यटन सम्बन्धी साहित्य उपलब्ध कराया जाता है।

राजस्थान पर्यटन विकास निगम (RTDC)– पर्यटकों को सुविधाएँ उपलब्ध कराने का कार्य इस निगम द्वारा किया जाता है जिसकी स्थापना राज्य सरकार द्वारा वर्ष 1978 में की गई थी।

राजस्थान पर्यटन विकास निगम की स्थापना का प्रमुख ध्येय पर्यटन केन्द्रों पर भोजन, आवास, यातायात एवं मनोरंजन की स्तरीय सुविधा उपलब्ध कराना था। जिसके अन्तर्गत प्रत्येक जिले में एवं प्रमुख पर्यटक स्थल पर RTDC का कार्यालय एवं आवास गृह स्थापित किया गया। वर्ष 1982 में सरकार ने ऐतिहासिक दुर्ग एवं महलों को हेरिटेज होटलों में परिवर्तित करने का निर्णय लिया जिससे विदेशी पर्यटकों एवं कुछ घरेलू पर्यटकों की संख्या में भारी वृद्धि हुई। साथ ही पैलेस आन व्हील्स से राजस्थान दर्शन की योजना भी सफल हुई।

पर्यटन के आर्थिक अंशदान के महत्त्व को समझते हुए सरकार ने सभी प्रयास इस पर केन्द्रित करने हेतु 1989 में पर्यटन

क्षेत्र की क्रियाओं को उद्योग का दर्जा दे दिया। तत्पश्चात् इस पर्यटन उद्योग में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ाने एवं पर्यटकों को विशेष सुविधा देने हेतु 1991 एवं 1992 को पर्यटन वर्ष घोषित कर दिया। इन्हीं पर्यटन वर्षों में राजस्थान का ''पधारो म्हारे देश'' का ध्येय वाक्य प्रसारित एवं प्रचलित हुआ। 2001 में राज्य सरकार ने पर्यटन उद्योग में निवेश बढ़ाने एवं आमंत्रित करने के लिए नई पर्यटन नीति की घोषणा की। जिसमें पर्यटन व्यापार करने वाले उद्यमियों को कई छूटें एवं रियायतें दी गई थी। रिसर्जेन्ट राजस्थान 2015 के तहत पर्यटन उद्योग के जिए बहुत आकर्षक नई नीति की घोषणा की गई है। जिसमें व्यवसायी को विभिन्न स्तरों पर दर व कर छटु तथा प्रतिबन्धों में शिथिलता प्रदान की गई है।

पर्यटन सर्किट

1. जयपुर – आमेर
2. अलवर – सिरोही–सरिस्का
3. भरतपुर – डीग–धौलपुर
4. रणथम्भौर – टोंक
5. हाड़ौती क्षेत्र (कोटा– बूँदी– झालावाड़)
6. मेवाड़ (अजमेर–पुष्कर–मेड़ता–नागौर)
7. शेखावटी क्षेत्र
8. माऊन्ट आबू– रणकपुर
9. मेवाड क्षेत्र (रणकपुर– कुम्भलगढ़– उदयपुर– नाथद्वारा–चित्तौड़गढ़)
10. मरू क्षेत्र (जोधपुर–जैसलमेर–बीकानेर–बाड़मेर)

इन क्षेत्रों के पर्यटन स्थलों में आकर्षण (Local Attraction) उत्पन्न करने के लिए निम्नलिखित कार्यक्रम एवं परियोजनाएँ भी अपनायी गई हैं–

1. **जवाई बाँध में** ''क्रोकोडायल पार्क'' बनाने का कार्य प्रारम्भ किया।
2. **हाथी ग्राम**– जयपुर के पास आमेर में पर्यटकों को हाथी की सवारी कराना।
3. **पोलो मैच**– जयपुर में पर्यटकों के बीच एवं विदेशी पर्यटकों का स्थानीय खिलाड़ियों के बीच पोलो (घोड़ो पर पोलो) मैच का आयोजन।
4. **विन्टेज कार रैली**– विदेशी पर्यटकों को थार रेगिस्तान की रोमांचक यात्रा हेतु आकर्षित करने के लिए कार रैली का आयोजन किया जाता है।
5. **केमल सफारी**– मरूप्रदेश जैसलमेर में पर्यटकों को ऊँट पर सवारी करते हुए मरूस्थलीय गाँवों का भ्रमण करवाना।
6. **घुड़सवारी**– पुष्कर पशु मेले में साहसिक घुड़सवारी करवाई जाती है।
7. **विलेज सफारी**– प्रदेश के 'प्रकृति संरक्षण' और 'प्रकृति संचयन' के आदर्श प्रतीक जैसे –खेजड़ली (अमृता देवी राष्ट्रीय उद्यान) ,गाँवों के 'ओरण, गोचर भूमि तथा विश्नोई बाहुल्य इलाकों में ''हरिण'' की रक्षार्थ वचन बद्धता तथा पशु प्रेम अन्तर्राष्ट्रिय (विदेशी) पर्यटकों को अधिक भाव विभोर करता है। 'प्रकृति संरक्षण गाँवों का (गुड़ा विश्नोई, धवा–डोली) भ्रमण करवाया जाता है। ओसियाँ के पास मरूस्थल (धोरा) में झोंपड़ियाँ बनाकर पर्यटकों के लिए अस्थाई आवास व्यवस्था भी की गई है।
8. **नौका विहार** – पर्यटकों को झीलों का आनन्द उठाने के लिए झीलों के किनारे अच्छे रेस्तराँ के साथ ही नौकायान (बोंटिग) की भी सुविधा है। उदयपुर, जोधपुर, जयपुर के अलावा सरकार अब राजस्थान केनाल (IGNP) में नौकायन का विचार कर रहा है।
9. **प्रकाश व ध्वनि शो**–पर्यटकों के मनोरंजन के साथ सांस्कृतिक व ऐतिहासिक जानकारी देने के लिए पर्यटन विभाग ने महत्त्वपूर्ण स्थलों पर शाम को प्रकाश व ध्वनि शो प्रारम्भ किये है।
10. **रोपवे**– देशी व घरेलू पर्यटकों को ऊँची पर्वतमालाएँ व जंगली का प्राकृतिक दृश्य दिखाने के लिए कुछ स्थानों पर 'रोपवे' (उड़न खटोले) प्रारम्भ किये गये है जैसे सुंधा माता का मन्दिर, पुष्कर।
11. **मेले व उत्सवों का आयोजन**– राजस्थान के मेले व त्योहारों का व्यवस्थित एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों के साथ आयोजन करने से पर्यटकों का आकर्षण बढ़ा है। प्रदेश के विभिन्न जिलों में अलग –अलग समय पर परम्परागत लोकप्रिय तीज–त्योहारों का वृहत् स्तर पर आयोजन कर रही है। जैसे– जैसलमेर–मरू मेला,पुष्कर,मेला, जयपुर–गणगौर, झालावाड़–चन्द्रभागा मेला, आबू पर्वत– ग्रीष्म मेला आदि। पर्यटन विभाग वर्ष पर्यन्त लगभग 40 मेले आयोजित करती है।

12 **परिवहन सुविधा अथवा पैकेज टूर**– पर्यटकों को सुगम व आरामदायक परिवहन सुविधाएँ उपलब्ध कराने हेतु जयपुर, जोधपुर, सरिस्का, उदयपुर व सवाई माधोपुर में (साईट–सीन) दृश्य स्थलों को देखने के लिए व्यवस्था की जाती है इसके लिए एक दिवसीय व 3/4/6/7/15 दिवसीय पैकेज टूर आयोजित करते हैं। जैसे– हवामहल टूर, मेवाड़ पैकेज, वाइल्ड लाइफ टूर, राजस्थान भ्रमण, गोल्डन ट्राई एंगल,

डेजर्ट ट्राई एंगल टूर इत्यादि। यह सभी पैकेज टूर दिल्ली से संचालित होते है।

राज्य सरकार द्वारा पर्यटन उद्योग को बढाने के लिए उपरोक्त के अतिरिक्त निम्न महत्त्वपूर्ण कार्य किये गये जो इस उद्योग के लिए मील के पत्थर साबित हुए।

महत्त्वपूर्ण निर्णय एवं कार्य

(Important Decisions) –

1. **पैलेस आन व्हील्स (शाही रेलगाड़ी)**– विश्व स्तर पर पर्यटन उत्पाद एवं आकर्षण के रूप में यह गाड़ी तीसरे स्थान पर पंसद की जाती है। भारतीय रेलवे व राजस्थान पर्यटन विकास लिमिटेड (RTDC) द्वारा संयुक्त रूप से रियासत कालीन राजा–महाराजाओं के पुराने सैलूनों को मिलाकर बनाई गई शाही रेलगाड़ी का शुभारम्भ 1982 को किया गया । रेल पटरी परिवर्तन पश्चात् पुनः सितम्बर 1995 से ब्रोडगेज पर इस गाड़ी को प्रारम्भ किया गया। इसमें 14 सैलून व 104 यात्रा शैयाएँ हैं जिनका नाम राजस्थान की पुरानी रियासतों के अनुसार है। यह गाड़ी सितम्बर से अप्रैल माह के बीच प्रति बुधवार शाम दिल्ली से प्रारम्भ होकर आठ दिन व सात रात्री पश्चात् पुनः दिल्ली पहुँच जाती है।
2. **हैरिटेज होटल** – 1950 से पूर्व के बने हुए महल, दुर्ग, हवेलियों एवं शिकारगाहों को होटलों में परिवर्तित करने का लक्ष्य रखा गया। यह विदेशी पर्यटकों के अत्यधिक रूचिपूर्ण आरामदायक एवं ऐतिहासिक स्मृति वाले स्थान होते है। वर्तमान में देश में कुल 125 हैरिटेज होटलों में से 95 राजस्थान में ही है।
3. **पेईंग गेस्ट योजना**– पर्यटक संस्कृति को निकटता से देख सके तथा बजट अनुरूप आवास व्यवस्था भी हो जाये इसके लिए शहरों व गाँवों में 562 परिवारों को अपने घर में ही परिवार के साथ पर्यटक को ठहरने का लाइसेन्स दिया है।
4. **राजस्थान कालिंग**– पर्यटकों में राजस्थान के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने हेतु अन्य राज्यों में प्रदर्शनी लगाने की योजना।
5. **सांस्कृतिक धरोहर सेवावाहिनी योजना** – राज्य सरकार द्वारा विद्यालय स्तर पर विद्यार्थियों में प्राचीन धरोहर की रक्षा हेतु प्रेरित करने के लिए चलाई जाने वाली योजना है।
6. **हैरिटेज शहर**– जयपुर को विश्वस्तरीय हैरिटेज शहर बनाने की योजना है।
7. **टाउनशिप विकास योजना**– इस योजना के तहत् फिल्म सिटी, हाथी गाँव आदि बनाने की योजना है।

उपर्युत सभी प्रयासों के परिणामस्वरूप राजस्थान में प्रति वर्ष पर्यटकों की संख्या तेज गति से बढ़ रही है। गत वर्षों में पर्यटकों की आवक निम्न प्रकार रही–

भारत में आये विदेशी पर्यटकों (FTA)का विवरण (वर्ष 2014)

क्र.सं.	स्रोत देश	पर्यटकों की संख्या	हिस्सेदारी %
1.	अमेरिका USA	11,18,983	14.57
2.	बांग्लादेश	9,42,562	12.57
3.	इंग्लैण्ड UK	8,38,860	10.93
4.	श्रीलंका	3,01,601	3.93
5.	रूस	2,69,832	3.51
6.	कनाड़ा	2,68,485	3.50
7.	मलेशिया	2,67,026	3.41
8.	फ्रांस	2,46,101	3.20
9.	आस्ट्रेलिया	2,39,762	3.12
10.	जर्मनी	2,39,106	3.11
	कुल पर्यटक	47,27,318	61.56
	अन्य देशों से आये	29,51,781	38.44
	कुल योग	76,79,099	100.00

(स्रोत – आप्रवास मंत्रालय–Ministry of Immigration, भारत सरकार)

घरेलु पर्यटकों में शीर्ष 10 राज्य (वर्ष 2014)

क्र.सं.	राज्य	घरेलु पर्यटकों की संख्या	हिस्सेदारी %
1.	तमिलनाडू	32,75,55,233	25.6
2.	उत्तरप्रदेश	18,28,20,108	14.3
3.	कर्नाटक	11,82,83,220	9.2
4.	महाराष्ट्र	9,41,27,124	7.3
5.	आन्ध्रप्रदेश	9,33,06,974	7.3
6.	तेलंगाना	7,23,99,113	5.6
7.	मध्यप्रदेश	6,36,14,525	5.0
8.	प. बंगाल	4,90,29,590	3.8
9.	झारखण्ड	3,34,27,144	2.6
10.	राजस्थान	3,30,76,491	2.6
	कुल	106,76,39,522	83.3
	अन्य	21,43,12733	16.7
	कुल घरेलु यात्री	1,28,19,52,255	100

(स्रोत –राज्यों के पर्यटन विकास विभाग)

पर्यटन उद्योग का महत्त्व
(Importance of Tourism Industry)

सामान्य तौर पर पर्यटन को केवल विदेशी मुद्रा प्राप्त करने का ही स्त्रोत माना जाता है। जबकि पर्यटन से होटल, परिवहन, बैंकिग, संचार प्रणाली, हस्तशिल्प, वस्त्र, जवाहरात एवं चिकित्सा उद्योग का भी विकास होता है। पर्यटन एक ऐसा सेवा क्षेत्र (बहु क्षेत्रीय विकास केन्द्र) उद्योग है जिसमें सार्वधिक व्यापक रोजगार के अवसर सृजित होते हैं, जिससे गरीबी, बेरोजगारी एवं अल्प–विकास की दर जैसी समस्याओं का निदान होता है। पर्यटन का विभिन्न दृष्टिकोण से महत्त्व निम्नलिखित हैं–

अ) आर्थिक महत्त्व (Economic Importance)

1. रोजगार अवसरों का सृजन– पर्यटन उद्योग वर्तमान में सर्वाधिक रोजगार अवसर उत्पन्न करने का क्षेत्र माना जाता है क्योंकि इस उद्योग में निरन्तर वृद्धि हो रही है तथा इस उद्योग में सेवा कार्य अधिक होने के कारण व्यक्तियों को अधिक अवसर प्राप्त होते है।

होटलों व रेस्तराँ पर्यटन का आधारभूत अंग है। ऐसा अनुमान है कि होटल व्यवसाय में पूँजी विनियोजन पर अपेक्षाकृत अन्य व्यवसाय से अधिक रोजगार मिलता है। जैसे–

10 लाख रूपये की पूँजी विनियोजित की जाये तो–

कृषि उद्योग में 45 लोगों को रोजगार मिलता है,

उत्पादन उद्योग में 14 लोगों को रोजगार मिलता है,

जबकि होटल उद्योग में 89 लोगों को रोजगार मिलता है,

अर्थात् पर्यटन क्षेत्र रोजगार की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

2. विदेशी मुद्रा की प्राप्ति– यात्रा एवं पर्यटन खर्च के लिए अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटकों द्वारा विदेशी मुद्रा दी जाती है जिससे राष्ट्र को विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। विदेशी व्यापार में इसका अधिक महत्त्व है। पर्यटन के चढ़ने से राष्ट्र में विदेशी मुद्रा का भण्डार तीव्र गति से बढ़ता है।

3.महिला रोजगार में वृद्धि–पर्यटन उद्योग में महिला रोजगार के सार्वधिक अवसर उत्पन्न होते है। पर्यटन उद्योग सेवा क्षेत्र होने के कारण यह महिलाओं के व्यक्तिगत कौशल के अनुरूप होता है। आज इस उद्योग में पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं की संख्या अधिक है।

4. निर्यात वृद्धि– देश की कला एवं संस्कृति से मोहित अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटक बड़ी मात्रा में भारतीय वस्तुएँ क्रय करते हैं तथा अपने राष्ट्रों में व्यापार भी करते हैं। इससे निर्यात व्यापार में वृद्धि होती है।

5. ढ़ाँचागत विकास– पर्यटन को उद्योग का दर्जा देने के बाद तथा इसकी अर्थव्यवस्था में अहम् भूमिका को देखते हुए सरकार द्वारा पर्यटकों की सुविधाओं में विस्तार एवं सुगमता लाने के लिए सभी आधारभूत सेवाओं में (सड़क, रेल, बिजली, जल, संचार, बैंक, बीमा) तीव्र विकास किया जा रहा है जिससे अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों को भी लाभ मिलता है तथा विकास की गति बढ़ने लगती है।

6. परिवहन सुविधा में वृद्धि– पर्यटकों की सुविधाओं को बढ़ाने के लिए समय–समय पर विशेष बस सेवा, रेलगाड़ी या विमान सेवाओं का निर्णय लिया जाता है । जैसे ग्रीष्मकाल में समर स्पेशल, किसी मेला उत्सव पर विशेष रेल आदि। कई बार पहले से चल रही साप्ताहिक परिवहन सेवाओं को नियमित कर देने से भी परिवहन सुविधा में वृद्धि होती है।

7. सहायक उद्योग धन्धों का विकास– पर्यटकों की आवाजाही से पर्यटन क्षेत्र के सहायक अन्य व्यापार या उद्योग भी बढ़ते हैं जैसे– रेस्तराँ, ट्रेवल्स एजेंसी, ड्राइक्लीन, फोटो फिल्म, बार, ब्यूटी पार्लर, म्युजिक आदि।

8. सन्तुलित क्षेत्रीय विकास–पर्यटन उद्योग से सम्बन्धित विभिन्न क्षेत्रों की सुविधाओं का विकास करने के लिए नियोजित एवं नियमित प्रयास किए जाते हैं जिससे राष्ट्र के सभी भागों –दुरूस्थ एवं ग्रामीण क्षेत्रों का भी विकास होता है अर्थात् विकास प्रक्रिया सन्तुलित रहती है।

(ब) सांस्कृतिक महत्त्व (Cultural Importance)

1. सांस्कृतिक संरक्षण–तीव्र गति से बढ़ रहे अर्थ जगत् में एवं संचार युग में प्राचीन संस्कृतियों ,परम्पराओं का पालन व निर्वाह कठिन होता जा रहा है। लेकिन पर्यटकों की पसन्द व आकर्षण के कारण परम्परागत मेले, त्योहार व उत्सवों को सरकारी एवं निजी प्रोत्साहन एवं संरक्षण प्रदान किया जा रहा है। यह संस्कृति के संवहन एवं जीवित रखने के लिए लाभप्रद है।

2. लोक कला का संरक्षण– भारत का सम्पूर्ण भू भाग– विविध लोक कलाओं से भरा हुआ है। लोक कला मनोरंजन एवं संस्कृति संवहन एवं भावाभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम माना जाता है। विविध क्षेत्रों की भाषा ,बोली, परिवेश, परम्पराओं व कथाओं पर आधारति या कलाएँ पर्यटन आकर्षण का महत्त्वपूर्ण साधन है। इनके प्रदर्शन एवं विकास के लिए निजी एवं सरकारी स्तर पर प्रयास किये जाते है। उदयपुर में लोक कला मण्डल इसका जीवन्त उदाहरण है।

3. हस्तशिल्प व कला का विकास– मशीनों एवं कम्प्यूटर के युग में हाथ से कार्य एवं उत्पादन बहुत महँगा पड़ता है। लेकिन हाथ करघा, हस्तकला के उत्पाद, प्राकृतिक, सुन्दर एंव

सृजनात्मक होते हैं जो बहुत आकर्षक होते हैं जो पर्यटकों के लिए बहुत आकर्षक होते हैं। इसका निर्यात व्यापार में महत्त्वपूर्ण योगदान देखते हुए विभिन्न एजेंसियों एवं सरकार इसके लिए नियोजित प्रबन्ध कर रही है। विभिन्न पर्यटक स्थलों पर शिल्प ग्राम बनाए गए है जहाँ शिल्पकारों के रहने एवं उनके उत्पादन प्रक्रिया के प्रदर्शन की व्यवस्था की गई है तथा उत्पाद विक्रय के बिक्री केन्द्र भी खोले गए हैं।

4. सांस्कृतिक धरोहरो का संरक्षण– चूँकि पर्यटन का अधिकतर हिस्सा सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक पर्यटन है इसलिए पर्यटकों को आकर्षित करने हेतु सरकार पुराने मन्दिरों, स्तूपों एवं ऐतिहासिक भव्य इमारतों के संरक्षण का प्रयास कर रही है। इस हेतु स्थानीय व्यक्तियों की भागीदारी के लिए ''अपना गाँव अपनी धरोहर'' योजना भी प्रारम्भ की है जो इन धरोहरों के संरक्षण के लिए बहुत उपयोगी होगी।

5. स्थानीय भाषा, संगीत एवं साहित्य का प्रसार– सांस्कृतिक पर्यटक संस्कृति को जानना एवं पहचानना चाहते हैं तथा यही उनका आकर्षण है जिसके लिए वो भारत आते हैं। संस्कृति भाषा, संगीत एवं परम्पराओं का मिश्रण है। सरकार एवं अन्य एजेंसियाँ इनके संरक्षण एवं प्रोत्साहन के प्रयास कर रही है।

6. सांस्कृतिक विनिमय अथवा हस्तान्तरण– पर्यटकों के आवागमन के कारण विभिन्न देश एक–दूसरे की संस्कृति को जानने लगते हैं तथा उसके अच्छे संस्कार /आदतें/शब्द/परम्परा जीवन में स्वीकार कर लेते हैं आज हमारी बोल–चाल में बहुत से विदेशी शब्दों का प्रयोग हो रहा है तथा बहुत से त्योहार हम विदेशियों को देखकर मना रहे हैं जैसे– क्रिसमिस एवं 31 दिसम्बर रात्री को नव वर्ष उत्सव आदि।

विभिन्न राष्ट्रों की सरकारें अपने विश्वविद्यालय विद्यार्थियों को दूसरे देशों में संस्कृति अध्ययन के लिए भी भेजती है। इससे एक –दूसरे को समझने में आसानी रहती है। यह व्यवसाय सहयोग एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एकता लाने में सहायक होता है।

(स) सामाजिक महत्त्व (Social Importance)

1. जीवन स्तर में सुधार– पर्यटन से रोजगार अवसर उत्पन्न होते हैं जो क्रय शक्ति को बढ़ाता है अन्ततः समाज के विभिन्न स्तरों पर लागों के जीवन स्तर में सुधार आता है।

2. साक्षरता व शैक्षणिक विकास– पर्यटन क्षेत्र में रोजगार प्राप्ति के लिए पर्यटन स्थलों के व्यक्तियों में शिक्षा की तरफ झुकाव प्रारम्भ हुआ है। यहीं नहीं पर्यटकों को अच्छी सेवाएँ देने के लिए लोग (गाइड) अब अध्ययन की तरफ प्रवृत हो रहे हैं, इससे आमजन में साक्षरता एवं शिक्षा का विकास हो रहा है।

3. सामाजिक समरसता में वृद्धि–पर्यटन स्थलों पर रोजगार प्राप्ति के अवसर पर्यटकों के आगमन से होता है। पर्यटक शान्त स्थलों पर यात्रा करना पसन्द करते है। अतः यह सामान्य रूप में पाया गया है कि पर्यटन स्थलों पर विभिन्न सम्प्रदायों के व्यक्तियों में एक व्यापारिक समझ उत्पन्न हो गई है और वो सम्प्रदायों में एकता का आधार पर उन्माद बन रहा है। मलेशिया इसका जीवन्त उदाहरण है जहाँ वे आपसी झगड़ों का सार्वजनिक रूप से प्रकटीकरण नहीं करते हैं।

4. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विशेष सहायता प्राप्ति–विदेशी अथवा देशी पर्यटक अपनी यात्रा के दौरान कुछ व्यक्तियों अथवा संस्थाओं के कार्यों से प्रभावित होकर या स्थान के आकर्षण से मोहित होकर उसके साथ भावनात्मक सम्बन्ध बना लेते है तथा उन्हें विकास हेतु धन एवं तकनीकी सहायता करते हैं। जैसे– पश्चिमी राजस्थान की वीरनी योजना जिसमें कुछ विदेशियों द्वारा मोबाइल चिकित्सालय सेवा संचालित होती है।

5.–ख्याति व प्रतिष्ठा में वृद्धि – विशेष अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तियों (VIP) द्वारा स्थान विशेष की यात्रा करने पर समाचार पत्रों, टी.वी, समाचारों में स्थान विशेष को विशिष्ट स्थान मिलता है। उस स्थान विशेष के विस्तृत विवरण दिये जाते हैं , जैसे अमेरिका के राष्ट्रपति की ''नायला गाँव'' की यात्रा के कारण ''नायला गाँव'' अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जाना गया। उसी तरह कई फिल्मी हस्तियों द्वारा विभिन्न पर्यटक स्थलों पर आयोजन करने से अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा बढ़ती है।

6. जानकारियों व ज्ञान में वृद्धि– पर्यटकों के आवागमन से पर्यटन क्षेत्र से जुड़े सभी व्यक्तियों, संस्थाओं की जानकारी एवं ज्ञान में अभिवृद्धि होती है तथा विपणन एवं शोध से जुड़े लोगों के लिए अनुभव प्राप्त होता है।

7. सुविधा वृद्धि– पर्यटन स्थलों पर पर्यटकों को आकर्षित करने एवं उन्हें पूर्ण सुविधा पहुँचानें के लिए सरकार एवं अन्य एजेंसियाँ सभी तरह की सुविधाएँ जुटाने का प्रयास करती हैं जैसे– अच्छी सड़कें, रेल, बैंक, होटल,अस्पताल, रेस्तराँ, सुरक्षा एवं पानी –बिजली इत्यादि। इन सुविधाओं का लाभ स्थानीय व्यक्तियों को भी मिलता है। अतः उनकी सामान्य सुविधा स्तर में वृद्धि एवं सुगमता बढ़ती है। साथ ही पर्यटकों के आकर्षण के लिए सफाई पर भी ध्यान दिया जा रहा है जिससे स्वास्थ्य में विकास हो रहा है।

(द) पारिस्थितिक महत्त्व (Environmental Importance)

1. प्रकृति संरक्षण में वृद्धि एवं सहायक (वन्य जीव)– पर्यटकों की अधिकतर संख्या प्रकृति को निहारने एवं प्रकृति के जीव–जन्तु देखने आती हैं। बढ़ते शहरों एवं वाहनों के कारण इनकी संख्या निरन्तर कम हो रही है तथा कई जीव–जन्तु लुप्त प्रायः हो गये है।सरकार इनको सुरक्षित रखने तथा पर्यटकों को देखने की

सुविधा देने के लिए सुरक्षित वन अभ्यारण बना रही है। जैसे– केवलादेव पक्षी अभ्यारण, रणथम्भौर, माचिया सफारी पार्क, सरिस्का राष्ट्रीय उद्यान आदि। भले ही सरकारी एवं निजी प्रयास पर्यटकों के मार्फत धानार्जन प्रेरित हो रहे हो लेकिन अन्ततः प्रकृति संरक्षण भी होता है जो पर्यावरण सन्तुलन के लिए अनिवार्य है।

2. प्रकृति संचयन में वृद्धि एवं सहायक (वन्य सम्पदा) प्रकृति एवं पर्यावरण में वन्य जीवों के साथ– साथ वन्य सम्पदा भी समान महत्त्व रखती है। गौचर भूमि, ओरण, पेड़–पौधे आदि। वन्य जीवों के लिए अपेक्षित वन्य वातावरण बनाये रखने, प्राकृतिक सन्तुलन बनाये रखने तथा विपदा–विभिषिका में उपयोगी वन्य सम्पदा का भारतीय व्यवस्था में विशेष स्थान हैं। सभी ग्रामीण क्षेत्रों में ओरण को आखेट रहित क्षेत्र माना जाता है। विदेशी पर्यटक इसकी महत्ता समझने के लिए अब ग्रामीण क्षेत्र में जाने लगे है। भाजपा नीत राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठगन्धन सरकार के पूर्व वित्त मन्त्री श्री जसवन्त सिंह ने इस हेतु विशेष योजना 'मरू गौचर' घोषित की थी। अन्य एजेन्सियों ने भी इस हेतु सर्वे किया है अर्थात् पर्यटन के बहाने ही सही इस वन्य सम्पदा का संरक्षण प्रारम्भ किया हुआ है। यह महत्त्वपूर्ण है।

3. पर्यावरण जागरूकता– पर्यटकों से प्राप्त धन की चमक से आकर्षित सभी पक्ष उन सभी पहलुओं पर सोचने एवं कार्य करने का तत्पर हैं जिससे पर्यटकों की सुविधा एवं उनकी आवक बढ़े। स्वच्छ एवं अनुकूल पर्यावरण पर्यटन को सकारात्मक माना जाता है। इसलिए केन्द्र से लेकर स्थानीय सत्ता, सभी सरकारें एवं एजेन्सियाँ स्वच्छ एवं हरे–भरे पर्यावरण पर ध्यान दे रहे हैं। विद्यालयों में विशेष शिक्षण एवं जागरूकता अभियान चल रहा है अन्ततः इसका लाभ स्थानीय निवासियों को प्राप्त होता है।

पर्यटन उद्योग की हानियाँ (Disadvantages of Tourism Industry)

1. प्रदूषण विस्तार – पर्यटन से जितने लाभ हैं उसके अनुपात में उस उद्योग से कुछ हानियाँ भी समाज को हो रही हैं उनमें से कुछ अग्रलिखित हैं–

अ) पर्यावरण प्रदूषण – (जल, भूमि, वायु, ध्वनि) पर्यटकों की आवाजाही से परिवहन साधनों का विस्तार हुआ है जिससे वायु एवं ध्वनि प्रदूषण बढ़ रहा है। पर्यटकों की आवास व्यवस्था के लिए बढ़ रहे होटलों व रेस्टोरेन्टों के कारण जल प्रदूषण भी बढ़ रहा है। पर्यटकों के द्वारा प्लास्टिक की सामग्री का अत्यधिक प्रयोग करने के कारण भूमि भी प्रदूषित हो रही है।

ब) सामाजिक प्रदूषण– (नशा, वेश्वावृत्ति) पर्यटकों को मनोरंजन सुविधाएँ जुटाने के लिए जाने वाली व्यवस्थाओं में नशा–अफीम, चरस, गांजा, बार, डांस क्लब व वेश्वावृति आदि का चलन बढ़ रहा है। इससे सामाजिक व्यवस्थाएँ प्रदूषित हो रही है।

स) सांस्कृतिक प्रदूषण– (अश्लीलता, नैतिक मूल्यों का हनन) विदेशी पर्यटक अपनी संस्कृति के अनुरूप पहनावा, रहन–सहन एवं खन–पान करते है। अत्यधिक मात्रा में पर्यटकों के आने एवं उनके सम्पर्क में रहने से मूल भारतीयों का भी पहनावा, खान–पान विदेशियों की तरह होने लगा है जिससे भारतीय संस्कृति प्रदूषित हो रही है।

2. राष्ट्र विरोधी गतिविधियों में वृद्धि– पर्यटकों की भीड़ में कुछ पर्यटक विरोधी अथवा शत्रु राष्ट्रों द्वारा गुप्त सूचनाएँ एकत्रित करने, आतंकवाद फैलाने तथा मादक द्रव्यों की तस्करी करने के लिए भेजे जाते है। जिससे देश की महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ, मानचित्र एवं ठिकाने की जानकारी आतंकवादियों को मिल जाती है जिसका वे दुरूपयोग करते है।

3. समाज के कमजोर पक्ष का उपहास अथवा मजाक उड़ना– भारत में एक तिहाई जनसंख्या गरीबी की रेखा के नीचे जीवनयापन करती है उनका रहन–सहन एवं खान–पान की फोटो पर्यटकों द्वारा खींची जाती है। इनका उपयोग अपने राष्ट्र में जाकर भारत की गलत छवि प्रस्तुत करने के लिए करते है। पूर्व में भारत को सपेरों का देश कहा जाता था देश की यह छवि इन्हीं कारणों से बनी थी।

पर्यटन उद्योग में रोजगार सम्भावनाएँ (Employment Opportunities in Tourism Industry)

1. **होटल प्रबन्धन (Hotel Mangement)**–अत्यधिक रोजगार अवसरों को सृजित करने वाले होटल व्यवसाय की सफलता प्रभावी और वैज्ञानिक प्रबन्धन पर निर्भर करती है। इसलिए आज होटल प्रबन्धन हेतु पेशेवर और प्रशिक्षित कर्मचारियों की माँग दिन–प्रतिदिन बढती जा रही है। वर्तमान युवा पीढ़ी में यह पेशा प्रतिष्ठित रोजगार के उपयुक्त साधन के रूप में निरन्तर लोकप्रिय बनता जा रहा है।

   रोजगार और पारिश्रमिक– त्रि–वर्षीय प्रशिक्षण कार्यक्रम पूरा करने वाले विद्यार्थियों को होटल, रिसोर्ट्स, रेस्टोरेन्ट, सरकारी और निजी क्षेत्र के अथिति गृहों ,विमान सेवाओं आदि में विभिन्न प्रबन्धकीय स्तर पर वरिष्ठ प्रबन्धक, मध्यम प्रबन्धकीय स्तर पर रोजगार मिल जाता है। उच्च प्रबन्धकीय स्तर पर वरिष्ठ प्रबन्धक, मध्यम प्रबन्धकीय स्तर पर अधिशाषी अधिकारी और निम्न प्रबन्धकीय स्तर पर एक कर्मचारी के रूप में नियुक्ति मिल जाती है। आजकल अन्य औद्योगिक संस्थानों की भाँति होटल व्यवसाय में भी प्रशिक्षित व्यक्तियों को 'मैनेजमेण्ट ट्रेनी' अथवा 'मैनेजमेण्ट एण्ड ऑपरेशन ट्रेनी' के रूप में नियुक्ति देने का प्रचलन बढ़ता जा रहा है।

2. **फ्रन्ट ऑफिस असिसटेन्ट**–पर्यटकों की आवक के साथ–

साथ होटल व्यवसाय भी बढ़ने लगा है। होटल में स्वागत कक्ष पर आगन्तुकों से वार्ता करने, उन्हें होटल की सुविधाओं का ब्यौरा देने तथा कमरा देने एवं होटल छोड़कर जाने पर (Cheak Out) हिसाब कर रवानगी करने का कार्य होता है। प्रत्येक होटल में प्रतिदिन (24 घण्टों के लिए) न्यूनतम तीन ऑफिस असिसटेन्ट की आवश्यकता होती है। इसके लिए भाषा ज्ञान के साथ ऑफिस कार्य भी अपेक्षित है।

3. **लॉबी मैनेजर** – लॉबी मैनेजर ग्राहकों के सामने अपने होटल का प्रतिनिधि होता है। लॉबी मैनेजर की जिम्मेदारियाँ रात्रिकालीन शिफ्ट में बढ़ जाती है। जब होटल के महाप्रबन्धक एवं दूसरे विभागाध्यक्ष अपने कार्यालय में मौजूद नहीं होते। वह हर प्रकार की स्थिति से निपटने में सक्षम होता है।

4. गेस्ट रिलेशन एक्जिक्यूटिव– ग्राहकों को आने वाली समस्याओं का मित्रतापूर्वक समाधान निकालना तथा होटल में उनके रहने के लिए खुशगवार माहौल तैयार करना एक अच्छे गेस्ट रिलेशन एक्जिक्यूटिव का कार्य है। कमरों, लॉबी, रेस्टोरेंन्ट, साउंड एवं अन्य सार्वजनिक स्थलों की सफाई, फिनीशिंग एवं सज्जा इत्यादि कार्य हाउस कीपिंग डिपार्टमेन्ट के अंतर्गत आता है, जो एक्जिक्यूटिव हाउस कीपर की देखरेख में सम्पन्न होता है।

5. **फ्लोर सुपरवाइजर**– होटल के प्रत्येक फ्लोर के जिए एक सुपरवाइजर होता है, जो अपनी टीम के सदस्यों के कार्य की निगरानी करता है तथा ग्राहक के होटल छोड़ने के पश्चात् उस कमरे को तैयार कर प्रंट ऑफिस डिपार्टमेण्ट को सूचित किया करता है।

6. **लाइनमैन रूम सुपरवाइजर**– लाइनमैन रूम अनुभाग का लॉण्ड्री, लाइनेन तथा अन्य फर्नीशिंग की देखभाल के लिए जिम्मेदार होता है।

7. **एक्जिक्यूटिव शैफ**–एक्जिक्यूटिव शैफ होटल के किचन के समस्त कार्यों को देखने के लिए जिम्मेदार होता है। वह किचन कार्यों को सास शैफ, शैफ डी पार्टी तथा अन्य सहयोगियों के साथ मिलकर अंजाम देता है। वह एफ.एण्ड.बी.मैनेजर के परामर्श से मीनू भी तैयार करता है। एक्जिक्यूटिव शैफ केवल खान–पान के लिए ही जिम्मेदार नहीं होता बल्कि उसे किचन स्टॉफ की नियुक्ति , खरीददारी, मानव संसाधन विकास इत्यादि जैसा प्रशासनिक कार्य भी करना होता है। यह चुनौती भरा कार्य है।

8. **किचन स्टीववार्डिंग मैनेजर**– इंजीनियरिंग एवं मेंटेनेन्स विभाग के समन्वय से किचन के सभी संयत्रों ,ओवेन्स, रेफ्रिजरेटरों, बर्तनों इत्यादि का अनुरक्षण एवं देखभाल के कार्य का दायित्व किचन स्टीववार्डिंग मैनेजर पर होता है। होटल जगत् में ग्लैमर एवं चुनौतियों से भरा कैरियर है।

होटल प्रबन्धन के अतिरिक्त अन्य कार्यों के लिए निम्न प्रमुख प्रशिक्षण संस्थाएँ आयोजित करती है–

सम्बद्ध पाठ्यक्रमों के प्रमुख प्रशिक्षण संस्थान निम्न हैं–

1. डिप्लोमा इन बेकरी एण्ड कन्फेक्शनरी–नई दिल्ली, चण्डीगढ़।
2. क्राप्ट कोर्स इन एफ एण्ड बी सर्विस – भोपाल, चैन्नई, शिमला।
3. डिप्लोमा इन होटल रिसेप्शन एण्ड बुक–कींपिग– नई दिल्ली
4. पी.जी.डिप्लोमा इन होटल मैनेजमेंट– भोपाल
5. पी.जी डिप्लोमा इन डाइटेटिक्स एण्ड हॉस्पिटल फूड सर्विस– चेन्नई, नई दिल्ली, मुम्बई।
6. पी.जी. डिप्लोमा दप अकमोडेशन ऑपरेशन– हैदराबाद, ग्वालियर।
7. डिप्लोमा इन प्रन्ट ऑफिस ऑपरेशन– जोधपुर, उदयपुर, चण्डीगढ़।
8. डिप्लोमा इन हाउसिंग ऑपरेशन– फरीदाबाद, पाण्डेचेरी, जोधपुर।
9. डिप्लोमा इन फूड प्रोडेक्शन –गोवा, जोधपुर, चण्डीगढ़, उदयपुर।
10. क्रॉफ्ट कोर्स इन फूड प्रोडेक्शन – कोलकाता, शिमला, हैदराबाद।

होटल के अतिरिक्त पर्यटकों को अन्य सुविधाएँ देने के लिए रोजगार के निम्न अवसर उपलब्ध हैं–

1. **टूरीस्ट गाइड**– पर्यटकों को पर्यटन स्थल की जानकारी एवं ऐतिहासिक घटनाओं का ब्यौंरा प्रदान करने तथा सहायता के लिए जानकार एवं स्थानीय व्यक्यिों की आवश्यकता होती है, जिन्हें गाइड कहते हैं। इसके रोजगार अवसर अधिक बढ़ रहे हैं। पर्यटन मौसम (अक्टूबर–मार्च) में इनकी प्रतिदिन आय एक–दो हजार रूपये हो जाती है। इसके लिए स्थानीय भूगोल, इतिहास की जानकारी केक साथ अंग्रेजी एवं प्रेंच भाषा का ज्ञान अधिक कार्य कुशल बनाता है। यह बिना पूँजी का व्यक्तिगत कौशल का स्वतन्त्र रोजगार हैं।

2. **ट्रेवल एजेन्ट**– पर्यटक न्यूनतम समय में अधिक स्थानों का भ्रमण कर अनुभव लाभ प्राप्त करना चाहता है। इसलिए उसे सुगम परिवहन अर्थात् यातायात सुविधा की आवश्यकता होती है। विभिन्न स्थानों पर कौनसा वाहन अधिक सुविधाजनक होगा उसकी व्यवस्था करना तथा बुकिंग करना आदि कार्य पर्यटक इस क्षेत्र के अनुभवी व प्रतिष्ठित व्यक्ति या संस्था के माध्यम से करवाता है ताकि उनकी यात्रा तीव्र एवं सुगम हो सके। इस क्षेत्र में भी रोजगार के दो तरह के अवसर हैं। एक एजेन्ट के रूप में, तथा दूसरा अपना वाहन (कार, जीप) पर्यटन कार्य के लिए लगाना।

3. **दुभाषिये**– पर्यटकों के अतिरिक्त कई अन्य कार्यों –व्यापार या कूटनीति के लिए आने वाले विदेशी अतिथियों से वार्ता करने के लिए सरकार या व्यापारी वर्ग दुभाषिये नियुक्त करते हैं। इस हेतु भाषा ज्ञान एवं क्षेत्र विशेष में प्रयुक्त शब्दावली का ज्ञान होना आवश्यक है।

पर्यटन क्षेत्र में उद्यमिता अवसर (Entrepreneurial Opportunities in Tourism Sector)

पर्यटन के क्षेत्र में पूँजी निवेश की अत्यधिक माँग है जिसके लिए सरकार भी प्रोत्साहन दे रही है, तथा इस उद्योग में पूँजी पर प्रत्याय की दर (ROI) भी अच्छी है। पर्यटन क्षेत्र में उद्यमी के रूप में निम्न अवसर सहज रूप से मौजूद है –

1. **रेस्तराँ–होटल व्यवसाय** — पर्यटन के आवश्यक अंग होटल–रेस्तराँ की माँग का पर्यटन उद्योग के साथ सकारात्मक सह–सम्बन्ध है अर्थात् एक–दूसरे के सहायक हैं। पर्यटन के बढ़ते व्यापार में विभिन्न होटल–रेस्तराँ की माँग बढ़ती जा रही है।

(i) उच्च स्तरीय सितारा होटल (Star Hotel) के रूप में किसी अन्तर्राष्ट्रीय होटल कम्पनी या समूह से सम्बन्धित हो शृंखला होटल (Chain Hotel) के रूप में व्यवसाय स्थापित करना।

(ii) हैरिटेज होटल – 1950 से पूर्व की ऐतिहासिक महल या दुर्ग को अधिग्रहित (Acquire) कर उसमें हैरिटेज होटल का व्यवसाय प्रारम्भ करना।

(iii) पेईंग गेस्ट हाऊस – अपने स्वयं के निवास स्थान (घर) में उपलब्ध अतिरिक्त स्थान (कमरों) को छोटी होटल (Payeng Guest) के रूप में उपयोग कर स्वरोजगार प्राप्त करना। वर्तमान में इसका उपयोग बढ़ रहा है।

(iv) मिड–वे–होटल–रेस्तराँ – पर्यटन स्थलों के बीच सड़क मार्गों या राष्ट्रीय राज मार्गों पर भी आजकल विश्राम के लिए रेस्तराँ एवं होटल की प्रथा प्रारम्भ हो गई है यह भी व्यापार के अवसर सृजित करता है।

2. **हेल्थ क्लब** – पर्यटन क्षेत्र में यह परिवर्तन भी देखने को मिल रहा है कि कई पर्यटक स्वास्थ्य सुधार एवं संवृद्धि के लिए ही अनुकूल पर्यटन स्थलों पर जाते हैं। स्थलों पर प्रकृतिगत वातावरण के साथ–साथ पर्यटक योग, ध्यान, हर्बल चिकित्सा एवं मालिश के द्वारा भी आनन्द की प्राप्ति करना चाहते हैं। बड़े–बड़े शहरों एवं समुद्र किनारे के पर्यटक स्थलों पर ऐसे क्लबों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है। यह कम पूँजी का अच्छा वयवसाय बन सकता है।

3. **मनोरंजन पार्क या वाटर पार्क** – पर्यटकों के मन बहलाने एवं बच्चों के खेलकूद के लिए आजकल आधुनिक संयंत्रों एवं तकनीक की सहायता से पार्क में ही समुद्र, नदी, झील, झरने एवं जंगल के कृत्रिम दृश्य उत्पन्न दिये जाते हैं। पार्क में आधुनिक झूले एवं मोटर कार रेसिंग के उपकरण लगाये जाते हैं। इनका प्रचलन भी महानगरों में बढ़ने लगा है।

सारांश :

पर्यटन के अन्तर्गत व्यक्तियों की वे गतिविधियाँ सम्मिलित है, जो उनके दैनिक परिवेश से बाहर जाकर यात्रा एवं विश्राम करते हुए सम्पन्न की जाती हैं ये यात्राएँ आराम, मनोरंजन, वाणिज्य–व्यापार आदि प्रयोजनों के लिए हो सकती है।

पर्यटन के प्रकार – मनोरंजनात्मक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, पारिस्थितिक, मानवजातीय, धार्मिक, स्वास्थ्य संवर्द्धन, खेल–कूद पर्यटन आदि।

पर्यटकों के प्रकार – स्थानीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटक।

पर्यटन के उत्पाद – परिवहन, स्थल का आकर्षण तथा आवास।

राजस्थान में पर्यटन उद्योग – पिछले वर्षों में पर्यटन के क्षेत्र में राजस्थान में काफी सुधार आया है। भारत आने वाले पर्यटकों में एक–तिहाई पर्यटक राजस्थान आते हैं। इससे बड़ी संख्या में लोग रोजगार प्राप्त कर रहे हैं। इनके लिए राज्य सरकार ने अनेक प्रयास किये हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयास निम्नलिखित हैं –

1. विश्व यात्रा एवं पर्यटन परिषद् से समझौता।
2. पर्यटन क्षेत्रों का विकास।
3. पर्यटन स्थलों को आकर्षक बनाना।
4. पैलेस ऑन व्हील्स का प्रारम्भ।
5. हैरिटेज होटल।
6. पेइंग गेस्ट योजना।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न –

1. पर्यटन उद्योग अर्थव्यवस्था के कौन से क्षेत्र में आता है?

   (अ) कृषि क्षेत्र (ब) निर्माण क्षेत्र

   (स) सेवा क्षेत्र (द) किसी में नहीं

2. जोधपुर, जैसलमेर एवं जयपुर क्षेत्र के समूह को पर्यटन क्षेत्र में जाना जाता हैं–

   (अ) मरूक्षेत्र (ब) मरू त्रिकोण

   (स) थार मण्डल (द) पश्चिम राजस्थान

3. पर्यटन क्षेत्र में कार्य के लिए राजस्थान की प्रसिद्ध संस्था हैं–

   (अ) RTDC (ब) लोक–कला मण्डल

   (स) संस्कृति विभाग (द) आर्थिक नियोजन

4. पर्यटक के लिए उसका किसी स्थान पर न्यूनतम विश्राम आवश्यक है–

   (अ) 1 वर्ष (ब) एक माह

   (स) 24 घण्टे (द) एक सप्ताह

5. पर्यटकों का राजस्थान के प्रति आकर्षण का मुख्य कारण है–

   (अ) प्राकृतिक स्थल (ब) ऐतिहासिक स्थल

   (स) संस्कृति (द) उपर्युक्त सभी

6. पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए राजस्थान सरकार द्वारा संचालित रेल गाड़ी है–

   (अ) फैरी क्वीन (ब) टॉय ट्रेन

   (स) विलेज आन व्हील्स (द) पैलेस ऑन व्हील्स

7. पैलेस ऑन व्हील्स गाड़ी की यात्रा प्रारम्भ होती है–

   (अ) जयपुर से (ब) मुंबई से

   (स) दिल्ली से (द) जैसलमेर से

8. RTDC की स्थापना हुई थी–

   (अ) 1952 (ब) 1992 (स) 1978 (द) 1979

9. 'स्वर्णिम त्रिभुज' नाम से प्रसिद्ध पर्यटन संगम परियोजना सम्बन्धित है–

   (अ) जयपुर–आगरा–दिल्ली

   (ब) जैसलमेर– बाड़मेर– बीकानेर

   (स) उदयपुर– माउन्ट आबू– रणकपुर

   (द) दिल्ली– कोटा– अजमेर।

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. पर्यटन का अर्थ समझाइए।
2. पर्यटन के संघटकों के नाम बताइए।
3. पर्यटक कितने प्रकार के होते है।
4. पर्यटन के क्षेत्र के प्रकार बताइए।
5. राजस्थान सरकार द्वारा पर्यटन विभाग के कार्य दो विभागों के नाम बताइए।
6. पर्यटन विकास कि लिए राजस्थान सरकार ने किसके साथ अन्तर्राष्ट्रीय समझौता किया हे।
7. पर्यटकों का आकर्षित करने वाले तत्त्वों (कोई चार तत्त्वों के) का नाम बताइए।
8. पर्यटन क्षेत्र के नियोजित विकास के लिए सरकार द्वारा वर्गीकृत क्षेत्र (सर्किट) के नाम बताइए।
9. पर्यटन उद्योग में RTDC के चार कार्य बताइए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. यात्रा के उद्देश्य से प्रयुक्त शब्दावली (तीन शब्द) समझाइये।
2. यात्रा के कोई पाँच उद्देश्य बताइये।
3. स्वास्थ्य संवर्द्धन पर्यटन किसे कहते हैं?
4. पर्यटन के लिए कौनसे संघटक आवश्यक हैं?
5. राजस्थान में पर्यटन कौनसे उद्देश्य व किस प्रकृति के पर्यटन के अन्तर्गत आते है।
6. ''पैलेस ऑन व्हील्स'' के बारे में बताइए।
7. '' स्वर्णिम त्रिभुज'' क्या है?
8. '' मरू'' त्रिकोण क्या है?
9. ''पेइंग गेस्ट योजना'' क्या है

निबंधात्मक प्रश्न–

1. पर्यटन को समझाते हुए इसके संघटकों की व्याख्या कीजिए।
2. पर्यटक किसे कहते हैं? इसके प्रकार बताते हुए पर्यटकों की यात्रा के उद्देश्य बताइए।
3. पर्यटन की अवधारणा बताते हुए पर्यटन के प्रकार बताइए।
4. राजस्थान में पर्यटन उद्योग पर निबन्ध लिखिए।
5. पर्यटन उद्योग के महत्त्व एवं कमजोरियों की व्याख्या दीजिए।

6. पर्यटन उद्योग के विकास की बाधाओं का वर्णन करते हुए उन्हें दूर करने के सुझाव दीजिए।
7. ''पर्यटन के क्षेत्र में रोजगार की अपार सम्भावनाएँ हैं'' इस कथन की व्याख्या कीजिए।
8. पर्यटन विकास हेतु राजस्थान सरकार के प्रयासों का वर्णन कीजिए।
9. पर्यटन उद्योग में उद्यमिता के अवसरों की व्याख्या कीजिए।
10. आपके निकटतम पर्यटन स्थल की तथ्यात्मक रिपोर्ट बनाइये।
11. आपके गाँव या तहसील स्तर पर पर्यटन विकास की योजना बनाइए।

उत्तरमाला

(1) स (2) ब (3) अ (4) स (5)द (6)द (7)स (8) स (9) अ

रजस्थान के महत्वपूर्ण पर्यटन सर्किट